बी.एड. स्पेशल (मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा)

स्व-अधिगम सामग्री

SECD-05 GC

First Year

निर्देशन एवं परामर्श

(Guidance & Counselling)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

बी.एड. स्पेशल (मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा)

स्व–अधिगम सामग्री

SECD-05 GC

First Year

निर्देशन एवं परामर्श

(Guidance & Counselling)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय,
भोपाल (म.प्र.)

संरक्षक

डॉ० रवीन्द्र कान्हेरे

कुलपति

मार्गदर्शन

श्री अरुण सिंह चौहान

कुलसचिव

संपादक मण्डल

संयोजक

डॉ० वर्षा सागोरकर

निदेशक, बहुमाध्यमीय शिक्षा विभाग

समन्वयक व सलाहकार

डॉ० हेमलता दिनकर

विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग

समन्वयक

डॉ० कंचन जिज्ञासी

रीडर (शिक्षा)

समन्वयक

डॉ० सालेहा सिद्दीकी

लेक्चरर (शिक्षा)

Printed by : **P Square Solutions** Mini Industrial Area Barari Mathura-281005

अनुक्रमणिका

इकाई–1	निर्देशन	5-104
इकाई–2	आत्म–प्रत्यय	105-212
इकाई–3	भारतीय विद्यालय	213-312

1 निर्देशन

NOTES

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- निर्देशन का अर्थ
- निर्देशन की प्रकृति
- निर्देशन के कार्य
- शैक्षिक, व्यावसायिक तथा व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता
- शैक्षिक निर्देशन
- व्यावसायिक निर्देशन
- व्यक्तिगत निर्देशन
- राष्ट्रीय विकास के लिए निर्देशन
- निर्देशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- निर्देशन का उद्देश्य
- निर्देशन के सिद्धान्त
- निर्देशन के क्षेत्र
- परामर्श-संकल्पना, अर्थ एवं परिभाषा
- विभिन्न परामर्श सिद्धांत
- परामर्श की विधियाँ एवं तकनीक
- परामर्श के लिए साक्षात्कार की आवश्यकता
- परामर्श में हाल की प्रवृत्तियाँ
- परामर्श और मार्गदर्शन में अंतर
- मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवा
- विद्यालय में परामर्श सेवा
- विशिष्ट बाकों के लिए परामर्श
- परामर्श के लक्ष्य एवं उद्देश्य

NOTES

- परामर्श के क्षेत्र।
- परामर्श तथा निर्देशन की मूल दशाएँ।
- परामर्शदाता की दक्षताएँ।
- अच्छे परामर्शदाता के गुण
- अच्छे परामर्शदाता के व्यक्तित्व की विशेषता
- अच्छे परामर्शदाता के प्रशिक्षण और तैयारी
- अच्छे परामर्शदाता का अनुभव
- अच्छे परामर्शदाता की भूमिका एवं जिम्मेदारियाँ
- विद्यार्थियों को परामर्श देने से सम्बन्धित कार्य
- विद्यार्थियों के माता पिता का सहयोग प्राप्त सम्बन्धी कार्य
- अध्यापकों से सहयोग प्राप्त करने सम्बन्धी कार्य
- सूचनाएँ प्रदान करने सम्बन्धी कार्य
- समुदाय के साथ सहयोग सम्बन्धी कार्य
- मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवाओं से सम्बन्धित अन्य विविध कार्य
- विशिष्ट बालकों की समस्याऐं एवं आवश्यकताएं
- विशेष आवश्यकता वाले बालकों की सहायता में शिक्षक की भूमिका
- प्रतिभाशाली तथा सृजनात्मक बालकों का मार्गदर्शन
- परीक्षापयोगी प्रश्न।

उद्देश्य–

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे–

- प्राक्कथन
- निर्देशन का अर्थ
- निर्देशन की प्रकृति
- निर्देशन के कार्य
- शैक्षिक, व्यावसायिक तथा व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता
- शैक्षिक निर्देशन

NOTES

- व्यावसायिक निर्देशन
- व्यक्तिगत निर्देशन
- राष्ट्रीय विकास के लिए निर्देशन
- निर्देशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- निर्देशन का उद्देश्य
- निर्देशन के सिद्धान्त
- निर्देशन के क्षेत्र
- परामर्श-संकल्पना, अर्थ एवं परिभाषा
- विभिन्न परामर्श सिद्धांत
- परामर्श की विधियाँ एवं तकनीक
- परामर्श के लिए साक्षात्कार की आवश्यकता
- परामर्श में हाल की प्रवृत्तियाँ
- परामर्श और मार्गदर्शन में अंतर
- मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवा
- विद्यालय में परामर्श सेवा
- विशिष्ट बाकों के लिए परामर्श
- परामर्श के लक्ष्य एवं उद्देश्य
- परामर्श के क्षेत्र।
- परामर्श तथा निर्देशन की मूल दशाएँ।
- परामर्शदाता की दक्षताएँ।
- अच्छे परामर्शदाता के गुण
- अच्छे परामर्शदाता के व्यक्तित्व की विशेषता
- अच्छे परामर्शदाता के प्रशिक्षण और तैयारी
- अच्छे परामर्शदाता का अनुभव
- अच्छे परामर्शदाता की भूमिका एवं जिम्मेदारियाँ
- विद्यार्थियों को परामर्श देने से सम्बन्धित कार्य
- विद्यार्थियों के माता पिता का सहयोग प्राप्त सम्बन्धी कार्य
- अध्यापकों से सहयोग प्राप्त करने सम्बन्धी कार्य
- सूचनाएँ प्रदान करने सम्बन्धी कार्य
- समुदाय के साथ सहयोग सम्बन्धी कार्य

NOTES

- मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवाओं से सम्बन्धित अन्य विविध कार्य
- विशिष्ट बालकों की समस्याऐं एवं आवश्यकताएं
- विशेष आवश्यकता वाले बालकों की सहायता में शिक्षक की भूमिका
- प्रतिभाशाली तथा सृजनात्मक बालकों का मार्गदर्शन

प्राक्कथन

मानव अपने जीवन काल में व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों ही पक्षों में अधि कतम विकास लाने के लिए सदैव सचेष्ट रहता है इसके लिये वह अपने आस पास के पर्यावरण को समझता है और अपनी सीमाओं व सम्भावनाओं, हितों व अनहितों गुणों व दोषों को तय कर लेता है। लेकिन जीवन की इस चेष्टा में कभी वे क्षण भी आते हैं जहाँ पर वह इन अद्‌भुत क्षमताओं का प्रदर्शन अपनी योग्यता के अनुरूप नहीं कर पाता है और तब वह इसके लिये दूसरों से सहयोग लेता है जिससे वह अपनी समस्या को समझ सके एवं अपनी क्षमता के योग्य समाधान निकाल सके। यह प्रयास सम्पूर्ण जीवन चलता है और यह जीवन के विविध पक्षों के साथ परिवर्तित होता जाता है यही निर्देशन कहलाता है। यह आदिकाल से ही 'सलाह' के रूप में विद्यमान थी परन्तु बीसवीं सदी में इसका वर्तमान स्वरूप उभरा। निर्देशन का अर्थ स्पष्ट करने के लिये इसको समझना आवश्यक है। अनेक विद्वानों ने इसे एक विशिंष्ट सेवा माना है और यह व्यक्ति को उसके जीवन के विविध पक्षों में सहयोग प्रदान करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

यह वास्तव में निर्देशन कार्मिक द्वारा किसी व्यक्ति को उसकी समस्या को दृष्टिगत रखते हुये अनेक विकल्प बिन्दुओं से अवगत कराते हुये अपेक्षित राय व सहायता प्रदान करने की प्रक्रिया है।

वास्तव में शिक्षा एवं निर्देशन एक दूसरे के पर्याय हैं क्योंकि इन दोनों के अन्तर्गत व्यक्ति या बालक को उसके शैक्षिक, व्यावसायिक, व्यक्तिगत, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक या शारीरिक जीवन पक्षों के विकास हेतु सहायता प्रदान की जाती है। निर्देशन वास्तव में एक अविरल प्रक्रिया है जो कि व्यक्ति के लिए जीवन पर्यन्त चाहिये। इस क्षेत्र में हर प्रशिक्षित व साधक व्यक्ति निर्देशन कार्मिक कहलाता है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विद्यालय, परिवार, समाज व राजनीतिक परिवेश सम्मिलित होते हैं। विद्यालय से

सम्बन्धित शिक्षक, उपबोधक तथा अन्य सहकर्मी, परिवार के अन्य प्रत्येक सदस्य, अभिभावक, मित्र राजनीतिज्ञ इस व्यापक प्रक्रिया को मूर्त स्वरूप प्रदान करते हैं। निर्देशन का अटूट क्रम है और यह व्यक्ति को उसके जीवन के विभिन्न पक्षों में आवश्यक हो जाती है। वास्तव में यह समय व परिस्थिति के साथ केन्द्रित परामर्शदाता व सेवार्थी केन्द्रित हो जाती है जब यह परामर्शदाता को केन्द्र मानकर दी जाती है तो परामर्शदाता केन्द्रित और परामर्श प्रार्थी को केन्द्र बिन्दु मानकर दी जाती है तो परामर्शदाता केन्द्रित हो जाती है जब यह परामर्शदाता को केन्द्र मानकर दी जाती है तो परामर्शदाता केन्द्रित और परामर्श प्रार्थी को केन्द्र बिन्दु मानकर प्रदान की जाती है तो यह परामर्श प्रार्थी केन्द्रित हो जाती है। हमारे देश में निर्देशनकर्मी अपनी औपचारिक भूमिका का निर्वाह अनेकानेक 'मनोनितिक' उपकरणों के अनुप्रयोग के अलावा व्यक्तिनिष्ठ या आत्मनिष्ठ प्राविधियों के द्वारा करते चले आ रहे हैं।

मार्गदर्शन सेवा में परामर्श हृदय के समान कार्य करता है। यदि परामर्श सेवा न हो तो मार्गदर्शन कार्यक्रम का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता है। मार्गदर्शन कार्यक्रम में व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया जाता है। इन समस्याओं का स्वरूप एवं इनकी मात्रा में विभिन्नता हो सकती है। इन्हीं समस्याओं को दूर करने के लिए मार्गदर्शन कार्यक्रम के अंतर्गत कई विधियों का प्रयोग किया जाता है। परामर्श सेवा उन विभिन्न सेवाओं में से एक है। समस्याओं के स्वरूप के आधार पर परामर्श सेवा की प्रक्रिया को संपन्न करने के लिए अधिक योग्य और प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। अतः इस इकाई में हम परामर्श प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं को गहराई में जानेंगे।

निर्देशन का अर्थ (Meaning of Guidance)

निर्देशन को विभिन्न मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षाशास्त्रियों ने भिन्न-भिन्न रूप से परिभाषित किया है। निर्देशन के अर्थ को निम्न परिभाषाओं की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

नैप (Knapp) ने निर्देशन को निम्न प्रकार परिभाषित किया है, "किसी विद्यार्थी के बारे में सीखना या जानना, उसे समझने में सहायता देना, उसमें तथा उसके वातावरण में परिवर्तन लाना जो उसके और विकास में सहायक हो, निर्देशन है।"

कार्टर बी, गुड के अनुसार, "निर्देशन छात्रों या व्यक्तियों को ज्ञान व विवेक प्राप्त करने में सहायता देने और आत्मनिर्देशन की दिशा में अग्रसर करने के दबाव या आदेश से मुक्त व्यवस्थित सहायता है।"

प्रोक्टर ने निर्देशन की परिभाषा में इसको स्पष्ट करते हुए लिखा है, "निर्देशन एक सेवा है जिसका निर्माण व्यक्ति विशेष अथवा व्यक्तियों के समूह को सहायता प्रदान करने हेतु हुआ है ताकि वे वातावरण के साथ आवश्यक समायोजन कर सकें जिसका सम्बन्ध विद्यालय उसके अतिरिक्त है।"

एमरी स्टूप्स ने निर्देशन को स्वयं की क्षमताओं के विकास में सहायता मानते हुए लिखा है कि, "व्यक्ति को स्वयं तथा समाज के उपयोग के लिए स्वयं की क्षमताओं के अधिकतम विकास के प्रयोजन में निरंतर दी जाने वाली सहायता ही निर्देशन है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं का गहनता से विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि निर्देशन एक संयुक्त सेवा है, जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की इस प्रकार सहायता करता है कि वह व्यक्ति अपनी समस्याओं का हल स्वयं कर सके एवं स्वयं के सर्वांगीण विकास हेतु कार्य कर सके। यह एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति अपनी क्षमताओं, रूचियों, अभिवृत्तियों, योग्यताओं का इस प्रकार विकास करता है कि वह अपनी आपको वातावरण के साथ समायोजित करता है और जटिल से जटिल परिस्थितियों में भी निर्णय ले सकता है।

निर्देशन की प्रकृति (Nature of Guidance)

1. निर्देशन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।
2. निर्देशन व्यक्ति पर बल न देकर समस्या पर बल देता है।
3. निद्रेशन भावी जीवन की तैयारी में सहायक है।
4. निर्देशन विद्यार्थियों को शिक्षा के क्षेत्र में समायोजित करने में मदद करता है।
5. यह सभी प्रकार के व्यक्तियों के लिए सेवा है।
6. निर्देशन का क्षेत्र बहुत व्यापक है।
7. निर्देशन सेवार्थी केन्द्रित प्रक्रिया है।

8. निर्देशन व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाता है।
9. निर्देशन एक प्रकार से संगठित सेवा है।
10. निर्देशन से स्वनिर्देशन की योग्यता का विकास होता है।
11. निर्देशन अनेक सेवाओं का समूह है।
12. निर्देशन व्यक्ति को जीवन में औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों रूपों में अपना योगदान देता है।
13. निर्देशन अपने दृष्टिकोण को दूसरे पर थोपना नहीं है।
14. यह शिक्षा की एक अर्न्तनिहित प्रक्रिया है।
15. निर्देशन एक सामान्यीकृत तथा विशिष्टीकृत सेवा है। अर्थात् माता-पिता परिवार से भी व्यक्ति निर्देशन प्राप्त करता है और प्रशिक्षित व्यक्तियों से भी निर्देशन प्राप्त करता है।

निर्देशन के कार्य (Functions of Guidance)

निर्देशन की प्रकृति को उसके कार्यों के सन्दर्भ में भी समझा जा सकता है। जेरान तथा रिक्सि ने निर्देशन के निम्नलिखित आठ कार्य बताये हैं –

1. व्यक्ति को ऐसे अवसर उपलब्ध कराना जिससे कि वह अपने कार्य क्षेत्र एवं शैक्षिक प्रयासों के विषय में और अधिक सीख सके।
2. अपनी मानसिक क्षमताओं के सन्दर्भ में व्यक्ति अपनी आकाँक्षाओं को जान सके, उस कार्य में उसकी सहायता करना।
3. व्यक्ति की सहायता इस उद्देश्य से करना कि वह अपनी मानसिक प्रवृत्तियों को समझे, स्वीकार करे और उन्हें काम में लाये।
4. व्यक्ति को अपनी योग्यताओं, अभिरूचियों, रूचियों तथा अभिवृत्तियों की जानकारी प्राप्त करने में सहायता पहुँचाना।
5. व्यक्ति को इस प्रकार सहायता करना कि वह इतना अच्छा आदमी बन जाये जितनी की उसमें क्षमता है।
6. व्यक्ति को अधिक से अधिक आत्मनिर्देशित बनने में सहायता देना।
7. वांछित मूल्यों के विकास में व्यक्ति की सहायता करना।

NOTES

8. व्यक्ति को ऐसे अनुभव प्राप्त करने में सहायता करना जो कि उसकी निर्णय शक्ति में वृद्धि करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि निर्देशन व्यक्ति में निहित सम्भावनाओं के अनुसार उसके पूर्ण विकास पर बल देता है।

शैक्षिक, व्यावसायिक तथा व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता (Importance of Educational Vocational & Personal Guidance)

शैक्षिक निर्देशन – निर्देशन के विभिन्न प्रकारों में से सबसे महत्वपूर्ण प्रकार शैक्षिक निर्देशन है। शैक्षिक निर्देशन का सीधा सम्बन्ध विद्यार्थी से होता है। शैक्षिक निर्देशन का मुख्य लख्य विद्यार्थियों में स्कूली वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करने की योग्यता का विकास करना तथा विद्यार्थियों में आवश्यक जागरूकता एवं संवेदनशीलता पैदा करना ताकि वे उचित अधिगम लक्ष्यों, उपकरणों, परिस्थितियों आदि का स्वयं चयन कर सकें।

बालक विद्यालय वातावरण में समायोजन स्थापित कर सके इसीलिए शिक्षा में निर्देशन को अभिन्न अंग माना गया है क्योंकि शैक्षिक निर्देशन को बाल की वृद्धि के सन्दर्भ में देखा जाता है।

जोन्स के अनुसार, "शैक्षिक निर्देशन का सम्बन्ध विद्यार्थियों को प्रदान की जाने वाली उस सहायता से है जो उन्हें विद्यालयों, पाठ्यक्रम चुनावों एवं विद्यालयी जीवन से सम्बद्ध समायोजनों के लिए अपेक्षित है।"

शैक्षिक निर्देशन के चार प्रमुख कार्य हैं –

1. विद्यार्थी की क्षमता, रूचि एवं साधनों के अनुसार शैक्षिक योजना का निर्माण करना।
2. विद्यार्थियों की भावी सम्भावनाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना।
3. शैक्षिक कार्यक्रम में आवश्यक प्रगति के लिए सहायक होना।
4. विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए।

मायर्स ने भी शैक्षिक निर्देशन को विद्यार्थी के विकास या शिक्षा के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करने की प्रक्रिया बताया है। इस दृष्टि से शैक्षिक निर्देशन विद्यार्थी की शिक्षा के दौरान हर स्तर पर होना चाहिए।

व्यावसायिक निर्देशन – व्यावसायिक निर्देशन मात्र एक तकनीकी प्रक्रिया ही नहीं जिससे किसी व्यक्ति को किसी व्यवसाय में 'फिट' कर दिया जाये और न ही व्यक्ति किसी व्यवसाय के लिए ही "पैदा" हुआ है। सामान्य बुद्धि वाले को विभिन्न व्यवसायों में समायोजित किया जा सकता है। व्यावसायिक निर्देशन के अन्तर्गत व्यक्ति में निहित क्षमताओं, योग्यताओं तथा व्यावसायिक निर्देशन में व्यवसाय के चयन से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए प्रदान की जाने वाली वह सहायता शामिल है जो व्यावसायिक अवसरों के लिए अपेक्षित योग्यताओं को ध्यान में रखकर प्रदान की जाती है।

सुपर के अनुसार, "व्यावसायिक निर्देशन का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को इस योग्य बनाना है कि वह अपने व्यवसाय से सामंजस्य स्थापित कर सके, अपनी शक्तियों को प्रभावशाली तरीके से उपयोग कर सके तथा उपलब्ध सुविधाओं द्वारा समाज का आर्थिक विकास कर सके।"

क्रो एवं क्रो ने भी व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्य बताए हैं। इन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया का संचालन किया जाता है। व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया में व्यवसाय चार्ट, व्यवसाय विवरण पत्रिका, वार्ताओं आदि के माध्यम से विद्यार्थी की व्यवसाय से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त की जाती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि व्यावसायिक निर्देशन व्यक्तियों को विभिन्न व्यवसायों में समायोजित होने में सहायता करता है। इसीलिए व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता रहती है। इस प्रकार व्यावसायिक निर्देशन-

1. एक प्रक्रिया है।
2. व्यवसाय चयन तथा व्यवसाय-समायोजन के लिए आवश्यक है।
3. विभिन्न व्यवसायों के लिए आवश्यक गुणों तथा योग्यताओं के बारे में जानना।
4. विभिन्न व्यवसायों से परिचित कराने की प्रक्रिया।

व्यक्तिगत निर्देशन – व्यक्तिगत निर्देशन में व्यक्तिगत-मनोवैज्ञानिक या संवेगात्मक सम्बन्ध जो कि व्यक्ति स्वयं से विकसित कर लेता है, शामिल किया जाता है। पैटरसन ने व्यक्तिगत निर्देशन में सामाजिक, मनोवेगात्मक तथा अवकाश सम्बन्धी समस्याएँ, मनोवेगात्मक समायोजन सामाजिक समायोजन

तथा अवकाश एवं मनोरंजन की समस्याओं के समाधान के लिए शामिल किया जाता है। जीवन के चरित्र सम्बन्धी तथा आध्यात्मिक पक्ष को भी व्यक्तिगत निर्देशन में शामिल किया जा सकता है।

इस प्रकार, व्यक्तिगत निर्देशन का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के मानसिक, सामाजिक एवं भौतिक पक्षों में सामंजस्य पैदा करना है। क्योंकि ऐसा देखा गया है कि कई बार व्यक्ति उच्च स्तर की शैक्षिक योग्यता तथा व्यावसायिक क्षेत्र में संतोषजनक प्रगति के बावजूद भी अनेक प्रकार के सामान्य अवसरों तथा सामाजिक अवगुणों से घिरे रहते हैं। ऐसे व्यक्ति अपने परिवार, पड़ोस तथा समुदाय के अन्य सदस्यों के बीच उपेक्षापूर्ण जीवन व्यतीत करता है परिणामस्वरूप व्यक्ति प्रगतिशील शांतिपूर्ण जीवन की कल्पना नहीं कर सकता। ऐसी परिस्थितियों में व्यक्तिगत निर्देशन अति आवश्यक हो जाता है।

अतः व्यक्तिगत निर्देशन में निम्न प्रकार की समस्याओं का समाधान सम्भव है–

1. स्वास्थ्य एवं शारीरिक विकास सम्बन्धी समस्यायें।
2. संवेगात्मक व्यवहार से सम्बन्धी समस्यायें।
3. पारिवारिक जीवन एवं पारिवारिक सम्बन्धों से जुड़ी समस्यायें।
4. धर्म, चरित्र, आदर्श एवं मूल्यों से संबंधित समस्याएँ।
5. यौन, प्रेम एवं विवाह सम्बन्धी समस्याएँ।

शैक्षिक, व्यावसायिक तथा व्यक्तिगत निर्देशन को निम्न रेखाचित्र के माध्यम से और अधिक स्पष्ट प्रकार से समझा जा सकता है।

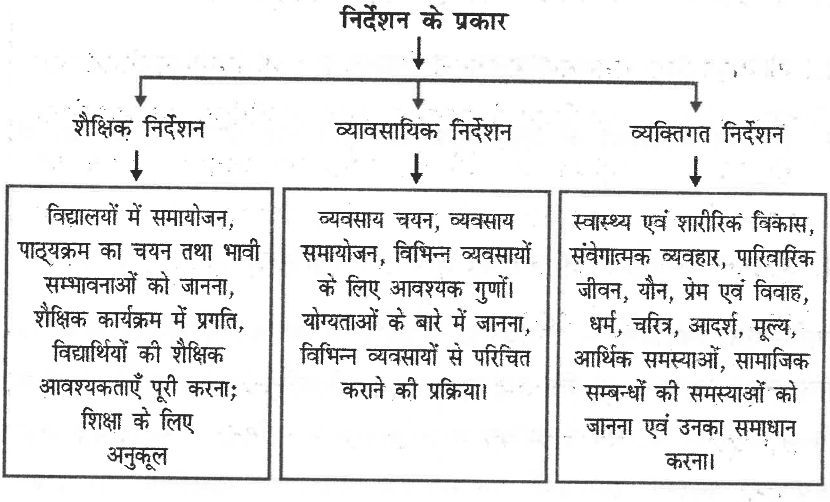

राष्ट्रीय विकास में निर्देशन

निर्देशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background of Guidance)

जब से मानव सभ्यता का उदय हुआ है, मानव को जीवन यापन करने के लिए निर्देशन मिला ही है। जीवन में निर्देशन का स्थान महत्वपूर्ण है। प्राचीन सभ्यताओं में निर्देशन के तरीके अलग-अलग थे। वर्तमान समय में ये अलग-अलग है अतः निर्देशन के विकास क्रम को निम्नलिखित चरणों में समझने का प्रयास करेंगे।

प्राचीन भारत में निर्देशन – प्राचीनकाल में वर्ण-व्यवस्था का बोलबाला था तथा शिक्षा समाप्त होने के पश्चात् गुरू अपने दीक्षान्त उपदेश में जीवन की सफलता के लिए आवश्यक उपदेश देते थे ऐसा ही एक उपदेश "तैत्रिरीय उपनिषद" में मिलता है जिसके मुख्य अंश का भाव है- सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय से प्रमाद मत करो, अपने व्यवसाय से सम्बन्धित अध्ययन से प्रमाद मत करो। अब तुमने अपनी शिक्षा पूरी कर ली है किन्तु यह मत समझना कि आगे अध्ययन की क्या आवश्यकता है अतः अपनी दक्षता में वृद्धि करते जाओ। यही शिक्षा है, यही आदेश है, वेद, उपनिषद् भी यही कहते हैं।

प्राचीन यूनान में निर्देशन– यूनान में निर्देशन का प्रारम्भ प्लेटो से माना जाता है। प्लेटो ऐसे समाज के निर्माण में प्रयत्नशील थे जहाँ सृजनात्मक ढंग से कार्य की व्यवस्था हो। यह सब, स्वाभाविक ही निर्देशन व्यवस्था की अपेक्षा रखता है और प्लेटो ने शिक्षा में निर्देशन को महत्वपूर्ण स्थान दिया।

प्लेटो के अनुयायियों तथा बाद में यूनानी विचारकों ने भी किसी न किसी रूप में निर्देशन की ओर ध्यान दिया। ये विचारक शिक्षा के बौद्धिक एवं सामाजिक दोनों ही पक्षों पर समुचित बल देते थे। शिक्षा की व्यवस्था समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप की जाती थी। फलतः अप्रत्यक्ष रूप से निर्देशन की सहायता इस उद्देश्य को प्राप्त करने में ली जाती थी। अरस्तू ने भी शिक्षा में निर्देशन को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

इस प्रकार प्लेटो से लेकर उसके अनुयायियों एवं उसके बाद के विचारकों ने यूनानी युवा पीढ़ी की शिक्षा की व्यवस्था करते हुए निर्देशन को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया।

आधुनिक काल में निर्देशन– निर्देशन का वर्तमान औपचारिक व सुगठित स्वरूप बीसवीं सदी की देन है। आधुनिक काल में निर्देशन का जन्मस्थान संयुक्त राज्य अमेरिका का बोस्टन नगर माना जाता है तथा फ्रेंक पारसन्स को व्यावसायिक निर्देशन का जन्मदाता माना जाता है। सन् 1905-1906 में पारसन्स ने ब्रेड विनर्स इंस्टीट्यूट की स्थापना की जिसके माध्यम से योजनाबद्ध ढंग से व्यावसायिक निर्देशन का काम प्रारम्भ हुआ। सन् 1908 में पारसन्स ने 'वोकेशन ब्यूरो' की स्थापना की तथा निर्देशकों के समक्ष प्रथम बार 'व्यावसायिक निर्देशन' शब्द का प्रयोग किया। बाद में वोकेशनल ब्यूरो के हार्वर्ड विश्वविद्यालय का व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो बना दिया गया। सन् 1910 के बाद अमेरिका में 'राष्ट्रीय शिक्षा संघ' तथा 'औद्योगिक शिक्षा विकास समिति' आदि संस्थानों ने निर्देशन आन्दोलन में अपना ठोस योगदान दिया। प्रथम विश्वयुद्ध में निर्देशन आन्दोलन का तेजी से विकास हुआ जब युद्ध की आवश्यकताओं के अनुरूप सैनिकों तथा अन्य अधिकारियों के वैज्ञानिक ढंग से चुनाव तथा प्रशिक्षण की आवश्यकता का अनुभव किया गया।

पारसन्स शिक्षा के क्षेत्र में भी निर्देशन के महत्व को स्वीकार करते थे। उनके देहान्त के बाद उनके द्वारा स्थापित ब्यूरो का कार्यभार डेविस एच. हीलर, फ्रेडरिक एच. एलेन तथा मेयर ब्लूम फील्ड ने संभाला। इनके द्वारा विद्यालयी शिक्षकों को प्रशिक्षिक करने पर बल दिया गया।

- **इंग्लैण्ड में निर्देशन कार्य का विकास**– इंग्लैण्ड में निर्देशन का विकास 18वीं शताब्दी में हुआ जब श्रम मंत्रालय ने राष्ट्रीय रोजगार कार्यालयों में निर्देशन कार्य प्रारम्भ किया। इंग्लैण्ड में निर्देशन के विकास का सूत्रपात सैमुअल हार्टलिव के द्वारा किया गया। जॉन मिल्टन, विलियम पेटी, जॉन ड्यूवी आदि का भी योगदान इस दिशा में उल्लेखनीय है। वास्तव में इन विचारकों ने निर्देशन की नींव तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इन विचारकों के गम्भीर प्रयत्नों के फलस्वरूप ही इंग्लैण्ड की स्थानीय संस्थाओं तथा तात्कालिक सरकारों में निर्देशन सेवाओं का स्पष्ट रूप उभरा। सन् 1944 में इंग्लैण्ड सरकार द्वारा पारित एक कानून के आधार पर ही निर्णय लिया गया कि निर्देशन का व्यापक स्तर पर प्रयोग जरूरी कर दिया जाये।

फ्रांस में निर्देशन का विकास– सर्वप्रथम 1922 में एक सरकारी निर्णय के अनुसार फ्रांस में निर्देशन को आवश्यक घोषित किया गया तथा इस क्रम में व्यावसायिक निर्देशन कार्यालय स्थापित किए गए। सन् 1928 में शिक्षा मंत्रालय के अधीन व्यावसायिक निर्देशन संस्थान की स्थापना की गई। इस संस्थान ने देश के निर्देशनकर्ताओं तथा परामर्शदाताओं को प्रशिक्षित करने का कार्य प्रारम्भ किया। स्वयंसेवी संस्थाओं ने भी व्यावसायिक निर्देशन हेतु अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। आगे चलकर पेरिस में 'चैम्बर ऑफ कॉमर्स' की स्थापना की गई जो उन बालकों की सहायता देने का कार्य करता था जो विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने के बाद ही किसी व्यवसाय में लगना चाहते थे। वहां निर्देशन सेवा का संचालन एवं नियंत्रण वर्तमान में श्रम एवं शिक्षा मंत्रालय के संयुक्त प्रयासों के आधार पर किया जाता है।

- **जर्मनी में निर्देशन का विकास –** प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् जर्मनी में स्वयंसेवी संस्थाओं ने अपना व्यापक सहयोग व्यावसायिक निर्देशन के विकास में दिया। 1900 ई. के आस-पास वहाँ व्यवसाय चुनने की इच्छुक महिलाओं के लिए विशेष सूचना-केन्द्रों की स्थापना हुई तथा प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् सरकार द्वारा एक 'राष्ट्रीय सार्वजनिक निर्देशन संस्थान' की स्थापना की गई। जिसका क्षेत्र व्यावसायिक निर्देशन तक ही सीमित रखा गया था।

  जर्मनी में 1927 में एक कानून पारित हुआ जिसके आधार पर देश के बेरोजगार लोगों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने तथा व्यावसायिक निर्देशन का उत्तरदायित्व सरकार ने अपने ऊपर ले लिया। अधिकांश नगरों में व्यावसायिक निर्देशन कार्यालयों की स्थापना की गई तथा इनके द्वारा मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का भी प्रयोग किया जाने लगा तथा सन् 1933 तक निर्देशन का विकास विस्तृत हो गया। फ्रेंकफर्ट में 'राष्ट्रीय संस्थान' की स्थापना हुई तथा मूल्यांकन की नूतन पद्धतियों व परीक्षणों के आधार पर सूचनाएँ प्रदान करने हेतु अनेक व्यावहारिक प्रयास किए गए।

- **आधुनिक भारत में निर्देशन का विकास –** भारत में निर्देशन आन्दोलन का प्रारम्भ 20वीं सदी के चतुर्थ दशक में हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त इसकी आवश्यकता अधिक अनुभव की गई तथा

NOTES

इस ओर शिक्षा संस्थाओं व विशेषकर विश्वविद्यालयों ने निर्देशन ब्यूरो के संगठन में विशेष भूमिका अदा की। भारत को निर्देशन से परिचित कराने का श्रेय भी श्री सोहनलाल एवं श्री के.जी. सैयदेन को है। भारत में 1938 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान विभाग जिसके अध्ययन श्री जी.एस.बोस थे– ने निर्देशन कार्य प्रारम्भ किया। मुम्बई में भी व्यावसायिक निर्देशन सम्बन्धी एक शाखा रिटायर्ड सी.ए.श्री बाटलीबॉय के प्रयत्न से 1941 में खोली गई। जालंधर में संयुक्त ईसाई मिशन, बम्बई में रोटरी क्लब तथा वाई. एम. सी. ए. कलकत्ता ने इस सम्बन्ध में कई पुस्तकें प्रकाशित कीं।

सन् 1947 में उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद में मनोविज्ञान ब्यूरो की स्थापना आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में की गई जिसका उद्देश्य उत्तर प्रदेश की माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा के साथ निर्देशन का भी प्रावधान करना था। इसके साथ ही साथ भारत में विभिन्न प्रान्तों में व्यावसायिक सूचनाओं के एकत्रीकरण, वितरण तथा मानव मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के निर्माण के उद्देश्य से निर्देशन ब्यूरो स्थापित किए गए। पटना विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक शोध संस्थान ने विभिन्न शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्रों में निर्देशन सेवाओं के संगठन में अपना योगदान दिया।

सन् 1952-53 में मुदालियर आयोग (माध्यमिक शिक्षा आयोग) ने निर्देशन को महत्वपूर्ण समझा तथा इससे सम्बन्धित सुझाव भी अपनी रिपोर्ट में दिए–

1. शिक्षा निर्देशन में शिक्षा अधिकारियों के कार्यों पर अधिक ध्यान दिया जाए।
2. सभी शिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षित निर्देशन कार्यकर्ताओं एवं कैरियर मास्टर्स की नियुक्ति की जाए।
3. केन्द्र द्वारा समस्त राज्यों में प्रशिक्षण केन्द्र खोलने चाहिए जहाँ निर्देशनकर्ता उत्तम प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें।

माध्यमिक शिक्षा आयोग के द्वारा दिए गए उक्त सुझावों के आधार पर 'केन्द्रीय मंत्रालय' ने 'केन्द्रीय शिक्षा तथा व्यावसायिक ब्यूरो' की स्थापना कर निर्देशन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए।

सन् 1954 में दिल्ली में 'केन्द्रीय शिक्षा तथा व्यावसायिक ब्यूरो' की स्थापना की गई। सन् 1960 में 'अखिल भारतीय निर्देशन कार्यालय भवन' की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य देश की माध्यमिक शिक्षा की प्रगति को जाँचना तथा इस क्षेत्र से सम्बन्धित संस्थाओं को प्रोत्साहन देना था। सन् 1961-62 में लखनऊ विश्वविद्यालय में 'शिक्षक परामर्शदाताओं' की योजना प्रारम्भ की गई तथा 'विश्वविद्यालय रोजगार ब्यूरो' की भी स्थापना टैगोर पुस्तकालय के एक भाग में की गई।

सन् 1964 में कोठारी आयोग की स्थापना की गई जिसके अध्यक्ष डॉ. दौलतसिंह कोठारी थे। इस आयोग ने भी निर्देशन को महत्वपूर्ण माना तथा इससे सम्बन्धित निम्नलिखित संस्तुतियाँ दीं।

1. निर्देशन को शिक्षा का एक अभिन्न अंग मानना चाहिए। निर्देशन छात्रों को घर तथा विद्यालयी परिस्थितियों में सर्वोत्तम संभावित समायोजन में भी सहायता प्रदान करें।
2. निर्देशन प्राथमिक कक्षा की सबसे छोटी इकाई से प्रारम्भ करना चाहिए।
3. प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में उन्हें नैदानिक परीक्षणों एवं व्यक्तिगत विभिन्नताओं की समस्याओं से अवगत कराने का प्रावधान हो।
4. यथासम्भव स्तरीय अध्यापकों के प्रशिक्षण में निर्देशन प्रत्ययों व तकनीकों को कार्यक्रम में शामिल किया जाए।
5. माध्यमिक स्तरीय अध्यापकों के प्रशिक्षण में निर्देशन प्रत्ययों व तकनीकों को कार्यक्रम में शामिल किया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 में भी इस पक्ष पर विशेष बल दिया गया है। इसके पश्चात् राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, (2000), (2005) में भी उच्च माध्यमिक स्तर के छात्रों को विषय चुनकर किस धारा में प्रवेश लेना है इसके लिए विद्यालयों में कैरियर अध्यापक नियुक्त करने की बात की, परन्तु आज की निर्देशन के क्षेत्र में आशनुरूप कार्य नहीं हो पा रहा है। आज प्रत्येक क्षेत्र में जिस तीव्रता से विकास हो रहा है, उसे देखते हुए विभिन्न प्रकार के निर्देशन की आवश्यकता तेजी से अनुभव की जा रही है।

निर्देशन के उद्देश्य (Objectives of Guidance)

निर्देशन की प्रक्रिया एक पूर्ण उद्देश्य पूर्ण प्रक्रिया है। बिना उद्देश्य निर्धारित किए इस प्रक्रिया का पूर्ण होना सम्भव ही नहीं है। निर्देशन के कार्य क्षेत्रों में विभिन्नता होने के कारण ही निर्देशन के विभिन्न उद्देश्य होते हैं। यदि हम बिना किसी उद्देश्य के निर्देशन प्रक्रिया आरम्भ करते हैं तो निर्देशन में संलिप्त विभिन्न उप-क्रियाओं को दिशा नहीं मिल सकती और वे क्रियायें निरर्थक होकर रह जाती हैं।

शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर निर्देशन के उद्देश्य बदलते रहते हैं, अर्थात् शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर निर्देशन के विभिन्न उद्देश्य होते हैं। इसका वर्णन निम्न प्रकार है-

प्राथमिक स्तर पर निर्देशन के उद्देश्य– शिक्षा में प्राथमिक स्तर का तात्पर्य कक्षा 1-8 तक का स्तर होता है। पहली कक्षा में बालक पहली बार घर से बाहर निकलता है। घर से बाहर निकलकर बाहर जब विद्यालय के वातावरण में प्रवेश करता है तो उसे कई प्रकार के तालमेल करने होते हैं। स्कूल का वातावरण बच्चे के लिए बहुत विस्तृत होता है। बच्चा स्कूल में आकर कई प्रकार के व्यक्तियों, बालकों तथा अध्यापकों के सम्पर्क में आता है। साथ ही, स्कूल में आकर माता-पिता जैसी सुरक्षा बालक को प्राप्त नहीं होती। बच्चा भयभीत तथा संकोची होने के कारण स्कूल में दबा-दबा सा रहता है। वे बच्चे तो और भी कठिनाई में पड़ जाते हैं जो पूर्ण रूप से अपने माता-पिता पर ही आश्रित रहते हैं। ऐसी परिस्थिति के उद्देश्यों में यह भी शामिल हो जाता है कि निर्देशन प्रदान करने वाला व्यक्ति ऐसे बच्चों का पता लगाये और उनकी समायोजन सम्बन्धी समस्याओं को नियंत्रित करे।

प्राथमिक स्तर पर बच्चे के विकास में शिक्षक, माता-पिता निर्देशनकर्ता, स्कूल, समाज के लोग सभी का योगदान होता है। इन सभी के कार्यों में तालमेल भी आवश्यक है। ये सभी लोग बाल को समाज तथा विद्यालयी क्रियाओं के साथ सामंजस्य स्थापित करने में मदद करते हैं। इन सब को ध्यान में रखते हुए प्राथमिक स्तर पर निर्देशन के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं–

1. सभी प्रकार के कार्य-कर्ताओं के कार्यों में तालमेल बिठाना जैसे- शिक्षक, स्कूल, समाज-सेवक के कार्य तथा निर्देशन प्रदान करने वाले व्यक्ति का कार्य इत्यादि।

2. बच्चों को स्कूल के रीति-रिवाजों तथा स्कूल की कानून व्यवस्था के अनुसार ढालने में सहायता का उद्देश्य।
3. स्कूल-क्रियाओं के प्रति उचित दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता का उद्देश्य।
4. बच्चों के शारीरिक तथा संवेगात्मक स्थिरता के विकास में सहायता का उद्देश्य।
5. स्कूल में समायोजन सम्बन्धी समस्याओं का पता करना तथा उन्हें नियंत्रित करने का उद्देश्य।
6. बच्चों को स्वावलम्बी बनाने का उद्देश्य।
7. बच्चों में सहयोग की भावना पैदा करने का उद्देश्य।
8. प्राथमिक स्तर से स्कूल के अगले उच्च स्तर के लिए बच्चों को तैयार करने का उद्देश्य।

माध्यमिक स्तर पर निर्देशन के उद्देश्य– बच्चा प्राथमिक स्तर से निकलकर माध्यमिक स्तर में प्रवेश करता है। इस स्तर पर निर्देशन का कार्य-क्षेत्र प्राथमिक-स्तर पर निर्देशन के कार्य-क्षेत्र की अपेक्षा अधिक व्यापक होता है। माध्यमिक स्तर पर बालक किशोरावस्था में प्रवेश कर जाता है, उसके संवेग, चिन्तन, निर्णय प्रक्रिया में बदलाव आता है इसके अतिरिक्त इस स्तर पर विद्यार्थी स्वयं को व्यक्तिगत, सामाजिक, सांवेगिक, आर्थिक आदि समस्याओं से घिरा पाता है तथा इन समस्याओं का समाधान अति आवश्यक हो जाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निर्देशन की व्यापक एवं संगठित सेवाओं की आवश्यकता बनी रहती है।

अतः माध्यमिक स्तर पर निर्देशन के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं –

1. प्राथमिक स्तर से निकलकर जब बालक माध्यमिक स्तर में आता है तब उसे नये वातावरण का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त नये साथियों, अध्यापकों के बीच तालमेल बिठाने में कठिनाई उत्पन्न होती है। अतः माध्यमिक स्तर पर निर्देशन का यह उद्देश्य होना चाहिए कि वह विद्यार्थियों की इन समस्याओं के समाधान में उसकी सहायता करें।

NOTES

2. माध्यमिक स्तर पर आकर विद्यार्थियों के समक्ष विषय चयन में कठिनाई की समस्या उत्पन्न हो जाती है अत: माध्यमिक स्तर पर बालकों में विषय चयन की समझ पैदा करना निर्देशन का उद्देश्य होना चाहिए।
3. माध्यमिक स्कूलों में विद्यमान निर्देशन सेवा का उद्देश्य बाकों की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को दूर करना होना चाहिए।
4. विद्यार्थियों को शिक्षा के नये उद्देश्यों से परिचित करवाने में सहयता करना।
5. अच्छे नियोजन की आवश्यकता से विद्यार्थियों को परिचित करवाने में सहायता करना।
6. बालक की संवेगात्मक तथा व्यक्तिगत समस्याओं को दूर करने में सहायता करना।
7. पाठ्य सहगामी क्रियाओं के बारे में छात्रों को उचित निर्देशन प्रदान करना।
8. विद्यार्थियों के अध्ययन के लिए उचित अभिप्रेरणा पैदा करना।

महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय स्तर पर निर्देशन के उद्देश्य– जब बालक माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में प्रवेश करता है तब वह पूर्ण युवक के रूप में विकसित हो चुका होता है और उसके व्यक्तित्व का अपना एक स्वरूप बन जाता है। उनमें से बहुतों के समक्ष स्पष्ट उद्देश्य हाते हैं। लेकिन बहुत से विद्यार्थी ऐसे भी होते हैं जो कॉलेज में आकर भी विभिन्न समस्याओं से स्वयं को घिरा पाते हैं।

इस प्रकार की परिस्थितियों में उच्च शिक्षा के निर्देशन कार्यक्रम का उद्देश्य यही रहता है कि ऐसे दोनों प्रकार के विद्यार्थियों की तात्कालिक आवश्यकताओं की ओर ध्यान दें। जो विभिन्न कारणों से अपने कॉलेज के कार्यों में उन्नति करने के योग्य रह पाते तथा वे जो अपनी प्रतिभा का सदुपयोग उत्तम शैक्षिक सुविधाओं के कारण अपने कार्य के विभिन्न क्षेत्रों में भली–भाँति कर सकते हैं।

अत: उच्च शिक्षा के स्तर पर निर्देशन के उद्देश्यों को निम्नलिखित ढंग से भी प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. कॉलेज तथा विश्वविद्यालय में प्रवेश आदि से सम्बन्धित आवश्यक सूचनाएँ उपलब्ध करवाना।
2. कॉलेज तथा विश्वविद्यालय में सहगामी क्रियाओं के सम्बन्ध में जानकारी देना।
3. विद्यार्थियों को उनकी आर्थिक कठिनाईयों को दूर करने में सहायता प्रदान करना।
4. विद्यार्थियों को विषयों के चयन में सहायता प्रदान करना जिससे वे अपने भावी कार्यक्रम एवं लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें।
5. विद्यार्थियों की व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान में सहायता करना।
6. विद्यार्थियों को अध्ययन के साथ-साथ रोजगार प्राप्त करने में सहायता देना।
7. विद्यार्थियों को आगामी अध्ययन के अवसरों (स्थानीय, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय या विदेशों में) की जानकारी प्रदान करना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्देशन कार्यक्रमों के उद्देश्य भी विस्तृत होते हैं तथा इनमें सुधार लाने के लिए और इनके परिणामों का विश्लेषण करने के लिए इस कार्यक्रम का प्रगतिशील होना अति आवश्यक है। इसके लिए हमें शोध कार्य पर अधिक बल देना चाहिए, ताकि इस कार्यक्रम को और अधिक प्रभावशाली ढंग से लागू किया जा सके।

निर्देशन के सिद्धान्त (Principles of Guidance)

निर्देशन कार्यक्रम को सफलतापूर्वक चलाने के लिए निर्देशन के अर्थ के साथ-साथ यह समझना भी अति आवश्यक है कि निर्देशन की प्रक्रिया किन सिद्धान्तों पर आधारित है। निर्देशन के सिद्धान्तों को जान लेने के पश्चात् इस कार्यक्रम को अधिक सुगमता से लागू किया जा सकता है। निर्देशन के सिद्धान्तों पर सभी मनोवैज्ञानिक तथा शिक्षाशास्त्री एक मत नहीं हैं। उदाहरणार्थ-जोन्स के निर्देशन के पाँच सिद्धान्त, हम्फ्रीज और ट्रेक्सलर ने सात सिद्धान्त, क्रो एवं क्रो ने चौदह सिद्धान्तों का वर्णन किया है। इन सभी विद्वानों द्वारा स्वीकृत सिद्धान्तों में कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जिनका अनुकरण प्रायः सभी के द्वारा किया जाता है। निर्देशन के कुछ प्रमुख सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं-

NOTES

1. **व्यक्ति की प्रतिष्ठा को स्वीकृत करना–** समाज का निर्माण व्यक्तियों से ही होता है। समाज को शक्तिशाली एवं प्रगति सम्पन्न बनाने हेतु आवश्यक है कि समाज के प्रत्येक सदस्य की प्रतिष्ठा को स्वीकार किया जायेगा। प्रत्येक व्यक्ति के अस्तित्व को एक समान महत्व दिया जाये। निर्देशन का लक्ष्य ही यह होता है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी शक्तियों तथा क्षमताओं के अनुरूप अधिकतम विकास की ओर ले जाना होता है। अतः शिक्षा, व्यवसाय, परिवार आदि विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्ति की योग्यताओं एवं क्षमताओं के अनुरूप अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करने पर बल देकर हम व्यक्ति की प्रतिष्ठा को स्वीकार करते हैं।
2. **व्यक्तिगत विभिन्नताओं को महत्व देना–** प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व विशिष्ट होता है। इस दृष्टि से यह आवश्यक हो जाता है कि समस्याओं के समाधान के लिए निर्देशन कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व व्यक्तियों की विभिन्नताओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाना चाहिए तथा उन अध्ययनों के परिणामों को आधार बनाकर ही व्यक्ति के विकास तथा समस्या समाधान के लिए निर्देशन की रूपरेखा तैयार करनी चाहिए।
3. **समस्त व्यक्तित्व को महत्व** – निर्देशन की प्रक्रिया में व्यक्ति के समस्त व्यक्तित्व को महत्व देना चाहिए यदि निर्देशनकर्ता व्यक्ति के एक या कुछ ही पक्षों का अध्ययन करेगा तो वह सही निर्देशन नहीं दे सकेगा।
4. **सर्वांगीण विकास को प्राथमिकता** – व्यक्तित्व के विकास के लिए यह आवश्यक होता है कि उसके व्यक्तित्व का प्रत्येक पक्ष विकसित हो। व्यक्ति को व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए ध्यानपूर्वक कार्य करना चाहिए।
5. **निर्देशन प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा हो** – निर्देशन का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है निर्देशन प्रक्रिया पूर्ण करने का उत्तरदायित्व किसी प्रशिक्षित व्यक्ति को देना चाहिए, ताकि वह व्यक्ति निर्देशन से सम्बन्धित व्यक्तियों तथा विभागों में सम्पर्क स्थापित करके इस कार्यक्रम को सुचारू रूप से क्रियान्वित कर सके।
6. **निर्देशन का लचीला कार्यक्रम** – व्यक्ति तथा समाज की आवश्यकताओं में भिन्नताएँ होती हैं। अतः इन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निर्देशन का कार्यक्रम बहुत कठोर न होकर लचीला होना चाहिए ताकि इसमें आवश्यकता पड़ने पर आवश्यक परिवर्तन किए जा सकें।

7. **निर्देशन का क्षेत्र विस्तृत हो** – निर्देशन का लाभ केवल उन्हीं व्यक्तियों को ही नहीं मिलना चाहिए जो स्पष्ट तथा प्रत्यक्ष रूप से निर्देशन माँगते हैं या इसकी आवश्यकता प्रदर्शित करते हैं। बल्कि निर्देशन का लाभ उन व्यक्तियों के लिए भी होना चाहिए जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से निर्देशन का लाभ उठा सकते हों। अतः इसके लाभ का क्षेत्र विस्तृत होना चाहिए।

8. **कुशल व्यक्तियों का उत्तरदायित्व** – निर्देशन के कार्यक्रम में व्यक्तियों की विशिष्ट समस्याओं के समाधान के प्रयास किए जाते हैं। ऐसा करने का उत्तरदायित्व केवल उन्हीं व्यक्तियों पर होना चाहिए जो इस कार्य को करने में अधिक कुशल हों।

9. **निर्देशन सभी के लिए** – निर्देशन कार्यक्रम का सबसे प्रमुख सिद्धान्त यह है कि निर्देशन किसी एक या विशिष्ट प्रकार के व्यक्ति के लिए न होकर सभी प्रकार के व्यक्तियों के लिए होना चाहिए क्योंकि जीवन के हर चरण में हर व्यक्ति को निर्देशन की आवश्यकता रहती है।

10. **निर्देशन जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है** – निर्देशन प्रक्रिया जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है क्योंकि जीवन के हर पग पर व्यक्ति को विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं के बिना व्यक्ति आगे कदम नहीं बढ़ा सकता।

निर्देशन के क्षेत्र (Areas of Guidance)

निर्देशक एक आन्दोलन के रूप में व्यक्ति के व्यावसायिक एवं समायोजनात्मक विकास हेतु प्रारंभ किया गया था लेकिन धीरे-धीरे निर्देशन के क्षेत्र का विस्तार होता गया और निर्देशन शिक्षा प्रणाली का महत्वपूर्ण अंग बन गया। इसकी भूमिका का भी विस्तार हो गया। निर्देशन व्यक्ति की पूर्णता के साथ, उसके समग्र विकास के साथ, उसकी प्रसननता के साथ, समाज में व्यक्ति को महत्वपूर्ण बनाने हेतु उद्देश्य के साथ जुड़ गया। इस प्रकार निर्देशन के कार्य क्षेत्र का विकास अनेक दशाओं में सम्पन्न हुआ। निर्देशन के क्षेत्र में आधुनिक दिशाओं (modern trends) को छः प्रमुख श्रेणियों की सीमाओं में विभाजित किया जाता है –

(1) शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidance)

NOTES

(2) व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance)

(3) व्यक्तिगत निर्देशन (Personal Guidance) या समायोजन हेतु निर्देशन (Guidance for Adjustment)

(4) विकासात्मक निर्देशन (Development Guidance)

(5) उपव्यावसायिक निर्देशन (Advocational Guidance) या विश्राम काल सम्बन्धी निर्देशन (Leisure-time Guidance) या मनोरंजन निर्देशन (Recreational Guidance)

(6) स्वास्थ्य निर्देशन (Health Guidance)

उपरोक्त में से कुछ क्षेत्रों के विषय में विस्तृत विवरण आगे आने वाले अध्यायों में प्रस्तुत किया जायेगा तथापि यहाँ पर निर्देशन के विभिन्न क्षेत्रों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जाना अत्यन्त उपयोगी होगा।

(1) शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidence)

आधुनिक युग में शिक्षा के क्षेत्र में नये शोध कार्यों तथा जीवन की परिवर्तित आवश्यकताओं के कारण अनेक नये क्षेत्रों एवं विशिष्टताओं का विकास हुआ है। अल्प-विकसित एवं पिछड़े क्षेत्रों में रहने वाले विद्यार्थियों के समक्ष भी शिक्षा के विषय क्षेत्र के चयन की समस्या प्रकट होती है। कई बार गलत परामर्श के कारण या किसी उपर्युक्त परामर्श के अभाव में अनुपयुक्त विषय संबंधी चयन के कारण विद्यार्थी शैक्षिक सफलता और समायोजन से वंचित रह जाता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि शैक्षिक निर्देशन का प्रश्न तब उत्पन्न होता है जब विद्यार्थी के सामने कतिपय विकल्प हों। शैक्षिक निर्देशन शिक्षण अथवा व्यक्ति के साथ शिक्षा का समायोजन अथवा विद्यालय से छात्र के समायोजन हेतु निर्देशन जैसे प्रश्नों से भिन्न है। रूथ स्ट्रैंग (Ruth Strang) के अनुसार शैक्षिक निर्देशन (i) पाठ्यक्रम सम्बन्धी चयन करने, (ii) आगे की शिक्षा संबंधी में निर्णय लेने, और (iii) श्रेणी सुधार के लिए आवश्यक सहयोग प्रदान करता है।

"Educational guidance is a process concerned with bringing about, between an individual pupil with his distinctive characteristics on one hand and differing groups of opportunities and requirements on other, a favourable setting for the individual's development or education."

– George F. Myers

"शैक्षिक निर्देशन एक प्रक्रिया है जिसका सम्बन्ध एक ओर अपनी समस्त प्रभेदक विशिष्टताओं सहित एक विद्यार्थी और दूसरी ओर अवसरों एवं आवश्यकताओं के विभिन्न समूह के मध्य व्यक्ति के विकास या शिक्षा हेतु एक अनुकूल विन्यास स्थापित करने से है।" **– जार्ज एफ. मायर्स**

(2) अमेरिका के नेशनल वोकेशनल गाइडेन्स एसोसिएशन (1921, 1924, 1930 & 1937) द्वारा अपनाये गये सिद्धान्तों के अनुसार "व्यावसायिक निर्देशन वह प्रक्रिया है जो व्यक्ति को व्यावसायिक चयन करने, व्यवसाय हेतु तैयारी करने, उसमें प्रविष्ट होने तथा उसमें प्रगति करने में सहयोग प्रदान करता है, यह मूलतः भविष्य की योजना बनाने तथा उसमें प्रगति करने में सहयोग प्रदान करता है, यह मूलतः भविष्य की योजना बनाने और कैरियर सम्बन्धी निर्णय लेने एवं संतोषजनक व्यावसायिक समायोजन स्थापित करने हेतु आवश्यक निर्णय लेने और चयन करने की सहायता करने से सम्बन्धित है।"

"Vocational guidance is fundamentally an effort to conserve the priceless native capacities of youth and costly training provided for youth in the schools. It seeks to conserve these richest of all human resources by aiding the individual to invest and use them where they will bring great satisfaction and success to himself and greatest benefit to society." **– Myers, George F.**

"व्यावसायिक निर्देशन मूलतः युवकों की अमूल्य क्षमताओं तथा विद्यालयों द्वारा उन्हें प्रदान किये जाने वाले महँगे प्रशिक्षण को संरक्षित करने का प्रयत्न है। यह मानवीय संसाधनों में से सर्वाधिक कीमती संसाधन को संरक्षित करने हेतु व्यक्ति को वहाँ (उस क्षेत्र में) निवेश करने और उपयोग करने में सहयोग प्रदान करता है, जहाँ उसे अपने लिए सर्वाधिक प्रसन्नता एवं सन्तुष्टि और समाज को सर्वाधिक लाभ हो।" **—मायर्स**

उपर्युक्त दोनों परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि व्यावसायिक निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति तथा समाज या व्यावसायिक संगठन दोनों के हितों की रक्षा करना है। जहाँ व्यक्ति की सन्तुष्टि एवं प्रगति महत्वपर्णू है, वहीं समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति, राष्ट्रीय मांग की पूर्ति, और व्यावसायिक संगठन के हितों की पूर्ति भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। यदि दोनों पक्षों के मध्य उपयुक्त सामंजस्य स्थापित नहीं होता है तो दोनों पक्षों को हानि होती है और उनकी प्रगति बाधित होती है।

NOTES

(3) व्यक्तिगत निर्देशन (Personal Guidance)

व्यक्तिगत निर्देशन का सम्बन्ध मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के साथ है। आधुनिक जीवन की समस्याओं के कारण जीवन की सभी अवस्थाओं एवं क्षेत्रों में समायोजनात्मक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। व्यक्ति को समायोजनात्मक समस्याओं के समाधान हेतु अनेक निर्णय लेने होते हैं, कई प्रकार के व्यवहार प्रारूपों में से एक का स्वयं अपनी विशेषताओं और क्षमताओं तथा परिवेश की विशेषताओं एवं माँगों के संदर्भ में चयन करना पड़ता है जो कि व्यक्ति की सांवेगिक समस्याओं के समाधान में सहायक सिद्ध होते हैं। ऐसा चयन करने के लिए व्यक्ति को जब बाहर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा सहयोग प्रदान किया जाता है तब सहयोग 'व्यक्तिगत निर्देशन' अथवा 'समायोजन हेतु निर्देशन' कहा जाता है। अब यह स्वीकार किया जाता है कि अधिकांश व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान में इस क्षेत्र में व्यावसायिक ज्ञान और दक्षता की आवश्यकता होती है। रॉबर्ट एच० मैथ्यूसन (Robert H. Mathewson) के अनुसार, व्यक्तिगत निर्देशन व्यक्तियों को चयन करने, नियोजन और समायोजन तथा प्रभावशाली आत्मनिर्देशन करने और व्यक्तिगत व्यावसायिक (Professional) सहयोग की प्रक्रिया है।

निर्देशन के इस क्षेत्र में (i) विद्यालय/कॉलेज/विश्वविद्यालय के प्रांगण में विद्यार्थियों के समक्ष प्रकट होने वाली सांवेगिक समस्याएँ, (ii) व्यक्तिगत जीवन की उलझने तथा (iii) सामाजिक जीवन में आने वाली समायोजनात्मक समस्याओं को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार सामाजिक समायोजन, पारिवारिक समायोजन, वैवाहिक समायोजन, अवकाश के साथ समायोजन, भविष्य एवं अल्पकालिक कार्य क्षेत्रों में समायोजन, स्वास्थ्य समायोजन आदि अधिकांश क्षेत्र व्यक्तिगत समायोजन की सीमा में सम्मिलित किये जाते हैं। आधुनिक जीवन की जटिलताओं और समस्याओं के परिवर्तित स्वरूप के संदर्भ में यहाँ वर्णित क्षेत्रों में से कुछ एक के पृथक महत्व को ध्यान में रखकर मनोरंजन सम्बन्धी निर्देशन और स्वास्थ्य निर्देशन को अब स्वतन्त्र अस्तित्व प्राप्त हो गया है।

(4) विकासात्मक निर्देशन (Developmental Guidance)

रूथ स्ट्रैंग (Ruth Strong) के अनुसार किशोरों की प्रमुख आवश्यकता अपने अन्दर परिपक्वता का सर्वोत्तम विकास करना होता है। अन्य आवश्यकताएँ व्यक्ति के अपने सर्वोत्तम विकास की आवश्यकता में से ही उत्पन्न होती है।

व्यक्तिगत निर्देशन जहाँ यह प्रयत्न करता है कि व्यक्ति परिवेश में ठीक बैठ सके (fit-into the situation) वहीं विकासात्मक निर्देशन व्यक्ति को अपने-सर्वोत्तम ढंग (own-best-way) से विकसित होने में सहयोग प्रदान करता है।

हेविंगर्स्ट (Havinghurst) ने किशोरों के लिए ऐसे 10 विकासात्मक लक्ष्यों की पहचान की है जिनके विकास हेतु निर्देशानात्मक सहयोग वांछित है :-

(i) अपने आयु वर्ग के दोनों लिंगों के लोगों से नये तथा अधिक उपयुक्त सम्बन्धों को विकसित करना,

(ii) अपने शरीर गठन और देहयष्टि को स्वीकार करना,

(iii) नर व नारी की सामाजिक भूमिकाओं को अर्जित करना,

(iv) आर्थिक स्वतन्त्रता का विश्वास अर्जित करना,

(v) माता-पिता तथा अन्य वयस्कों से सांवेगिक रूप से स्वतन्त्रता प्राप्त करना,

(vi) व्यवसाय का चयन करना तथा उसकी तैयारी करना,

(vii) विवाह एवं पारिवारिक जीवन संबंधी तैयारी करना,

(viii) उन बौद्धिक क्षमताओं और सम्प्रत्ययों को विकसित करना जो नागरिक दक्षताओं के लिए अत्यन्त आवश्यक होती हैं,

(ix) सामाजिक दृष्टि से जिम्मेदार व्यवहार को विकसित करना,

(x) मूल्यों की प्रणाली एवं नैतिक ढाँचे को अर्जित करना।

इस प्रकार विकासात्मक निर्देशन अधिकांश व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहयोग प्रदान करने से सम्बन्धित है। विकासात्मक निर्देशन व्यक्ति के सामाजिक निर्देशन (Social Guidance) तथा व्यक्तित्व विकास (Personality Development) सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

(5) उपव्यावसायिक निर्देशन (Avocational Guidance)

निर्देशन के इस क्षेत्र को उपव्यावसायिक निर्देशन के अतिरिक्त अवकाश-काल निर्देशन या मनोरंजन निर्देशन भी कहा जाता है। व्यक्ति के जीवन में प्रतिदिन कुछ घंटे अथवा सप्ताह या माह में कुछ एक दिन फुर्सत के होते हैं जबकि

NOTES

उसे अपनी दैनिक व्यवस्तता (शिक्षा या व्यवसाय) से अवकाश प्राप्त रहता है, जिसमें वह मनोरंजन प्राप्त करने के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के कार्य करता है। कोई व्यक्ति अपना अवकाश कैसे व्यतीत करता है, अवकाश काल कितने उपयोगी एवं सुखदायी ढंग से व्यतीत करता है, उसका महत्व कार्य-काल के लिए भी होता है। यदि फुर्सत के समय को प्रभावशाली ढंग से मनोरंजन, शौक, शारीरिक-सामाजिक गतिविधियों में इस प्रकार व्यतीत किया जाये कि व्यक्ति को सुख की अनुभव प्राप्त हो, समाज के अन्य वर्गों को लाभ पहुँचे और समय का सदुपयोग होने की अनुभूति अर्जित हो तो कार्य के समय व्यक्ति के निष्पादन स्तर में भी सुधार होता है। यही कारण है कि उपव्यावसायिक निर्देशन महत्वपूर्ण है। उपव्यावसायिक निर्देशन के अभाव में उन व्यक्तियों के लिए समायोजनात्मक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनके पास अवकाश या फुर्सत के समय की अधिकता होती है। उपव्यावसायिक या अवकाश-काल निर्देशन का क्षेत्र मनोरंजन निर्देशन द्वारा व्यापक और विस्तृत होता है। मनोरंजन निर्देशन का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन के प्रकार का चयन करना होता है जबकि उपव्यावसायिक निर्देशन देते समय चयन के प्रथम चरण में व्यक्ति के समक्ष मूल प्रश्न यह होता है कि व्यक्ति यह विचार करे कि उसे अपने अवकाश का उपयोग मनोरंजन, शौक (hobby) या सामाजिक कार्य के लिए अथवा किसी अन्य रूप में करना है। व्यक्ति को ऐसे कार्य-कलाप का चयन करना होता है जो उसकी क्षमताओं और विशेषताओं के अनुरूप हो। यहाँ पर निर्देशन व्यक्ति को स्वयं अपने बारे में तथा विविध प्रकार के कार्य-कलापों के बारे में जानने में भी सहयाता प्रदान करता है।

(6) स्वास्थ्य निर्देशन (Health Guidance)

स्वास्थ्य निर्देशन आधुनिक जीवन की बदलती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक है। आधुनिक जीवन शैली एवं आधुनिक परिवेश के कारण स्वास्थ्य के क्षेत्र में अनेक नई समस्याओं को रेखांकित किया गया है जहाँ बचाव (prevention) तथा उपचार (treatment) हेतु विभिन्न प्रकार के व्यवहार करने की आवश्यकता होती है। स्वास्थ्य निर्देशन में निम्न उद्देश्यों को सम्मिलित किया जाता है :-

(i) ऐसी जीवन शैली अर्थात् खान-पान, रहन-सहन, कार्य-विश्राम या व्यायाम का चयन करने में सहयोग करना जो व्यक्ति, समाज तथा परिवेश में स्वास्थ्य की दशाओं को बढ़ायें;

(ii) विभिन्न प्रकार के रोग बचाव की विधियों द्वारा व्यक्ति को परिचित कराना तथा उन्हें अपनाने के लिए व्यक्ति को प्रोत्साहित करना जैसे टीकाकरण के बारे में जानना और उसे अपनाना;

(iii) यौन रोगों (STD, AIDS) के फैलाव का प्रमुख आधार अनुचित व्यवहार है, अतः युवकों को उपयुक्त जीवन शैली के चयन में सहायता करना)

परामर्श-संकल्पना, अर्थ एवं परिभाषा

परामर्श एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें अनेक उपागमों एवं प्रविधियों को प्रयुक्त करके व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास, समस्याओं का समाधान, व्यवहारगत या समायोजनात्मक समस्याओं के परिहार एवं उपचार द्वारा व्यक्ति के जीवन को सहज, उद्देश्यपूर्ण एवं संतोषप्रद बनाने का प्रयत्न किया जाता है।

वेबस्टर शब्दकोष के अनुसार- "परामर्श का आशय पूछताछ, पारस्परिक तर्क-वितर्क अथवा विचारों का पारस्परिक विनिमय है।" कार्ल रोजर्स ने परामर्श को आत्म बोध की प्रक्रिया में सहायक बताया है। इसी प्रकार रॉबिन्सन (1950) के अनुसार- "परामर्श के अंतर्गत वे समस्त परिस्थितियाँ सम्मिलित कर ली जाती हैं जिनके आधार पर परामर्शप्रार्थी या सेवार्थी को अपने वातावरण में समायोजन हेतु सहायता प्राप्त होती है। परामर्श का सम्बन्ध दो व्यक्तियों से होता है- परामर्शदाता एवं सेवार्थी या परामर्शप्राथी। परामर्श के आशय के सन्दर्भ में एक विशिष्ट पक्ष यह भी है कि परामर्श की प्रक्रिया के द्वारा सेवार्थी या परामर्शप्रार्थी पर किसी निर्णय को थोपा नहीं जाता है, वरन उसकी सहायता इस प्रकार की जाती है कि वह स्वयं निर्णय लेने में सक्षम हो सके। रूथ स्ट्रेंग ने परामर्श की प्रक्रिया को एक संयुक्त प्रयास बताया है जिसका सारतत्व एक ऐसा सम्बन्ध है जिसमें व्यक्ति, जिसका परामर्श हो रहा है, स्वयं को पूर्णतः अभिव्यक्त करने के लिए स्वतंत्रता का अनुभव करता है, तथा अपने लक्ष्यों, उनकी सिद्धि के बारे में स्पष्टीकरण व उनकी सिद्धि हेतु अपने सामर्थ्यों और समस्याओं के प्रकट होने पर उनके समाधान की विधियों या साधन के बारे में आत्मविश्वास अर्जित करता है।" जॉर्ज मायर्स के मतानुसार परामर्श का कार्य तब संपन्न होता है, जब यह सेवार्थी को अपने निर्णय स्वयं लेने के लिए बुद्धिमतापूर्ण विधियों का उपयोग करके सहायता प्रदान करता है।

NOTES

परामर्श की प्रकृति

परामर्श की उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के पश्चात् हम परामर्श की प्रकृति के विषय में निम्नलिखित बिन्दुओं का उल्लेख कर सकते हैं :

1. परामर्श समस्त निर्देशन कार्यक्रम का सक्रिय भाग है।
2. परामर्श व्यक्ति की समस्या पर केन्द्रित होता है।
3. परामर्श दो व्यक्तियों (परामर्शदाता एवं सेवार्थी) के बीच व्यावसायिक सम्बन्ध की प्रक्रिया है।
4. परामर्श मधुर एवं सहयोगात्मक वातावरण में ही संभव है।
5. परामर्श अधिगम केन्द्रित प्रक्रिया है।
6. परामर्श की प्रक्रिया में बातचीत, वार्तालाप एवं बहस द्वारा समस्या को स्पष्ट किया जाता है।
7. परामर्श लोकतांत्रिक होता है। यह लोकतांत्रिक पद्धति की स्थापना करता है। परामर्श व्यक्ति को चयन करने और उस पर अमल करने में सहायता करता है।
8. उत्तम परामर्श सेवार्थी द्वारा लिए निर्णय के रूप में होता है।
9. परामर्श पूर्णरूप से स्वयं-निर्देशन पर आधारित है।
10. परामर्श एक व्यावसायिक सेवा है।
11. परामर्श व्यक्तियों को उन दोषों या अयोग्यताओं को समाप्त करने या उनमें सुधार करने में सहायता देता है जो उनके सीखने की प्रक्रिया में रूकावट डालती हैं। ये सुधार मूलभूत कौशलों जैसे पढ़ना और सामाजिक समायोजन द्वारा किये जा सकते हैं।

परामर्श की मूलभूत अवधारणाएं

1. परामर्श के लिए अनुकूल वातावरण आवश्यक है।
2. वातावरण की गोपनीयता आवश्यक है।
3. जब तक प्रार्थी इस प्रक्रिया में स्वेच्छा एवं तत्परता के साथ भाग नहीं लेता है, तब तक परामर्श सफल नहीं होता है।

4. परामर्शदाता को परामर्श की प्रक्रिया के दौरान सेवार्थी के सम्मान एवं मर्यादा का आदर करना चाहिए।
5. परामर्श अधिगम परिस्थिति है।
6. परामर्श इस मान्यता को लेते हुए दिया जाता है कि परामर्श में प्रयुक्त साधन व्यक्ति के विकास या उसकी इस दिशा में सहायता करेंगे।
7. परामर्श यह भी उत्तरदायित्व लेता है कि व्यक्ति को परिवर्तनों के योग्य बनाया जाए ताकि उनका उचित समायोजन हो।
8. परामर्शदाता के पास अनुभव, प्रशिक्षण तथा व्यक्तिगत दृष्टिकोण का होना आवश्यक है।

विभिन्न परामर्श सिद्धांत

मैकडैनियल और शैफ्टल के अनुसार परामर्श प्रक्रिया निम्नलिखित मूल सिद्धांतों पर आधारित है–

1. **स्वीकृति का सिद्धांत** – इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक सेवार्थी को एक व्यक्ति के रूप में समझा जाए और उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाए। व्यक्ति के अधिकारों को परामर्शदाता पूर्ण सम्मान प्रदान करे।
2. **व्यक्ति के सम्मान का सिद्धांत**– परामर्श की सभी विचारधाराएँ व्यक्ति के सम्मान पर बल देती हैं अर्थात् व्यक्ति की भावनाओं का आदर करना परामर्श प्रक्रिया का आवश्यक अंग होना चाहिए।
3. **उपयुक्तता का सिद्धांत**– परामर्श ऐसा सम्बन्ध है जिसमें कुछ आशा बँधती है तथा वातावरण व्यक्ति के अनुकूल होने लगता है। सभी विचारधाराएँ परामर्श के सापेक्ष सम्बन्ध को स्वीकार करती हैं।
4. **व्यक्ति के साथ सोचने का सिद्धांत**– परामर्श व्यक्ति के साथ सोचने पर बल देता है। 'किसके लिए सोचना' और 'क्यों सोचना' – इन दोनों बातों में भेद करना आवश्यक है। यह परामर्शदाता की भूमिका है कि वह सेवार्थी के आसपास की सभी शक्तियों के बारे में सोचें, सेवार्थी की चिंतन प्रक्रिया में शामिल हों और उसकी समस्या के सम्बन्ध में सेवार्थी के साथ मिलजुल कर कार्य करें।

NOTES

5. **लोकतंत्रीय आदर्शों के साथ निरंतरता का सिद्धांत–** सभी सिद्धांत लोकतंत्रीय आदर्शों के साथ जुड़े हुए हैं। लोकतांत्रिक आदर्श व्यक्ति को स्वीकार करने की माँग करते हैं और दूसरे के अधिकारों का उपयुक्त सम्मान चाहते हैं। परामर्श प्रक्रिया व्यक्ति के सम्मान के आदर्श पर आध ारित है। यह व्यक्तिगत विभिन्नताओं को मानने वाली प्रक्रिया है।

6. **सीखने का सिद्धांत–** परामर्श की सभी विचारधाराएँ परामर्श प्रक्रिया में सीखने के तत्त्वों की विद्यमानता को मानते हैं।

परामर्श की विधियाँ एवं तकनीक

परामर्श द्वारा प्रयुक्त विधियाँ एवं तकनीक विद्यार्थी की विशेषता और व्यक्तित्व के अनुसार होनी चाहिए। विलियमसन ने परामर्श-तकनीकों को निम्नलिखित पाँच शीर्षकों के अंतर्गत वर्णित किया है-

1. **मधुर सम्बन्ध स्थापित करना–** जब पहली बार सेवार्थी परामर्शदाता के पास आता है तो परामर्शदाता का सबसे पहला कार्य होता है कि वह उसके साथ स्वागतपूर्ण तरीके से पेश आये। उसे आरामदेह स्थिति में लोकर सेवार्थी को विश्वास में ले लेना चाहिए। मधुर सम्बन्ध स्थापित करने का मुख्य आधार होता है- परामर्शदाता की योग्यता की ख्याति, व्यक्तिगतता का सम्मान तथा साक्षात्कार से पहले विश्वास और सेवार्थी के साथ संबंधों को विकसित करना।

2. **स्वयं-बोध उत्पन्न करना–** सेवार्थी को स्वयं की योग्यताओं और उत्तरदायित्वों का स्पष्ट ज्ञान एवं समझ होनी चाहिए। इन सबकी समझ सेवार्थी को इन योग्याताओं और उत्तरदायित्वों के प्रयोग से पहले ही हो जानी चाहिए। इसके लिए परामर्शदाता को परीक्षण-संचालन और परीक्षण अंकों की व्याख्या का अनुभव होना आवश्यक है। परीक्षण-अंक निदान और पूर्व अनुमान परामर्श प्रक्रिया में ठोस-आधार प्रदान करते हैं।

3. **परामर्श क्रिया के लिए कार्यक्रम का नियोजन और सुझाव–** परामर्शदाता सेवार्थी के लक्ष्यों, उसकी अभिवृत्तियों या दृष्टिकोणों आदि से प्रारंभ करता है तथा अनुकूल और प्रतिकूल आँकड़ों या तथ्यों की ओर संकेत करता है। वह साक्षियों या प्रमाणों को तोलता है और वह इस तथ्य को समझता है कि वह विद्यार्थी को कोई विशेष सुझाव क्यों दे रहा है।

विलियमसन का मानना है कि परामर्शदाता को अपने दृष्टिकोण का कथन निश्चितता से करना चाहिए। उसे अनिर्णायक की तरह नहीं दिखना चाहिए।

परामर्शदाता प्रत्यक्ष सुझाव या सलाह देने से नहीं डरता है क्योंकि सेवार्थी आँकड़ों का उपयोग नहीं समझ सकता है। विलियमसन ने आँकड़े इकट्ठे करने के पश्चात् सेवार्थी को सलाह देने की निम्न विधियाँ बताई हैं–

i. **प्रत्यक्ष सलाह–** इसमें परामर्शदाता निर्भय होकर अपनी राय बता देता है। इस प्रकार की पद्धति बड़े कठोर मस्तिष्क वाले लोगों के लिए उपयुक्त है जो किसी भी क्रिया या गतिविधि का विरोध नहीं करते हैं तथा फेल होने से भी नहीं डरते हैं।

ii. **पर्सुएसिव (Persuasive) विधि–** यह विधि तब लाभकारी होती है जब आँकड़े स्पष्ट रूप से कोई निश्चित विकल्प की ओर संकेत करते हैं। परामर्शदाता प्रमाणों का केवल विश्लेषण करता है और विकल्पिक क्रियाओं के परिणामों को देखता है।

4. **व्याख्यात्मक विधि–** व्याख्यात्मक विधि परामर्श में सबसे अधिक वांछित विधि है। इसमें पमरार्शदाता ध्यानपूर्वक लेकिन धीरे-धीरे निदानात्मक आँकड़े को समझता है और उन संभावित स्थितियों की ओर संकेत करता है जिनमें सेवार्थी की शक्तियों या क्षमताओं का प्रयोग किया जा सकता हो। इसमें आँकड़ों के उपयोग को सविस्तार और ध्यानपूर्वक तर्क सहित समझाया जाता है। इस सहायता में उपचारात्मक कार्य और शैक्षिक या शिक्षण नियोजन का कार्य सम्मिलित होते हैं।

5. **अन्य कार्यकर्ताओं का सहयोग–** कोई भी परामर्शदाता सभी प्रकार के सेवार्थियों/विद्यार्थियों की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता है। उसे अपनी सीमाओं को पहचानना चाहिए तथा उसे विशिष्टीकृत सहायता के स्रोतों का ज्ञान होना चाहिए। उसे विद्यार्थियों को अन्य उपयुक्त स्रोतों से सहायता प्राप्त करने की सलाह देनी चाहिए।

इन उपर्युक्त विधियों एवं तकनीकों के अतिरिक्त कुछ अन्य परामर्श प्रविधि याँ भी हैं जो निम्नलिखित हैं –

1. **मौन धारण–** कभी-कभी कई परिस्थितियों में मौन रहकर किसी की बात को सुनना बोलने से अधिक प्रभावशाली होता है। जब सेवार्थी अपनी समस्या का वर्णन कर रहा होता है तब परामर्शदाता सेवार्थी को बड़े गौर से सुनता है तथा उस पर गंभीरता से विचार करता है।

2. **स्वीकृति–** परामर्शदाता सेवार्थी की बात को अस्थायी स्वीकृति देता है। कई बार परामर्शदाता कुछ शब्द इस प्रकार से कह देता है जिनसे यह मालूम पड़ जाता है कि सेवार्थी जो कुछ कह रहा है उसे वह स्पष्टत: समझ रहा है। परन्तु इन शब्दों को परामर्शदाता इस तरह कहता है जिससे सेवार्थी के बोलने के धाराप्रवाह में कोई रूकावट नहीं आती है। उदाहरणार्थ, 'ठीक है', 'बहुत अच्छा', 'हूँ' इत्यादि। कई अवसरों पर परामर्शदाता अपनी स्वीकृति प्रदान करने के लिए कोई शब्द नहीं कहता, केवल स्वीकारात्मक ढंग से सिर ही हिला देता है।

3. **स्पष्टीकरण–** कई अवसरों पर परामर्शदाता को चाहिए कि वह सेवार्थी की बातें का या उसके द्वारा दिए गए वर्णन का स्पष्टीकरण करे। परामर्शदाता का यह कर्तव्य है कि वह सेवार्थी को इस बात से परिचित करा दे कि वह उसे समझ रहा है तथा स्वीकार करता है। कभी-कभी परामर्शदाता को यह आवश्यक हो जाता है कि वह सेवार्थी के वर्णन का स्पष्टीकरण कर दे, परन्तु स्पष्टीकरण करते समय सेवार्थी को किसी प्रकार की जोर-जबरदस्ती का आभास नहीं होना चाहिए।

4. **पुनकर्थन–** स्वीकृति एवं पुनरावृत्ति दोनों से ही सेवार्थी को यह बोध होता है कि परामर्शदाता उसकी बात को समझ रहा है तथा स्वीकार करता है। पुनरावृत्ति के द्वारा परामर्शदाता उसी बात को दोहराता है जिसे सेवार्थी ने वर्णित किया है परन्तु परामर्शदाता पुनर्कथन के समय किसी प्रकार का संशोधन या स्पष्टीकरण सेवार्थी के मापन में नहीं करता है।

5. **मान्यता–** अपनी समस्या के बारे में सेवार्थी विभिन्न विचार व्यक्त करता है। परामर्शदाता इन विचारों में से कुछ को मान्यता प्रदान कर देता है तथा कुछ को नहीं। जिन विचारों को मान्यता प्रदान कर दी जाती है वे सेवार्थी को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। सेवार्थी परामर्शदाता के ज्ञान एवं व्यक्तित्व से भी प्रभावित होता है।

6. **प्रश्न पूछना–** सेवार्थी को अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में अधिक विचार करने की प्रेरणा देने के लिए परामर्शदाता को कुछ प्रश्न पूछने

चाहिए। ये प्रश्न सेवार्थी के वक्तव्य का अंश समाप्त होने के पश्चात् ही पूछे जाने चाहिए।

7. **हास्य रस–** परामर्श के दौरान सेवार्थी का तनाव दूर करने के लिए तथा वार्तालाप को रूचिकर बनाने के लिए हास्य-रस का प्रयोग करना भी एक आवश्यकता सी बन जाती है।

8. **सारांश स्पष्टीकरण–** सेवार्थी के वक्तव्य का कुछ भाग लाभकारी नहीं भी हो सकता है। इसके कारण समस्या स्वयं ही सेवार्थी को अस्पष्ट दिखाई देती है। ऐसी स्थिति में परामर्शदाता के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह सेवार्थी के भाषण को संक्षिप्त करे तथा उसका संगठन करे जिससे सेवार्थी समस्या को अधिक स्पष्ट रूप से समझ सके। परामर्शदाता का प्रयास यही रहना चाहिए कि वह कभी भी अपनी ओर से विचार ना जोड़े।

9. **विश्लेषण–** सेवार्थी की समया के लिए परामर्शदाता समाधान प्रस्तुत करने की पहल कर सकता है। लेकिन परामर्शदाता सेवार्थी से उस हल पर अमल नहीं करवा सकता। परामर्शदाता सेवार्थी पर ही छोड़ देता है कि वह उस समाधान को स्वीकार करे या अस्वीकार करे या उसमें कुछ संशोधन करे। इस सम्बन्ध में सेवार्थी पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला जाता है।

10. **व्याख्या या विवेचना–** परामर्शदाता को सेवार्थी के वक्तव्य की ही विवेचना या व्याख्या करने का अधिकार होना चाहिए। उसे अपनी तरफ से कुछ नहीं जोड़ना चाहिए। परामर्शदाता व्याख्या द्वारा सेवार्थी के वक्तव्य का परिणाम निकालता है। इन निष्कर्षों को निकालने में अकेला सेवार्थी असमर्थ होता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि परामर्शदाता द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अन्य परीक्षणों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से मेल खा सकते हैं और नहीं भी।

11. **परित्याग–** कई बार सेवार्थी जो कहता या सोचता है वह त्रुटिपूर्ण होता है। इस प्रकार की त्रुटिपूर्ण विचारधाराओं को त्यागना चाहिए। इसका परित्याग करने के लिए परामर्शदाता को बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए ताकि सेवार्थी विद्रोही प्रवृत्ति का न हो जाए और इस परित्याग का उल्टा अर्थ न निकाल ले।

12. आश्वासन– परामर्श की सबसे महत्वपूर्ण तथा मनोवैज्ञानिक पक्ष से जुड़ी प्रविधि के रूप में 'आश्वासन' प्रदान करने से वे सेवार्थी की समस्या हल होने की आशा बंध जाती है। आश्वासन द्वारा परामर्शदाता सेवार्थी के कथनों को स्वीकार भी करता है और स्वीकृति के साथ-साथ अनुमोदित या समर्थन प्रदान करता है। आश्वासन के समान प्रभाव दिखाई देते हैं। आश्वासन को स्वीकृति से अधिक विस्तृत या व्यापक माना जाता है। अतः आश्वासन में स्वीकृति भी सम्मिलित होती है।

परामर्श के लिए साक्षात्कार की आवश्यकता

साक्षात्कार केवल एक तकनीक है जो परामर्श में प्रयुक्त होती है। परामर्श एक विशाल तथा विस्तृत शब्द है। जोन्स के अनुसार साक्षात्कार को निर्देशित की एक सामान्य विधि कहना बहुत मुश्किल है। साक्षात्कार समस्त परामर्श नहीं है क्योंकि परामर्श अनौपचारिक परिस्थितियों में और संक्षिप्त वार्तालाप में ही हो सकता है। साक्षात्कार सामूहिक निर्देशन में प्रयुक्त नहीं हो सकता है और इसका सम्बन्ध परामर्श की स्थिति में केवल क्लीनिकल विधियों से ही होता है अर्थात् जब संपर्क परामर्शदाता और केवल एक सेवार्थी के बीच हो। साक्षात्कार परामर्श के साथ बहुत ही निकट से जुड़ा हुआ है। साक्षात्कार आमने-सामने की बहस है। साक्षात्कार सदा ही परामर्श की केन्द्रीय प्रक्रिया होता है। लेकिन यह भी नहीं कहा जा सकता है कि यह साक्षात्कार ही सब कुछ होता है क्योंकि परामर्श की अन्य प्रक्रियाओं में टेलीफोन पर बातचीत तथा दो व्यक्तियों में पत्र-व्यवहार आदि भी शामिल होते हैं। बुद्धिमत्तापूर्ण परामर्श में अनुवर्ती कार्य भी शामिल होता है जो परामर्श-साक्षात्कार के पश्चात् और व्यक्ति के परामर्श-साक्षात्कार से पहले के अध्ययन द्वारा किया जाता है। संक्षेप में, परामर्श प्रक्रिया के तीन मुख्य चरण होते हैं-

1. व्यक्ति का पूर्ण एवं विस्तृत अध्ययन
2. समस्या पर आमने-सामने बहस करना
3. एक प्रणालीबद्ध अनुवर्ती कार्यक्रम

साक्षात्कार इस प्रक्रिया में दूसरा चरण होता है अर्थात् समस्या पर आमने-सामने बैठकर बहस करना। इस प्रकार हम देखते हैं कि साक्षात्कार परामर्श-प्रक्रिया का एक अंश मात्र ही है।

परामर्श में हाल की प्रवृत्तियाँ

परामर्श की प्रक्रिया की प्रकृति को देखते हुए तथा परामर्शदाता की भूमिका को देखते हुए परामर्श-साहित्य में परामर्श की तीन प्रमुख विचारधाराएँ हैं जो कि निम्नलिखित हैं-

1. निर्देशीय या परामर्शदाता-केन्द्रित या नियोजक-परामर्शः परामर्शदाता-केन्द्रित परामर्श परामर्शदाता के इर्दगिर्द घूमता है। वह मैत्री और सहायता द्वारा मध ुर-सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करता है। इसमें परामर्शदाता बहुत सक्रिय होता है और वह प्रायः अपने स्वयं के दृष्टिकोण और भावनाएँ स्वतंत्र रूप से प्रकट करता रहता है। वह सेवार्थी की अभिव्यक्तियों का मूल्यांकन करता है। इस विचारधारा के अनुसार परामर्श साक्षात्कार का नेतृत्व करता है। इसमें परामर्शदाता प्रायः प्रमापीकृत प्रश्नों की एक श्रृंखला पूछता है तथा प्रत्येक का अंतिम उत्तर हो सकता है। परामर्शदाता सेवार्थी की अभिव्यक्ति और भावनाओं के विकास की आज्ञा नहीं देता है। एक विशेषज्ञ के तौर पर वह नेतृत्व करता है, मूल्यांकन करता है और सुझाव या सलाह देता है।

   भावनाओं के विकास की आज्ञा नहीं देता है। एक विशेषज्ञ के तौर पर वह नेतृत्व करता है, मूल्यांकन करता है और यह सुझाव या सलाह देता है।

   इस विचारधारा के मुख्य प्रवर्तक मिन्नेसोटा विश्वविद्यालय के ई.जी. विलियमसन हैं। इस प्रकार इस विचारधारा के अंतर्गत परामर्शदाता सेवार्थी की समस्या को हल करने का मुख्य उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। इस प्रक्रिया में परामर्शदाता समस्या की खोज और उसे परिभाषित करता है, निदान करता है तथा समस्या के बारे में सब कुछ स्वयं ही बताता है।

2. अनिर्देशीय परामर्श या सेवार्थी-केन्द्रित या अनुमत परामर्शः अनिर्देशीय परामर्श या सेवार्थी-केन्द्रित या अनुमत परामर्श के मुख्य प्रवक्ता कार्ल. आर. रोजर्स हैं। इस सिद्धांत का विकास बहुत वर्षों में हुआ। इसलिए इस प्रकार के परामर्श में कई क्षेत्र शामिल होते रहे जैसे- व्यक्तित्व का विकास, सामूहिक नेतृत्व, शिक्षा एवं अधिगम, सृजनात्मकता, पारस्परिक सम्बन्ध तथा पूर्ण रूप से क्रियाशील व्यक्ति की प्रकृति। इस सिद्धांत का विकास 1930 और 1940 के बीच हुआ। इस सिद्धांत का विश्वास है

NOTES

कि व्यक्ति के अन्दर ही उसकी स्वयं की समस्या को सुलझाने के पर्याप्त साधन मौजूद होते हैं। परामर्शदाता का कार्य तो केवल इतना ही है कि वह ऐसा वातावरण प्रदान करे जिसमें सेवार्थी वृद्धि के लिए स्वतंत्र हो ताकि वह जैसा चाहे, वैसा ही व्यक्ति बन सके। यह विचारधारा व्यावसायिक और शैक्षिक समस्याओं के संवेगात्मक पक्षों को महत्व देती है और परामर्श–प्रक्रिया के हिस्से के रूप में निदानात्मक सूचना को अस्वीकार करती है।

सेवार्थी–केन्द्रित परामर्श सेवार्थी के इर्द–गिर्द घूमता है। इसमें सेवार्थी को वार्तालाप में नेतृत्व करने के लिए और स्वयं के दृष्टिकोणों, भावनाओं और विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। परामर्शदाता अधिकतर निष्क्रिय ही रहता है। वह सेवार्थी के विचारों, भावों, भावनाओं और अभिव्यक्तियों के धाराप्रवाह में हस्तक्षेप नहीं डालता है। परामर्शदाता सेवार्थी की बातचीत करने में पूरी सहायता करता है। बुनियादी तौर पर परामर्शदाता मधुर–सम्बन्ध स्थापित करके दोनों पक्षों में पारस्परिक विश्वास की भावना उत्पन्न करने का ही प्रयास करता है। इस विचारधारा या उपागम में मुक्त–अंत प्रश्न ही पूछे जाते हैं। ये प्रश्न पूर्ण रूप से रचित नहीं होते हैं। इन प्रश्नों के उत्तरों में व्यक्ति स्वयं के व्यक्तित्व का प्रक्षेपीकरण कर देता है। परामर्शदाता का अधिकतर सम्बन्ध सेवार्थी द्वारा बताई गई संवेगात्मक विषय–वस्तु के संक्षेपीकरण से होता है।

जब सेवार्थी उत्तर दे रहा होता है तब परामर्शदाता उपयुक्त तरीकों से उसे इस बात के लिए प्रोत्साहित करता है जिससे वह विस्तार से बोल सके। जिस प्रकार के प्रश्न परामर्शदाता सेवार्थी से पूछता है उससे सेवार्थी यह महसूस करने लगता है कि परामर्शदाता वास्तव में ही व्यक्तिगत तौर पर सेवार्थी के विचारों का सम्मान करता है और साक्षात्कारकर्ता सेवार्थी में रूचि ले रहा है।

परामर्शदाता मात्र तथ्यों की खोज के लिए ही प्रश्न नहीं पूछता है। अनिर्देशीय परामर्श के लिए विशेषज्ञ प्रत्येक व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक रूप से स्वतंत्र होने का अधिकार देते हैं। इस प्रकार के परामर्श में निदानात्मक यंत्रों का या तो बहुत ही कम प्रयोग होता है या फिर होता ही नहीं है। यह परामर्श वृद्धि–अनुभव है। इसमें सेवार्थी अपनी बुद्धि या समझ से कार्य कर

सकता है। इसमें बौद्धिक पक्षों की अपेक्षा संवेगात्मक या भावात्मक पक्षों पर बल दिया जाता है।

3. समन्वित परामर्श या संकलक परामर्श या समाहारक परामर्श: कई बार कई परामर्शदाता न तो निर्देशीय परामर्श की विचारधारा से सहमत होते हैं और न ही अनिर्देशीय परामर्श की विचारधारा से। ऐसी परिस्थिति में परामर्शदाता एक अन्य प्रकार के परामर्श का विकास करने में सफल हुए। यह विचारधारा निर्देशीय और अनिर्देशीय परामशी की विचारधाराओं के मध्य का परामर्श है। इसी मध्य के परामर्श की विचारधारा को ही 'समंवित परामर्श' या 'समहारक परामर्श' या 'संकलक परामर्श' कहा जाता है।

इस प्रकार के परामर्श में परामर्शदाता न तो अधिक सक्रिय होता है और न ही अधिक निष्क्रिय होता है। इस प्रकार के परामर्श के मुख्य प्रवर्तक हैं- एफ.सी. थोर्न। इस प्रकार के परामर्श में व्यक्ति की आवश्यकताओं और उसके व्यक्तित्व का अध्ययन परामर्शदाता द्वारा ही किया जाता है। इसके पश्चात् परामर्शदाता उन प्रविधियों का चयन करता है जो व्यक्ति के लिए अधिक उपयोगी या सहायक रहेगी। इस परामर्श प्रक्रिया में परामर्शदाता पहले निर्देशीय परामर्श विधि शुरू कर सकता है तथा कुछ समय बाद अनिर्देशीय परामर्श विधि का अनुसरण कर सकता है या इसके विपरीत- जैसा स्थिति चाहे। इससे प्रविधियाँ परिस्थिति और सेवार्थी के अनुसार होनी चाहिए। इस प्रकार के परामर्श में जो प्रविधियाँ प्रयोग की जाती हैं- वे हैं पुनः विश्वास, सूचना प्रदान करना, केस-हिस्ट्री, परीक्षण आदि।

इस प्रकार समन्वित परामर्श में दोनों, परामर्शदाता और सेवार्थी सक्रिय और सहयोगात्मक होते हैं। दोनों बार-बारी से वार्तालाप करते हैं और संयुक्त रूप से समस्या का समाधान करते हैं।

परामर्श में जनमाध्यम तथा वृहद् माध्यम का बढ़ता महत्व

जनमाध्यम का विकास वैज्ञानिक तकनीकी व उपकरणों के कारण बढ़ता जा रहा है। इनके द्वारा व्यक्ति अपनी बहुमुखी प्रतिभा को भरपूर अवसर प्रदान कर सकता है। वह अपनी आवश्यकता के साथ-साथ अपनी पसंद व रूचि के लिए भी अनेक सूचनाओं के संपर्क मं रहना चाहता है। वह

NOTES

अपने आस-पास के अलावा विश्वस्तर पर भी अपना सम्बन्ध जोड़कर अपनी पहचान को इन जनमाध्यमों जैसे रेडियो, दूरदर्शन, मेल, उत्सव, प्रदर्शनी, म्यूजियम, प्रदर्शनवार्ताएँ, विज्ञापन व जनमत के अन्य साधनों से और अधिक सुदृढ़ बनाता है। इनके द्वारा वह अपने नवीन कैरियर में और अधिक निखार लाने तथा प्रतिस्पर्धा के दौर में आगे बढ़ने के लिए भी जनमाध्यम के सशक्त साधनों से मार्गदर्शन एवं परामर्श की नवीन प्रवृत्ति, नए आयामों एवं नई प्रक्रिया को अपनाता है। वह मार्गदर्शन एवं परामर्श के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष स्वरूपों से जुड़ता है और सूचनाओं एवं तथ्यों को ग्रहण कर निर्णय लेने में सक्षम होता है।

व्यक्ति के जीवन से जुड़ा कोई भी क्षेत्र यथा- शिक्षा, आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, राजनैतिक, शारीरिक, व्यक्तिगत एवं पारिवारिक वातावरण उसकी विकास क्रियाओं के लिए दबाव समूह की भूमिका अदा करते हैं। जनमाध्यम तथा बहुमाध्यमों के द्वारा वह इनके संपर्क में आता है तथा निरंतर होने वाली प्रगति से अवगत होता रहता है। मार्गदर्शन व परामर्श के प्रचार माध्यमों से व्यक्ति तथा सेवार्थी का क्षेत्र भी व्यापक हो जाता है। केवल संस्थान के दायरे में नहीं अपितु नए पाठ्यक्रम तथा व्यवसायों की जानकारी के लिए भी वह इन्टरनेट, ई-मेल, ई-लर्निंग आदि से विभिन्न सूचनाएँ प्राप्त करता है जो अद्यतन भी होतीं हैं और साथ ही सत्य भी होती हैं। इन सूचनाओं में पर्याप्तता तथा प्रमाणिकता होती है।

जनमाध्यम तथा बहुमाध्यम का मार्गदर्शन एवं परामर्श की सेवाओं से अत्यंत महत्वपूर्ण तथा गहरा सम्बन्ध है। परामर्श सेवाओं द्वारा विभिन्न जनमाध्यम तथा बहुमाध्यम की जानकारी प्राप्त होती है। साथ ही जनमाध्यम व बहुमाध्यम से मार्गदर्शन एवं परामर्श प्रदान किया जाता है। अतः दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवाओं में जनमाध्यम एवं बहुमाध्यम की निम्नलिखित भूमिका है-

1. सेवार्थी से जुड़ी सूचनाओं का प्रचार एवं प्रसार।
2. सेवार्थी को सही, पर्याप्त एवं सही समय पर जानकारी देना।
3. प्रामाणिक सूचनाओं को सेवार्थी के हित में उपयोग करना।
4. सूचनाएँ एवं जानकारी सर्वव्यापक करना।

5. सूचनाओं को विविध रूप से प्रसारित करना।
6. सूचनाओं के लिए समय एवं अवधि का निर्धारण।
7. कैरियर से जुड़ी विशेषज्ञ वार्ताओं का आयोजन।
8. कैरियर मेले व प्रदर्शनियों का प्रबंध करना।
9. सम्बंधित व्यक्तियों से राय, सुझाव तथा प्रतिक्रिया प्राप्त करना।
10. प्रदर्शन तथा अल्प अभ्यास की सुविधा।

परामर्श और मार्गदर्शन में शोध

मार्गदर्शन एवं परामर्श-सेवाओं के विकास के लिए इनसे सम्बंधित शोध कार्य भी करने आवश्यक होते हैं। फ्रैंक डब्ल्यू. मिलर ने शोध को निम्नलिखित तीन बातों के लिए आवश्यक बताया है-

1. मार्गदर्शन एवं परामर्श कार्य में लगातार सुधार के लिए।
2. विद्यालय तथा समुदाय द्वारा मार्गदर्शन एवं परामर्श कार्यक्रम के निरंतर समर्थन के लिए।
3. विद्यालय स्टाफ के मार्गदर्शन एवं परामर्श कार्य का शैक्षिक कार्यक्रम, अतिरिक्त विद्यालय गतिविधियों तथा प्रशासन में योगदान की सूझबूझ पैदा करने के लिए

शोध या अनुसंधान सेवा का सम्बन्ध मार्गदर्शन तथा परामर्श की परिस्थितियों के सम्बन्ध में तथ्यों को इकट्ठा करने, सिद्धांतों के प्रतिपादन करने तथा परामर्श सेवाओं का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन करने से होता है। इस सेवा में पत्राचार विधि का उपयोग भी किया जाता है।

शोध के उद्देश्य

संक्षेप में हम शोध के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित कर सकते हैं-

1. निर्देशन अथवा मार्गदर्शन कार्यक्रमों में सुधार करना।
2. व्यावसायिक उत्तरदायित्वों को पूरा करना।
3. व्यक्ति के व्यावसायिक विकास को प्रोत्साहित करना।

4. खोज में सहायता करना।

5. अन्य सूचना सेवाओं जैसे व्यक्तिगत-आधार संकलन सामग्री, उपक्रम सेवा, परामर्श सेवा, नियुक्ति सेवा, अनुवर्ती सेवा तथा आत्म-तालिका सेवा की प्रभावशीलता तथा उपयोगिता को बढ़ाने के लिए शोध कार्य अनिवार्य होता है। इन सभी सेवाओं की प्रभावशीलता इनके मूल्यांकन पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त नई परिस्थितियों में निर्मित नई प्रविधियों को खोजने के प्रति रूचियों का विकास करने के लिए भी शोधकार्य आवश्यक है।

6. अनेक राष्ट्रीय तथा शैक्षिक स्तरों पर मार्गदर्शन एवं परामर्श-कार्य में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों की सहायता के लिए तथा इनसे सम्बन्धित समस्याओं को दूर करने के लिए भी शोध कार्य महत्वपूर्ण है।

शोध कार्य के प्रकार

शोध कार्य निम्नलिखित तीन प्रकार के हो सकते हैं -

1. मौलिक शोध- मौलिक शोध को बुनियादी शोध भी कहा जाता है। इस प्रकार के शोध की सहायता से परामर्श के आधारभूत सिद्धांतों एवं विभिन्न सेवाओं में प्रयुक्त होने वाली विधियों का मूल्यांकन किया जाता है।

2. परामर्श के क्षेत्र में शोध-विभिन्न परामर्श पद्धतियों की प्रभावशीलता देखने के लिए भी शोध क्रियाएँ की जानी चाहिए।

3. अनुवर्ती सेवा सम्बन्धी शोध- उन व्यक्तियों के अनुवर्ती कार्यक्रम के लिए शोध कार्य आवश्यक है जो नव-नियुक्त व्यक्तियों का मूल्यांकन करते हैं।

4. उपक्रम सेवा के लिए शोध- किसी व्यवसाय में प्रवेश से पहले या किसी शैक्षिक पाठ्यक्रम को शुरू करने से पहले किस प्रकार की तैयारी की जानी चाहिए तथा इस तैयारी को किस प्रकार प्रभावशाली बनाया जा सकता है? इन सब बातों को जानने के लिए शोध कार्य की आवश्यकता होती है।

5. नियुक्ति की व्यवस्था में सुधार लाने के लिए शोध- नियुक्ति की प्रणाली में सुधार लाने के लिए व्यवस्था में परिवर्तन चाहिए तथा इसके लिए शोध

कार्य आवश्यक है। इस सम्बन्ध में सर्वेक्षण किया जाना चाहिए। नियुक्ति-व्यवस्था में सुधार के लिए क्रियात्मक-शोध भी किया जा सकता है।

6. शैक्षिक एवं व्यावसायिक सूचनाओं संबंधी शोध– शैक्षिक एवं व्यावसायिक सूचनाओं के बारे में शोध अनिवार्य है। इन सूचनाओं की विश्वसनीयता एवं नवीनता पर ही शैक्षिक एवं व्यावसायिक परामर्श की कुशलता निर्भर करती है। नए-नए उद्योगों एवं व्यवसायों की सूची तैयार करने के लिए शोध कार्य करना आवश्यक है। इसी प्रकार व्यावसायिक सूचनाओं के प्रसार की नई-नई पद्धतियों के सम्बन्ध में भी शोध आवश्यक होता है।

7. व्यक्तिगत, व्यावसायिक एवं शैक्षिक परामर्श के प्रभाव पर शोध– व्यक्तिगत, व्यावसायिक और शैक्षिक परामर्श के प्रभाव को जानने के लिए शोध करना चाहिए। इस बात के लिए भी शोध करना आवश्यक हो जाता है कि परामर्श से समाज के विभिन्न वर्ग कितना लाभ उठा रहे हैं।

संक्षेप में, मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवाओं की सफलता के लिए शोध कार्य चलता रहना चाहिए ताकि इस क्षेत्र में पैदा होने वाली समस्याओं का समाधान भी साथ-साथ ही होता रहे। अब हम यह जानेंगे कि परामर्श की प्रक्रिया मार्गदर्शन से किस प्रकार भिन्न है।

परामर्श और मार्गदर्शन में अंतर

हम्फ्रिज और ट्रैक्स्लर के अनुसार मार्गदर्शन के अंतर्गत वे सभी अनुभव एवं क्रिया-कलाप सम्मिलित हैं जो व्यक्ति को अपने को समझने, अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिमतापूर्ण निर्णय लेने एवं अधिक प्रभावशाली ढंग से उन्नति की योजना प्रस्तुत करने में सहयोग देते हैं। परामर्श की व्याख्या करते हुए हम्फ्रिज़ और ट्रैक्स्लर लिखते हैं कि परामर्श सेवार्थियों में निहित सम्भावनाओं को उच्चतम स्तर तक विकसित करने में दी गयी सहायता के वैयक्तीकरण का प्रक्रम है। सहायता के वैयक्तीकरण का अभिप्राय है- सहायता को एक व्यक्ति तक सीमित रखना। मार्गदर्शन एवं परामर्श के अंतर को स्पष्ट करते हुए दोनों विद्वानों ने कहा है- "मार्गदर्शन एवं परामर्श दोनों एकार्थवादी शब्द नहीं हैं- परामर्श मार्गदर्शन में समाविष्ट है। परामर्श की प्रक्रिया में साक्षात्कार एवं मूल्यांकन का प्रयोग साधन के रूप में होता है।"

NOTES

मार्गदर्शन एवं परामर्श के अंतर को निम्नलिखित प्रकार से भी स्पष्ट किया जा सकता है-

मार्गदर्शन	परामर्श
1. मार्गदर्शन की प्रक्रिया अत्यंत व्यापक है।	1. परामर्श मार्गदर्शन की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है।
2. मार्गदर्शन व्यक्तिगत भी हो सकता है और सामूहिक भी।	2. परामर्श एक समय पर केवल एक ही व्यक्ति का हो सकता है।
3. मार्गदर्शन का सम्बन्ध व्यक्तिगत समस्याओं के साथ-साथ शैक्षिक, व्यावसायिक एवं अन्य समस्याओं से भी होता है।	3. परामर्श प्रमुखतः व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य एवं भावात्मक समस्याओं के समाधान ढूँढ़ने में सहायता प्रदान करता है।
4. मार्गदर्शन किसी भी व्यक्ति प्रदान किया जा सकता है। द्वारा आवश्यक नहीं है कि मार्गदर्शन प्रदान करने वाला व्यक्ति पूर्व-प्रशिक्षित ही हो।	4. परामर्शदाता के लिए पूर्व प्रशिक्षण लेना आवश्यक होता है।
5. मार्गदर्शन वस्तुतः पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों एवं पत्राचार के द्वारा भी संभव है।	5. परामर्श में परस्पर विचार-विमर्श व तर्क- वितर्क की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

विद्यालय में मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवा

कोठारी आयोग के अनुसार मार्गदर्शन एवं परामर्श को शिक्षा का अभिन्न अंग समझा जाना चाहिए और इसे प्राथमिक स्तर से ही शुरू किया जाना चाहिए। इसी सिफारिश के अनुरूप ही विद्यालय की क्रियाओं तथा परामर्श कार्यक्रमों का नियोजन बच्चों की आवश्यकताओं एवं उनके विकास के विभिन्न चरणों के अनुसार ही किया जाना चाहिए ताकि वे बौद्धिक, सामाजिक, संवेगात्मक और व्यावसायिक क्षेत्रों में सुसमायोजित हो सकें। इस दृष्टि से बच्चों के

विकास की अवस्था के अनुरूप तथा विभिन्न विद्यालय स्तरों के अनुरूप ही मार्गदर्शन कार्यक्रमों के उद्देश्य तय किये जाते हैं। संक्षेप में, विद्यालय के विभिन्न स्तरों पर मार्गदर्शन एवं परामर्श कार्यक्रमों के निम्नलिखित विशिष्टि उद्देश्य होने चाहिए-

I. प्राथमिक स्तर

1. विशिष्ट उद्देश्य – इस स्तर में 6 से 11 वर्ष की आयु के बच्चे अर्थात् कक्षा 1 से 5 तक के बच्चे शामिल किये जाते हैं। इस स्तर पर मार्गदर्शन एवं परामर्श कार्यक्रम के निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्य होते हैं-

   क. घर से विद्यालय में विद्यार्थियों का संतोषजनक परिवर्तन या समायोजन करवाने में सहायता करना।

   ख. मूलभूत शैक्षिक कौशलों को सीखने में आ रही कठिनाईयों के निदान में सहायता करना।

   ग. विद्यार्थियों को विशेष शिक्षा प्रदान करने के लिए जरूरतमंद विद्यार्थियों ो पहचानने में सहायता, जैसे- प्रतिभाशाली, पिछड़े तथा दिव्यांग बच्चे।

   घ. विद्यालय छोड़ने वाले संभावित विद्यार्थियों को विद्यालय में ठहराए रखना।

   ङ. विद्यार्थियों को उनकी आगामी शिक्षा या प्रशिक्षण की योजना बनाने में सहायता करना।

2. **क्रियाएँ या गतिविधियाँ–** इन उपर्युक्त विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्राथमिक स्तर पर कुछ क्रियाएँ करनी होंगी। इस स्तर पर अध्यापक की केन्द्रीय भूमिका होती है क्योंकि अध्यापक बच्चों की रूचियों, योग्यताओं, आवश्यकताओं तथा प्रतिभाओं की खोज करने के लिए उत्तम स्थिति में होता है। प्राथमिक स्तर पर निम्नलिखित गतिविधियाँ या क्रियाएँ की जाती हैं-

   क. विद्यार्थियों के लिए अभिविन्यास कार्यक्रम– इसमें विद्यालय वातावरण के बारे में बच्चों को तथा उनके माता-पिता को

NOTES

बताया जाता है। उनके माता-पिता को विद्यालय तथा मार्गदर्शन कार्यक्रम में माता-पिता एवं अभिभावक की भूमिका आदि से परिचित कराया जाता है।

ख. **निदानात्मक और मूलभूत कौशलों का परीक्षण–** इस प्रकार के परीक्षणों का उपयोग प्राथमिक कक्षाओं में खूब किया जाना चाहिए ताकि दोषपूर्ण पठन की पहचान एवं निदान जल्दी ही किया जा सके क्योंकि दोषपूर्ण पठन से बहुत ही अवांछित परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

ग. **प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की खोज–** विशिष्ट प्रतिभा वाले विद्यार्थियों की विभिन्न विधियों और प्रविधियों की सहायता से खोज की जाती है। इन प्रतिभाओं में वैज्ञानिक योग्यता, सृजनात्मक योग्यता, नेतृत्व क्षमता, नाट्य तथा गायन क्षमता आदि शामिल होती है।

घ. **कुसमायोजित विद्यार्थियों की खोज–** विद्यालयों में विभिन्न रूप से कुसमायोजित विद्यार्थियों की खोज करना अति आवश्यक है। इस प्रकार की खोज के लिए विभिन्न तकनीकों जैसे निरीक्षण, परीक्षणों इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। कुसमायोजनों और दोषों में सामान्य कुसमायोजन, आवेशपूर्ण व्यवहार, धीमी गति से सीखने वाले, न्यूनतम अभिप्रेरित बच्चे, वाणी दोष, अधिगम दोष, दृष्टि दोष, शारीरिक विकलांगता (दिव्यांग) तथा विशेष स्वास्थ्य समस्याएँ इत्यादि सम्मिलित हैं। इनके लिए उपयुक्त उपचारात्मक विधियों का प्रयोग किया जाता है ताकि यथासमय इनका उपचार किया जा सके। गरीबी, सामाजिक पिछड़ेपन आदि के निवारण के लिए विशेष विधियों का विकास करना पड़ेगा।

II. मिडिल स्तर (उच्च प्राथमिक स्तर)

I. **विशिष्ट उद्देश्य–** कक्षा 6 से 8 तक मिडिल स्तर होता है। इन कक्षाओं में 11 से 14 वर्ष का आयु-समूह शामिल होता है। इन वर्षों में बच्चा किशोर अवस्था में प्रवेश कर जाता है। यह अवधि कई बच्चों के लिए बड़ी कठिन होती है। इस अवस्था में कई बच्चों को

परिवार, विद्यालय तथा समाज में समायोजन-समस्याएँ प्रकट होनी शुरू हो जाती हैं। इस स्तर पर परामर्श एवं मार्गदर्शन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

क. विद्यार्थियों को परिवार, विद्यालय और समाज में समायोजन में सहायता करना।

ख. विद्यार्थियों की योग्यताओं, अभिरूचियों एवं रूचियों को पहचानना और उनका विकास करना।

ग. विद्यार्थियों को विभिन्न शैक्षिक और व्यावसायिक अवसरों और आवश्यकताओं के बारे में सूचनाएँ प्राप्त करने के योग्य बनाना।

घ. मुख्याध्यापक और अध्यापकों को उनके विद्यार्थियों को समझने तथा अधिगम को प्रभावी बनाने में सहायता करना।

ङ. विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों को शैक्षिक और व्यावसायिक योजनाएँ बनाने में सहायता करना।

2. **क्रियाएँ या गतिविधियाँ-** उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम या क्रियाएँ की जा सकती हैं-

2.1 सामान्य क्रियाएँ-

क. विद्यालय के मुख्याध्यापक के साथ मार्गदर्शन एवं परामर्श कार्यक्रम पर विचार-विमर्श करना।

ख. विद्यालय-संकाय को इससे परिचित कराना।

ग. विद्यालय के मुख्याध्यापक द्वारा विद्यालय मार्गदर्शन समिति बनाना जिसमें कैरियर अध्यापक, शारीरिक शिक्षा अध्यापक और अध्यापक-अभिभावक एसोसिएशन का एक प्रतिनिधि शामिल हो।

2.2 विशिष्ट क्रियाएँ-

क. विद्यार्थियों से सम्बन्धित तथ्यों को इकट्ठा करना जैसे पहचान सम्बन्धी सूचनाएं, घर और परिवार की पृष्टभूमि सम्बन्धी आँकड़े तथा शैक्षिक उपलब्धियाँ।

NOTES

ख. अभिविन्यास कार्यक्रम, जैसे विद्यालय वातावरण, पाठ्यक्रम, विद्यालय में सुविधाओं के बारे में परिचय, नियमित अध्ययन द्वारा आदतों से परिचय तथा सामाजिक समायोजन के बारे में तथा खाली समय के सदुपयोग के बारे में अभिविन्यास।

ग. नए विद्यार्थियों के अभिभावकों का अभिविन्यास कार्यक्रम, जैसे विद्यालय और विद्यालय मार्गदर्शन कार्यक्रम में माता-पिता की भूमिका के बारे में अभिविन्यास।

घ. संचित अभिलेख पत्र शुरू करना।

ङ. अल्प-उपलब्धि वाले और विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों की पहचान करना।

च. बुद्धि परीक्षण की व्यवस्था करना।

छ. अधिगम वातावरण में सुधार करना।

ज. कमजोर बच्चों के लिए उपचारात्मक कार्यक्रमों के आयोजन में सहायता करना।

झ. परामर्श देना या समस्या को ध्यान में रखते हुए विशेषज्ञों के पास भेजना।

III. मिडिल स्तर (उच्च प्राथमिक स्तर)

इसमें 9वीं और 10वीं कक्षाएँ शामिल होती हैं। इसमें 14 से 16 वर्ष की आयु के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया जाता है। इस स्तर पर विद्यार्थी 10 वर्ष की शिक्षा पूरी कर लेते हैं। इसके पश्चात उनके लिए तीन रास्ते बचते हैं-

i. वें किसी कार्य-शक्ति में प्रवेश लें।

ii. वे कियी व्यावसायिक कोर्स में प्रवेश लें।

iii. वे उच्च शिक्षा प्राप्त करें ताकि वे किसी कॉलेज या विश्वविद्यालय में दाखिल हो सकें।

I. विशिष्ट क्रियाएँ-

क. विद्यार्थियों को उनकी दुर्बलताओं और शक्तियों को समझने योग्य बनाना।

ख. शैक्षिक और व्यावसायिक अवसरों और आवश्यकताओं के बारे में सूचना इकट्ठी करने के योग्य बनाना।

ग. विद्यार्थियों को शैक्षिक और व्यावसायिक चयन करने में सहायता देना।

घ. विद्यार्थियों को उनकी समस्याओं के समाधान में सहायता करना। इन समस्याओं में विद्यालय और घर में व्यक्तिगत और सामाजिक समायोजन की समस्याएँ भी शामिल हैं।

ङ. व्यावसायिक सूचनाओं के अवसर प्रदान करना।

च. विद्यार्थियों को संचित अभिलेखों, परीक्षण परिणामों आदि से उनके बारे में उन्हीं को सूचनाएँ उपलब्ध कराना।

छ. विद्यार्थी में स्वयं-प्रत्यय विकसित करना।

2. विशिष्ट क्रियाएँ-

क. योग्यताओं, अभिरूचियों, रूचियों, उपलब्धियों और अन्य मनोवैज्ञानिक चरों के बारे में आँकड़े एकत्रित करना।

ख. कार्यों से परिचित कराना।

ग. क्षेत्र-भ्रमणों का आयोजन करना।

घ. कैरियर कांफ्रेंस और कैरियर प्रदर्शनी का आयोजन।

ङ. कोर्स का चयन करने में सहायता करना।

च. अल्प-उपलब्धि और विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों की पहचान करना।

छ. माता-पिता को मार्गदर्शन प्रदान करना।

ज. समस्या को देखते हुए विशेषज्ञों और परामर्शदाता के पास भेजना।

IV. सीनियर सेकेंडरी स्तर (उच्च प्राथमिक स्तर)

इस स्तर में 11वीं और 12वीं कक्षाएँ सम्मिलित हैं और इस स्तर में 16+ से 18+ वर्ष का आयु वर्ग शामिल होता है।

I. विशिष्ट उद्देश्य–

क. निम्न सेकेंडरी स्तर के आधार पर प्राप्त सूचनाओं को ध्यान में रखते हुए विद्यार्थियों को उनके कोर्स के चयन में सहायता करना।

ख. उनकी शैक्षिक–रूचियों के सन्दर्भ में उनके कैरियर के चयन में सहायता करना।

ग. व्यक्तिगत–सामाजिक समायोजन के क्षेत्र में सहायता करना।

इन विशिष्ट उद्देश्यों के अतिरिक्त निम्न सेकेंडरी स्तर के विशिष्ट उद्देश्य भी उच्च सेकेंडरी स्तर में शामिल किये जाते हैं।

2. विशिष्ट क्रियाएँ–

क. सूची सेवा– व्यक्तिगत संचित अभिलेख पत्र रखना जारी रहता है। विद्यार्थी के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करने के लिए विभिन्न परीक्षणों तथा विधियों का प्रयोग किया जा सकता है।

ख. व्यावसायिक सूचना सेवा– इस स्तर पर स्थानीय व्यावसायिक अवसरों और स्वयं–रोजगार अवसरों के बारे में सूचनाएँ प्रदान करने पर अधिक बल दिया जाता है। इस उद्देश्य के लिए कैरियर कांफ्रेंस, क्षेत्रीय यात्राएँ, कैरियर वार्ताएँ आदि की व्यवस्था की जाती है। स्थानीय रोजगार अवसरों के बारे में सूचनाएँ इकट्ठी करने के लिए निर्देशन–कार्यकर्ता को रोज़गार कार्यालय से मिलकर कार्य करना होता है और इसी प्रकार क्षेत्र के विभिन्न उद्योगों से मेल–जोल रखना जरूरी होता है। इस स्तर पर विद्यार्थी को उसकी रूचि के व्यवसाय के विस्तृत अध्ययन में भी सहायता देने के प्रयास किये जाते हैं।

ग. परामर्श–सेवा– व्यक्तिगत, सामाजिक और शैक्षिक–व्यावसायिक समस्याओं के समाधान के लिए विद्यार्थियों को परामर्श–सेवा उपलब्ध कराई जाए। यदि प्रशिक्षित व्यक्ति उपलब्ध नहीं है तो विद्यार्थियों को अन्य अभिकरणों के पास भेज देना चाहिए।

परामर्शदाता विभिन्न मार्गदर्शन सेवाओं के द्वारा विद्यार्थियों की, सही कोर्स और कैरियर चुनने में तथा एक वयस्क की भूमिका निभाने की तैयारी में सहायता करता है।

विद्यालय निर्देशन-कार्यक्रम में स्कूल-परामर्शदाता की भूमिका-

मूलरूप से एक परामर्शदाता शिक्षा के क्षेत्र से ही एक विशेषज्ञ होता है। परामर्शदाता से मार्गदर्शन गतिविधियाँ को अन्य कर्मचारियों की तुलना में अधिक सुचारू रूप से चलाने की आशा की जाती है। भारतीय परिस्थितियों में परामर्शदाता पूर्ण-अवधि परामर्शदाता, अशं-कालीन परामर्शदाता और विजिटिंग स्कूल परामर्शदाता के रूप में होता है।

परामर्शदाता के रूप में एक मार्गदर्शन-कार्यकर्ता के उत्तरदायित्वों में निम्नलिखित विशिष्ट कार्य सम्मिलित किये जाते हैं-

(1) निदानात्मक

(2) चिकित्सात्मक

(3) मूल्यांकन और शोध

प्रत्येक विशिष्ट कार्य-क्षेत्र में विभिन्न विशिष्ट सेवाएँ और कौशल सम्मिलित किये जाते हैं। विद्यालय मार्गदर्शन कार्यक्रम को बड़े ध्यानपूर्वक नियोजित करने के पश्चात् एक परामर्शदाता क्रमबद्ध ढंग से कार्य करता है। इसके लिए परामर्शदाता विद्यार्थियों की आवश्यकताओं का सर्वेक्षण करता है, भौतिक और अन्य साधनों को इकट्ठा करता है तथा प्रशासनिक अधिकारियों से सहयोग सुनिश्चित करता है।

सामान्य रूप से परामर्शदाता विभिन्न क्रियाओं को चलाता है। एक स्कूल परामर्शदाता के विभिन्न कार्य निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत वर्णित किये जा सकते हैं-

क. विद्यार्थियों का अभिविन्यास– नए विद्यार्थियों को इस कार्यक्रम से परिचित कराया जाता है ताकि वे इस नए वातावरण में समायोजित हो सकें और विषय-वस्तु को सीखने के लिए स्वयं को स्वतंत्र महसूस कर सकें। परामर्शदाता यह सब व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से कर सकता है। इसके लिए वह सभाओं और बहसों का आयोजन कर सकता है।

NOTES

ख. विद्यार्थी-मूल्यांकन– परामर्शदाता के लिए सूचना-स्रोत और सामान एक परामर्श कार्यक्रम की आवश्यकता होती है ताकि विद्यार्थियों की परामर्शन-आवश्यकताओं को पहचाना जा सके तथा विद्यार्थियों को स्वयं को समझने में सहायता प्रदान की जा सके एवं किसी कार्य-विधि को अपनाने में सहायता दी जा सके। एक परामर्शदाता विद्यार्थी के बारे में अर्थपूर्ण सूचनाएँ विद्यार्थियों के साथ साक्षात्कार, उनके अभिभावकों के साथ साक्षात्कार तथा विद्यार्थियों से सम्बन्धित अध्यापकों के साथ साक्षात्कार करके तथा विद्यालय के अन्य व्यक्तियों से एकत्रित करता है। परामर्शदाता मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की व्यवस्था करता है, शैक्षिक रिकॉर्ड तथा अन्य रिकॉर्ड को इकट्ठा करता है तथा इन्हें क्रमबद्ध तरीके से रखता है। परामर्श-साक्षात्कार में परामर्शदाता द्वारा ये सभी सूचनाएँ विद्यार्थियों को उपलब्ध कराई जाती है तथा उन्हें इनकी व्याख्या बताई जाती है। इन सूचनाओं की व्याख्या परामर्शदाता विद्यार्थियों के माता-पिता और उनके अध्यापकों को भी आवश्यकता होने पर बताता है।

ग. शैक्षिक और व्यावसायिक सूचना सेवा- परामर्शदाता सभी सूचनाओं में समन्वय के लिए उत्तरदायी होता है। वह विद्यार्थियों और उनके माता-पिता को संभावनाओं और अवसरों का पता लगाने में सहायता करता है तथा इन सूचनाओं के प्रयोग में भी उनकी सहायता करता है। परामर्शदाता विद्यालय में 'कैरियर कॉर्नर' स्थापित करने में सहायता कर सकता है तथा कैरियर अध्यापक को सहायता प्रदान कर सकता है। वह शैक्षिक और व्यावसायिक सूचनाओं को एकत्रित करने के लिए विभिन्न विधियों को अपना सकता है, उनका वर्गीकरण करता है तथा उसे पूर्ण रखता है। एक परामर्शदाता के पास रोजगार के बारे में ताजी सूचनाएँ होती हैं तथा वह विभिन्न अधिकारियों और नियुक्तिकर्ताओं के साथ व्यक्तिगत संपर्क बनाए रखता है।

परामर्शदाता पर सूचनाओं को बाँटने का उत्तरदायित्व भी होता है। यह कार्य वह शैक्षिक भ्रमणों, अतिथि भाषणों, कैरियर कांफ्रेंस और कैरियर अध्ययन परियोजना आदि द्वारा का सकता है।

घ. परामर्श साक्षात्कार करना– एक परामर्शदाता विद्यार्थियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुरूप उन्हें परामर्श प्रदान करने के लिए उत्तरदायी

होता है। साक्षात्कार के द्वारा वह विद्यार्थियों के अनुभवों का मूल्यांकन और इन अनुभवों को उनके वास्तविक व्यवहारों से सम्बद्ध करके उनकी सहायता करता है। उसका अधिकतर कार्य शैक्षिक और व्यावसायिक मार्गदर्शन प्रदान करना ही है। परामर्शदाता विद्यार्थियों में समस्या समाधान के कौशलों और स्वतंत्र चिंतन, योजना, निर्णय लेने की योग्यता का विकास करने में सहायता प्रदान करता है। इसके लिए वह विद्यार्थियों के छोटे समूह भी बना सकता है।

ङ. **स्थानन–** बाहरी संस्थाओं और विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों के बीच एक कड़ी का कार्य करने का उत्तरदायित्व भी परामर्शदाता पर होता है ताकि विद्यार्थियों को विभिन्न सूचनाएँ प्राप्त हो सकें।

च. **शोध और मूल्यांकन–** क्या विद्यालय में मार्गदर्शन कार्यक्रम द्वारा वास्तव में वांछनीय उद्देश्य प्राप्त कर लिए गए हैं तथा क्या विद्यार्थियों की आवश्यकताएँ पूरी हो गयी हैं, इसे जानने के लिए परामर्शदाता शोध करके एक योजना तैयार करता है। इस सन्दर्भ में परामर्शदाता शोध और मूल्यांकन के कई कार्यक्रम करता है।

विशिष्ट बच्चों के लिए परामर्श

प्रकृति का नियम है कि सम्पूर्ण संसार में कोई भी दो व्यक्ति एक जैसे नहीं होते हैं। वे पर्याप्त रूप में एक-दूसरे से भिन्नता व्यक्त करते हैं। यहाँ तक कि जुड़वाँ बच्चे जो कि शक्ल-सूरत में तो एक जैसे दिख सकते हैं लेकिन वे भी अपने स्वभाव, बुद्धिलब्धि, रूचि, शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक विकास में एक-दूसरे से भिन्नता प्रदर्शित करते हैं। इन विभिन्नताओं का कारण व्यक्ति के अपने हाथों में नहीं होता है। ये विभिन्नताएँ वंशानुक्रम एवं वातावरण के प्रभाव के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती हैं। विभिन्नताओं के ज्ञान से हम यह अंदाजा लगा सकते हैं कि कोई व्यक्ति आने वाले जीवन में किस सीमा तक सफलता प्राप्त कर सकता है। क्योंकि व्यक्ति व्यवहार विभिन्नताओं द्वारा नियंत्रित होता है। हम यह भी कह सकते हैं कि ये विभिन्नताएँ ही व्यक्ति के व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवहार को स्वरूप प्रदान करती हैं। व्यक्ति की विभिन्नताओं के अनुकूल परिस्थितियों का विकास किया जाना भी अत्यंत आवश्यक है ताकि व्यक्ति का उपयुक्त समायोजन किया जा सके तथा वह कठिन परिस्थितियों का सामना करने के योग्य बन सके। व्यक्ति की

NOTES

इन विभिन्नताओं को माप कर उनके अनुकूल मार्गदर्शन कार्यक्रम का संचालन किया जाना चाहिए। व्यक्ति की इन विभिन्नताओं के अनुकूल विशिष्ट मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है।

आगे विशिष्ट आवश्यकताओं वाले समूह को दिए जाने वाले विशिष्ट मार्गदर्शन के स्वरूप की व्याख्या की गयी है।

1. प्रतिभाशाली बच्चों के लिए परामर्श की विशिष्ट कक्षाएँ

प्रतिभाशाली बच्चों से तात्पर्य उन बच्चों से है जो बुद्धि तथा उपलब्धि में सामान्य बच्चों से वरिष्ठता प्रदशित करते हैं तथा कार्य को करने के प्रयास में निरंतर उच्च स्तर बनाए रखते हैं। प्रत्येक कक्षा तथा विद्यालय में प्रतिभाशाली बच्चे होते हैं। इनका पता विभिन्न प्रविधियों जैसे बुद्धि परीक्षण, उपलब्धि परीक्षण, अवलोकन का उपयोग करके लगाया जा सकता है।

प्रतिभाशाली बच्चों के लिए विशिष्ट परामर्श की आवश्यकता होती है ताकि उनका उचित समायोजन किया जा सके तथा उनकी योग्यताओं के अनुकूल विकास के अवसर प्रदान किये जा सकें। प्रतिभाशाली बच्चों के लिए निम्नलिखित प्रयास महत्वपूर्ण हो सकते हैं–

क. **तीव्र प्रोन्नति–** प्रतिभाशाली बच्चों के सीखने की गति तीव्र होती है। इसलिए ऐसे बच्चों को तीव्र कक्षा प्रोन्नति की व्यवस्था किये जाने से बच्चों को अपनी योग्यताओं के अनुकूल विकास का उचित अवसर प्राप्त हो सकता है।

ख. **पाठ्यक्रम समृद्धि–** प्रतिभाशाली बच्चे पाठ्यक्रम को सीखने में सामान्य बच्चों से कम समय लेते हैं। इसलिए उनके समय के सदुपयोग के लिए पाठ्यक्रम में अतिरिक्त सामग्री तथा क्रियाकलापों को जोड़कर पाठ्यक्रम को उनके लिए उपयोगी बनाया जा सकता है।

ग. **योग्यता समूह–** बच्चों की योग्यता के अनुसार उनके समूह बना लिए जाएँ तथा विशेष योग्यता वाले अध्यापकों को विशेष समूह को पढ़ाने की जिम्मेदारी दी जाए तथा विशेष रूप से प्रशिक्षित मार्गदर्शन कार्यकर्ता द्वारा उन्हें शैक्षिक तथा व्यावसायिक मार्गदर्शन प्रदान किए जाए क्योंकि सभी अध्यापक उन छात्रों को पढ़ाने में सक्षम नहीं होते हैं।

घ. **विशेष विद्यालय और कक्षाएँ–** प्रतिभावान बच्चों के लिए विशेष विद्यालय तथा कक्षाओं की व्यवस्था की जा सकती है। ऐसे बच्चों की विशेषताओं के अनुसार उन्हें विकसित करने की पर्याप्त सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

NOTES

2. पिछड़े बच्चों के लिए परामर्श की व्यवस्था

पिछड़े बच्चे वे होते हैं जो अपनी आयु के अन्य बच्चों की तुलना में अत्यधिक शैक्षिक दुर्बलता प्रदर्शित करते हैं। ऐसे बच्चों की रूचि एवं ध्यान थोड़े समय तक ही बनी रहती है तथा इनके सीखने की गति मंद होती है। पिछड़े बच्चों के पिछड़ेपन के विभिन्न कारण हो सकते हैं यथा– शारीरिक, मानसिक, वातावरण सम्बन्धी तथा सामाजिक। निम्नलिखित प्रबंध पिछड़े बच्चों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं–

क. **व्यक्तिगत ध्यान–** पिछड़े बच्चों की ओर विशेष एवं व्यक्तिगत ध्यान दिए जाने की आवश्यकता होती है क्योंकि ये बच्चे सामान्य बच्चों से बहुत पीछे रह जाते हैं और अध्यापक द्वारा दिया गया सामूहिक मार्गदर्शन समझ नहीं पाते हैं।

ख. **पाठ्यसहगामी क्रियाओं की व्यवस्था–** पिछड़े बच्चे शैक्षिक उपलब्धि में पिछड़े होने के बावजूद अन्य क्षेत्रों में काफी सफल हो सकते हैं। इसलिए इनके लिए विद्यालय में विभिन्न पाठ्यसहगामी क्रियाओं की व्यवस्था की जानी आवश्यक है ताकि पिछड़े बच्चे अपनी रूचि के अनुकूल अन्य योग्याताओं का विकास कर सके।

ग. **विशिष्ट पाठ्यक्रम तथा शिक्षण विधियाँ–** पिछड़े बच्चों के शिक्षण के लिए सामान्य पाठ्यक्रम तथा सामान्य शिक्षण विधि प्रभावी नहीं होती है। इनके लिए विशिष्ट पाठ्यक्रम तथा विशिष्ट शिक्षण विधियाँ जिनमें व्यावहारिकता की प्रधानता हो, प्रयोग की जानी चाहिए तथा विशेष रूप से प्रशिक्षित अध्यापक नियुक्त किये जाने चाहिए। इनके लिए ऐसी शिक्षण विधियों का उपयोग किया जाये जिनमें सीखने की गति धीमी हो तथा जहाँ अभ्यास पर बल दिया जाता हो।

घ. **हस्त उद्योग की शिक्षा–** पिछड़े बच्चे शैक्षणिक स्तर पर पीछे रह जाते हैं। इस कारण वे उच्च शिक्षा प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाते

हैं। अतएव उन्हें हस्त उद्योगों का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। इससे उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न होगा तथा विद्यालय की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् वे किसी व्यवसाय को शुरू करके अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं।

3. बाल अपराधी बच्चे

ऐसा कोई भी बच्चा जिसका व्यवहार सामान्य सामाजिक व्यवहार से इतना भिन्न हो जाए कि उसे समाज-विरोधी कहा जा सके, बाल-अपराधी कहलाता है। बाल-अपराध संवेगात्मक द्वंद्वों का परिणाम होता है। बच्चा अपराध करके इन संवेगात्मक द्वंद्वों से मुक्ति पाना चाहता है। संवेगात्मक द्वंद्वों के अलावा बच्चे के सामाजिक, पारिवारिक, विद्यालायी तथा सामुदायिक वातावरण के साथ शरीर रचना एवं मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि से सम्बंधित अनेक कारण होते हैं जो बाल-अपराध का कारण बनते हैं।

बाल अपराधी बच्चों के लिए परामर्श की व्यवस्था-

1. **बच्चे के वातावरण में सुधार-** बच्चे के पारिवारिक, विद्यालयी तथा सामाजिक वातावरण का उसके व्यवहार पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। परामर्श तकनीकों के द्वारा बच्चे के वातावरण का अध्ययन करके, वातावरण के उन कारकों का पता लगाया जाता है जिनके कारण बच्चे बाल अपराध की ओर अग्रसर होते हैं। साथ ही इसके द्वारा वातावरण में सुधार हेतु सुझाव तथा विभिन्न व्यवस्थाएँ की जाती हैं ताकि बाल अपराध की रोकथाम की जा सके।

2. **सुधारात्मक प्रयत्न-** ऐसे बच्चे जो किन्हीं कारणवश अपराधी बन चुके हैं, उन्हें विभिन्न माध्यमों के द्वारा अपराधपूर्ण जीवन से मुक्ति दिलाने के प्रयास सुधारात्मक प्रयत्न के अंतर्गत सम्मिलित किये जाते हैं। इसमें निम्नलिखित प्रयास शामिल हैं-

   क. बाल अपराधियों के अचेतनमन का विश्लेषण कर उनकी दबी हुई इच्छाओं तथा संवेगों का पता लगाकर उपचार किया जाना चाहिए।

   ख. बाल अपराधियों को उनके दोषपूर्ण वातावरण से निकालकर पूर्ण सहानुभूति व मधुर व्यवहार दिखाया जाना चाहिए तथा समाज में

अभिभावकों को इन बच्चों के प्रति अपने रवैये को बदलने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।

ग. ऐसे बच्चों के लिए विशेष बाल न्यायालयों की व्यवस्था की जानी चाहिए जिनमें विशेष रूप से प्रशिक्षित न्यायाधीश नियुक्त हों, तथा ऐसे बच्चों को जेल में न भेजकर सुधार गृहों में भेजने की व्यवस्था होनी चाहिए।

परामर्शन के लक्ष्य एवं उद्देश्य (Goals and objectives of Counselling)

बाल्यकाल से वयस्क अवस्था तक विकास की प्रक्रिया में कुछ महत्त्वपूर्ण एवं सुनिश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति को प्रत्येक व्यक्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। समस्त व्यक्तियों में आत्मनिर्भरता, स्वायत्तता, सक्षमता, ज्ञान, आत्मबोध, परिवेशीय सूझबूझ एवं जानकारी तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक आधार से प्रभावशीलता का विकास आवश्यक समझा जाता है। विकास से सम्बन्धित लक्ष्यों की दिशा में व्यक्ति और समाज द्वारा विभिन्न प्रकार की योजनाओं एवं कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया जाता है। विकास की पूरी प्रक्रिया की अवधि में अनेक संक्रमण काल आते हैं। अनेक प्रकार की समस्याएँ प्रकट होती हैं। व्यक्ति को उपयुक्त लक्ष्यों का चयन करना होता है, चयनित लक्ष्यों की सिद्धि के लिए उपयुक्त अनुक्रियाएँ करनी पड़ती हैं, जीवन के विविध क्षेत्रों में समायोजन स्थापित करना पड़ता है; विकास के मार्ग में उत्पन्न होने वाली बाधाओं, कठिनाइयों, समस्याओं को दूर करना पड़ता है। अपनी क्षमताओं का विकास एवं कमियों का उपचार करना पड़ता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को सहज और अधिक सफल बनाने के लिए निर्देशन एवं परामर्शन की आवश्यकता होती है। परामर्शन के अनेक लक्ष्य एवं उद्देश्य होते हैं। परामर्शन के लक्ष्यों के अन्तर्गत परामर्शन प्रक्रिया में सम्मिलित गतिविधियों के अधिक सन्निकट, तात्कालिक एवं प्रकट लक्ष्यों का वर्णन किया जाना उचित होता है जबकि उद्देश्यों के अन्तर्गत अन्तर्निहित अभीष्ट लक्ष्यों पर ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है। परामर्शन कार्यक्रम से छात्रों, अध्यापकों, अभिभावकों एवं समाज की अनेक अपेक्षाएँ होती हैं।

परामर्शन के लक्ष्य (Goals of Counselling)

परामर्शन के लक्ष्य अत्यन्त व्यापक होते हैं। कुछ लक्ष्य मुख्यत: समकालीन जीवन से सम्बन्धित होते हैं तथा अन्य लक्ष्यों का सम्बन्ध मूलत: व्यक्ति को

NOTES

भविष्य में प्रकट होने वाली संभावित समस्याओं के समाधान हेतु समर्थ बनाने के साथ होता है। परामर्शन के उद्देश्यों की व्यापकता एवं पारस्परिक अंतर्सम्बन्धों के कारण उद्देश्यों को सूचीबद्ध करना कठिन कार्य है। पारलॉफ्फ (Parloff, 1961) लक्ष्यों को दो वर्गों तात्कालिक लक्ष्य (immediate goals) और अभीष्ट लक्ष्य (ultimate goals) के रूप में विभाजित करते हैं। पैटर्सन (Patterson, 1970) के अनुसार लक्ष्यों के तीन स्तर हैं– मध्यस्थताकारी लक्ष्य (mkediating goals), मध्यवर्ती लक्ष्य (intermediate goals) और अभीष्ट लक्ष्य। इनके अलावा प्रक्रिया लक्ष्य (process goals) का भी प्रायः वर्णन किया गया है।

परामर्शन के समकालीन या तत्कालीन लक्ष्यों में उन लक्ष्यों को सम्मिलित किया जाता है जिनका सम्बन्ध व्यक्ति की तात्कालिक समस्याओं के समाध ान से होता है। अभीष्ट लक्ष्य दीर्घकालिक लक्ष्य होते हैं। तात्कालिक लक्ष्यों की प्राप्ति से अंततः अभीष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता मिलती है। अभीष्ट लक्ष्य भविष्य से सम्बन्धित होने के अतिरिक्त अत्यन्त सामान्य श्रेणी के होते हैं। इस अध्याय की योजना के द्वारा अभीष्ट लक्ष्यों (ultimate goals) का उद्देश्यों (objectives) के रूप में वर्णन किया जायेगा।

प्रक्रिया लक्ष्यों (process goals) का सम्बन्ध परामर्शन प्रक्रिया के साथ होता है। प्रक्रिया लक्ष्यों की प्राप्ति के द्वारा ही परामर्शदाता परामर्शन के विविध तात्कालिक, मध्यवर्ती और अभीष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति को संभव बनाता है। परामर्शदाता द्वारा परामर्शी के साथ सौहार्द्रपूर्ण, मित्रवत् एवं भावात्मक अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल परिवेश का विकास करता है। इस प्रकार परामर्शदाता जिस परिवेश का निर्माण करता है तथा जिन विशेषताओं के विकास का लक्ष्य स्थापित करता है उसे प्रक्रिया लक्ष्य के अंतर्गत सम्मिलित माना जाता है।

व्यवहारवादी परामर्शन पद्धति अभीष्ट लक्ष्यों (इस अध्याय में उद्देश्यों के रूप में अगले खण्ड में वर्णित लक्ष्य) की प्राप्ति हेतु मध्यस्थताकारी/तात्कालिक लक्ष्यों की सिद्धि पर बल देती है। ऐसे लक्ष्यों के दो पक्ष–धनात्मक और ऋणात्मक, होते हैं। अभीष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए इन्हें पहले ही प्राप्त किया जाना चाहिए। आत्मबोध, परिवेशीय बोध, समायोजनात्मक अनुक्रियाओं का विकास धनात्मक पक्ष के और चिन्ता, आक्रोश, आक्रामकता, अनुचित आदतों, असंगत भय जैसी प्रतिक्रियाओं का निरोध एवं निवारण ऋणात्मक पक्ष के तात्कालिक/मध्यस्थताकारी लक्ष्यों के कतिपय उदाहरण हैं।

एस० एन० रॉव (1982) के अनुसार मध्यवर्ती लक्ष्यों का वर्णन परामर्शी द्वारा परामर्शन की आवश्यकता का अनुभव होने के अनतर्निहित कारणों के द्वारा होता है और तात्कालिक या मध्यस्थताकारी लक्ष्य को (immediate/mediate goals) परामर्शदाता के अनुसार स्थापित किये गये वर्तमान अभिप्राय/मंशा (intention) के रूप में समझा जा सकता है।

परामर्शन के तात्कालिक/मध्यस्थ लक्ष्यों की सूची का विकास कठिन है। अनेक लक्ष्य एक-दूसरे के क्षेत्र में अंशतः व्याप्त (overlap) होते हैं तथापि छात्रों के लिए सुविधापूर्ण रूप में ऐसे पन्द्रह लक्ष्यों का वर्णन किया जा रहा है जो कि राँव (1982), फेल्थम (2000) के द्वारा वर्णित लक्ष्यों के अलावा कतिपय बिंदुओं पर लेखक के मतों को भी अभिव्यक्त करता है। तात्कालिक लक्ष्य अधोवर्णित हैं :-

(1) अवलंब (Support) – कुछ व्यक्तियों/क्लायंट के लिए उनके संज्ञान, संवेग, अनुक्रिया प्रणाली, स्व-संरचना को अनाच्छादित (uncover) करने की अपेक्षा उनके वर्तमान आत्म-बल (ego-strength) और परिस्थितियों में व्याप्त चुनौतियों का सामना करने की सामर्थ्यों (coping-skills) का समर्थन एवं प्रोत्साहन उपयोगी होता है। अवलम्बन-उपचार (supportive therapy) की मनोचिकित्सकीय एवं परामर्शन प्रविधि क्लायंट को इसी के द्वारा सहायता देने का प्रयत्न करती है। कुछ लोगों को अल्पकालिक अवलम्बन और अन्य लोगों को दीर्घकालिक अवलम्बन की आवश्यकता होती है। प्रायः समस्त मनोचिकित्सकीय एवं परामर्शन प्रविधियों के अन्तर्गत आरम्भ में इस प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। व्यक्ति को 'जैसा है वैसा' स्वीकार करने; उसकी आलोचना न करने; उसके विचारों, मतों, प्रतिक्रियाओं पर निर्णय न लेने जैसी परामर्शदाता की सद्भाव, सौहार्द, लगाव द्वारा परिपूर्ण शैली एवं व्यक्ति में वास्तविक रुचि की अभिव्यक्ति द्वारा उसे अवलंबन की प्राप्ति होती है।

परामर्शदाता द्वारा दिये जाने वाले अवलम्बन का उद्देश्य सहयोग देना होता है। इसका प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति के व्यवहार की वकालत करने से भिन्न है। इसके अतिरिक्त यह अवलंबन मित्रों एवं परिजनों के अवलंबन से अलग पेशेवर एवं अनुशासित श्रेणी का होता है। इसका उद्देश्य व्यक्ति को कठिन समय में सहयोग देकर उसको स्वावलंबन की दिशा में उन्मुख करना और परामर्शन/उपचार के जटिल आयामों हेतु तैयार करना होता है।

NOTES

(2) मनो-शैक्षिक निर्देशन (Psycho-educational guidance)– परामर्शन निर्देशन सेवाओं का एक प्रमुख घटक है, और निर्देशन का मौलिक स्वरूप शैक्षिक होता है, अतः परामर्शन का लक्ष्य भी विविध रूपों में मनो-शैक्षिक निर्देशनात्मक होता है। व्यक्ति को सूचनाएँ देना, मूल्यांकन सेवा प्रदान करना, शिक्षण/प्रशिक्षण देना, सामाजिक दक्षता का विकास, जीवनोपयोगी व्यवहार में प्रशिक्षण, तनाव प्रतिरोध हेतु प्रशिक्षण, शिथिलीकरण प्रशिक्षण, विवाह-समृद्धिकरण की व्यवस्था, माता-पिता की प्रभावशाली भूमिका के लिए उनका प्रशिक्षण, समस्या/रोग की पुनरावृत्ति का निरोध, निश्चयात्मकता/दृढ़ता (assertiveness) के लिए प्रशिक्षण जैसे अधिकांश कार्यक्रमों को फेल्थम (2000) इसी श्रेणी में रखते हैं। अनेक व्यक्तियों की समस्या यह होती है कि वे अपनी रुचियों और सामर्थ्यों की पहचान नहीं कर पाते हैं। अतः उन्हें अपनी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में लक्ष्यों का चयन करने में समस्या उत्पन्न होती है। मनोशैक्षिक निर्देशनात्मक लक्ष्यों को सामने रखकर परामर्शदाता व्यक्ति या क्लायंट की अन्तर्निहित समस्याओं को अनाच्छादित किये बिना उसके संज्ञान, व्यवहार एवं अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों की प्रणाली का उन्नयन (enhancement) करके व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास और जीवन दर्शन एवं समायोजनात्मक दृष्टि द्वारा उसे समृद्ध एवं परिपूर्ण करता है।

(3) निर्णय-रचना (Decision-making) – परामर्शन का एक मुख्य लक्ष्य परामर्शी को उपयुक्त निर्णय के विकास हेतु सहायता प्रदान करना होता है। किसी व्यक्ति की अनेक विफलताओं, कुण्ठाओं, समायोजनात्मक समस्याओं के मूल कारण को उपयुक्त निर्णय अपनाने या विकसित कर पाने में व्यक्ति की असफलता के रूप में देखा जा सकता है। व्यक्ति को जीवन लक्ष्यों के संदर्भ में कई प्रकार के लक्ष्यों एवं उपलक्ष्यों का इस प्रकार चयन करना चाहिए कि चयनित लक्ष्य (i) व्यक्ति की क्षमताओं एवं विशेषताओं के अनुरूप हो; (ii) व्यक्ति के परिवेश में व्याप्त संभावनाओं, समस्याओं, सीमाओं को ध्यान में रखकर विकसित किया गया हो; (iii) स्पष्ट हो अर्थात् व्यक्ति लक्ष्य के निहितार्थ और उसकी निष्पत्तियों को समझता हो; (iv) लक्ष्य की रचना व्यक्ति के अनुसार स्वतंत्रतापूर्वक की गयी हो जिससे कि व्यक्ति को चयनित लक्ष्य के प्रति अपनी जिम्मेदारी का बोध हो। ऐसे निर्णय के लिए व्यक्ति को स्वयं के बारे में एवं परिवेश के बारे में पर्याप्त, वस्तुनिष्ठ सूचना प्राप्त होनी चाहिए साथ ही चयन की उपयुक्तता और तर्कसंगत आधार के बारे में जानकारी होनी चाहिए। रेव्स एवं रेव्स (Reaves and Reaves, 1965)

के अनुसार परामर्शन का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को लक्ष्य चयन करने, उसका मूल्यांकन करने, उसे स्वीकार करने और अपने चयन का क्रियान्वयन करने हेतु प्रेरित करना होता है।

(4) समस्या-समाधान (Problem-solving) – समस्या समाधान का लक्ष्य पूर्व वर्णित निर्णय-रचना के लक्ष्य और बाद के अंकित लक्ष्य, समायोजन स्थापना से स्वतंत्र नहीं है तथापि यहाँ यह उल्लेख्य है कि कुछ परामर्शियों की परामर्शन से यह अपेक्षा होती है कि परामर्शन द्वारा उसके सम्मुख उपस्थित समस्या का शीघ्र समाधान हो। जैसे- कोई छात्र चयनित विषय क्षेत्र में प्रवेश कहाँ और कैसे प्राप्त करे, पाठ्यक्रम सम्बन्धी व्यय के लिए धन की व्यवस्था कैसे करें, अनचाही परिस्थिति से बाहर कैसे निकले, स्वास्थ्य समस्या का उपचार कहाँ एवं कैसे प्राप्त करें। कुछ समस्याएँ दुविधा के रूप में प्रकट होती है जैसे विवाह सुखसागर है या झमेला? धन आवश्यक है या ज्ञान? घर महत्त्वपूर्ण है या समाज? व्यक्ति धनोपार्ज के लिए विदेश जाये या अपने लोगों के बीच रहे? स्पष्टतः ऐसे प्रश्न व्यक्ति के जीवन दर्शन में व्याप्त दुविधा को प्रकट करते हैं। परामर्शन का लक्ष्य व्यक्ति के लिए संदर्भित समस्या संबंधी अन्वेषण करने, संवेगों और व्यावहारिकता की जाँच की क्रिया को सहज बनाना है।

(5) समायोजन (*Adjustment*) – समायोजन की दिशा में परामर्शन और निर्देशन का योगदान मुख्यतः विकासात्मक होता है अर्थात् समायोजन हेतु व्यक्ति की क्षमताओं और विशेषताओं का विकास किया जाता है जिससे कि वह भविष्य में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का सामना कर सके लेकिन कुछ विशेष प्रकार की परिस्थितियों में प्रत्यक्ष योगदान भी दिया जाता है। औद्योगिक/संगठनात्मक परिवेश में कर्मचारियों के लिए ऐसे समर्थन की आवश्यकता होती है। कार्यालय, उद्योग या संगठन की कार्यपद्धति के बारे में सूचना प्रदान करने के अतिरिक्त अवलंबन, निर्णय रचना, समस्या समाधान, निश्चयात्मकता प्रशिक्षण, विचार मंथन (brain-storming) जैसी तकनीकें समायोजन की स्थापना के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। कर्मचारी कल्याण योजनाओं के बारे में सम्यक् जानकारी द्वारा कर्मचारियों को समायोजनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता प्राप्त होतीं है।

(6) आपद्कालीन हस्तक्षेप एवं प्रबन्धन (Crisis intervention and management) – समाज तथा व्यक्ति के जीवन में कई बार ऐसी संकट

NOTES

की घड़ियाँ आती हैं कि एक सामान्य व्यक्ति के लिए अथवा ऐसे आपद्काल का सामना करना कठिन होता है। अतः व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित परामर्शदाताओं के माध्यम से हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। प्राकृतिक आपदा जैसे बाढ़/त्वरित बाढ़, बाँध टूटना, या मानव निर्मित संकट जैसे ध ार्मिक या जातीय झगड़े, बंधक या अपहरण की घटनाएँ, अथवा औद्योगिक दुर्घटनाएँ, रेल, बस या वायु दुर्घटना के पश्चात् भुक्तभोगी व्यक्ति एवं निकट सम्बन्धी मनोआघात की अवस्था में देखे जा सकते हैं। मनोआघात से बाहर आने के लिए उन्हें शीघ्र सहयोग की आवश्यकता होती है। ऐसी परिस्थिति में ऐसे मार्गदर्शन, निर्देशन, सक्रिय एवं प्रत्यक्ष सहयोग की आवश्यकता होती है जिससे व्यक्ति का आत्मबल वापस लौटे एवं धीरे-धीरे व्यक्ति अपने सामान्य कार्यकलाप के क्षेत्र में सक्रिय हो सके। "आपद्कालीन हस्तक्षेप का प्राथमिक उद्देश्य संकटकाल आने से पूर्व की परिस्थितियों के समतुल्य कार्यस्तर को पुनर्स्थापित करना होता है" (फेल्थम, 2000) इसका प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को सकारात्मक रूप में सशक्त बनाना तथा किसी प्रकार की मनोव्याधि का निरोध करना होता है।

(7) लक्षण उन्मूलन/सुधार (Symptom Amelioration) – मनोव्याधि से अलग सामान्य, श्रेणी के व्यक्तियों में भी समस्या उत्पन्न होने पर मनोरचनाओं की सक्रियता के अधिकांश परिणाम व्यक्ति के व्यवहार में लक्षणों के रूप में प्रकट होते रहते हैं। मनोदैहिक प्रभाव से सम्बन्धित लक्षण, चिड़चिड़ापन, सामान्य रूप से कार्य करने में कठिनाई जैसी परिस्थितियों में लक्षण का उन्मूलन ही व्यक्ति की प्राथमिकता होती है।

(8) अन्तर्दृष्टि का विकास (Development to insight) – कुछ व्यक्तियों का व्यवहार ऐसा होता है कि उनके समक्ष बार-बार समस्याएँ उत्पन्न होती रहती हैं और उनकी प्रतिक्रिया शैली के कारण समस्या का समाधान प्राप्त होने के साथ पर समस्या में और वृद्धि होती है। ऐसे क्लायंट/व्यक्ति के लिए परामर्शदाता अन्तर्दृष्टि के विकास का लक्ष्य स्थापित करते हैं। अन्तर्दृष्टि और आत्मबोध का विकास एक सतत् प्रक्रिया है जो विकास, परामर्शन और मनोपचार जैसी समस्त प्रक्रियाओं के साथ सम्बन्धित है। अन्तर्दृष्टि के विकास द्वारा मनोपचार जैसी समस्त प्रक्रियाओं के साथ सम्बन्धित है। अन्तर्दृष्टि के विकास द्वारा समस्याओं के कारणों के विश्लेषण, व्यवहार परिवर्तन, लक्षण उन्मूलन, समस्या समाधान और उपचार में सहायता मिलती है।

(9) आत्म-बोध का विकास (Development of self-understanding) – व्यक्ति की अन्तर्दृष्टि और आत्म-बोध का विकास परस्पर सम्बन्धित प्रक्रियाएँ हैं। आत्मबोध स्वयं के बारे में अन्तर्दृष्टि के विकास से सम्बन्धित है। अन्तर्दृष्टि के उपयुक्त शीर्षक में समस्याओं और सम्बन्धित व्यवहार के विश्लेषण पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। यहाँ हमारा सम्बन्ध व्यक्ति की सामर्थ्यों, विशेषताओं, अभिप्रेरणाओं, रुचियों आदि की पहचान करने में उसे सहायता प्रदान करने से होता है।

(10) परिवेश एवं स्वयं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास (Development of positive viewpoint towards the environment and self) – आधुनिक युग चिन्ता, कुण्ठा और असफलताओं द्वारा पहचाना जाता है। चतुर्दिक व्यक्ति और परिवेश के बारे में नकारात्मक दृष्टिकोण व्याप्त है। स्वयं अपने या अपने परिवेश के बारे में ऋणात्मक मूल्यांकन व्यक्ति की आशाओं और आत्मविश्वास को समाप्त करता है और उसके लक्ष्य सिद्धि में व्यवधान आता है। इसकी तुलना में जीवन के प्रति, अपने गुणों और विशेषताओं के बारे में तथा परिवेश के प्रति दृष्टिकोणों की सकारात्मकता व्यक्ति की सफलता, संतुष्टि और प्रसन्नता की प्राप्ति में सहायक होती है। अतः परामर्शन की प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति के संज्ञान एवं जीवनदर्शन में आवश्यक परिमार्जन लक्ष्य किया जाता है।

(11) जीवन में सार्थकता एवं अर्थबोध का विकास (Development of worth and meaning in life) – किशोरों, नवयुवकों, वृद्ध व्यक्तियों में सदैव जीवन की निरर्थकता (meaninglessess) की भावना व्याप्त रहती है। सक्रिय जीवन से अवकाश ग्रहण कर चुके लोगों में सार्थकता का बोध पुनर्जागृत करने की आवश्यकता पर बार-बार बल दिया जाता है। आधुनिक युग में धार्मिक और आध्यात्मिक लक्ष्यों के अभाव में सार्थकता और अर्थबोध का अन्वेषण व्यक्ति के लिए कठिन होता है।

जीवन में प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण, निरर्थकता, अर्थबोध की कमी वास्तव में पार्थक्य (alienation) की समस्या है। परामर्शन का लक्ष्य लेखकों की दृष्टि में पार्थक्य की समाप्ति और संज्ञानात्मक, व्यवहारात्मक संलिप्तता (involvement) का विकास करना है। इसके लिए परामर्शन प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्तियों को अपनी अन्तरस्थ या तात्विक अभिप्रेरणाओं (intrinsic motivations) के अन्वेषण की दिशा में सहायता प्रदान की जानी चाहिए। लेखक का

मत है कि भारतीय संदर्भों में लोगों के अन्दर दान और परोपकार जैसी प्रवृत्तियों को पुनर्जागृत किये जाने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए वृद्धजन विद्यादान के लक्ष्य को सामने स्थापित करके जीवन की सार्थकता का अनुभव कर सकते हैं किन्तु लोगों को ऐसी दिशाओं से अर्थबोध की प्राप्ति करने हेतु परामर्शदाता द्वारा सहयोग की आवश्यकता होती है।

(12) अपरिहार्य को स्वीकारने हेतु तत्परता का विकास (Developing readiness to accept the inevitable) – जीवन की कुछ घटनाएँ, परिवेश की कई परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जिनका कोई विकल्प या उनसे पृथक होने का मार्ग नहीं होता है। हमारा एक परिवार या समुदाय में जन्म लेना, परिजनों का बिछुड़ना (मृत्यु) ऐसी ही घटनाएँ हैं। एक सामान्य व्यक्ति के लिए सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक संरचना को प्रभावित करना या उसका विकल्प तैयार करना संभव नहीं हो सकता है जबकि उसके जीवन की संरचना और स्वरूप द्वारा अनिवार्यतः प्रभावित होते हैं। ऐसी दशा में व्यक्ति के लिए देय परिस्थितियाँ अपरिहार्य हो जाती है और उस व्यक्ति का हित इस अपरिहार्य को स्वीकार कर लेने में ही निहित होता है। परामर्शन व्यक्ति को अपरिहार्य दशाओं को सहजतापूर्वक स्वीकार करने हेतु महत्वपूर्ण योगदान देता है।

(13) व्यवहार परिमार्जन एवं व्यक्तित्व परिवर्तन (Behaviour modification and personality change) – परामर्शन के अभीष्ट लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति की निजी प्रभावशीलता (effectiveness) में वृद्धि अनिवार्य रूप में आवश्यक होती है। व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावशाली बनाने हेतु व्यक्ति में जिम्मेदारी का बोध, श्रम, समय, समर्पण, सम्यक रूप में लाभ-हानि के लिए खतरा मोल लेने की प्रवृत्तियों की आवश्यकता होती है। यदि कोई व्यक्ति आलसी है, निर्णय लेने में विलम्ब करता है, शीघ्र ही अपना लक्ष्य त्याग देता है या उसके व्यवहार में अन्य ऐसी ही कमियाँ व्याप्त है तो ऐसे व्यवहार दोषों को परिमार्जित करने की आवश्यकता होती है। व्यवहारवादी-संज्ञानवादी एवं अल्पकालिक उपागम व्यवहार परिमार्जन पर बल देते हैं किन्तु मानवतावादी उपागम से संबंधित परामर्शदाता जीवन-परिवर्तन और व्यक्तित्व परिवर्तन को महत्त्व देते हैं।

(14) व्यवस्था, संगठन या समाज में परिवर्तन (Systemic, organizational or social change) – अधिकांश परामर्शन प्रारूपों में परिवार, घरेलू भागीदारी, कार्य समूहों और अन्य प्रकार के समूहों में परिवर्तन का लक्ष्य

अपनाया जाता है। कई समूह-परामर्शन दशाओं में समूह के अन्दर तथा समूहों के मध्य व्याप्त द्वन्द्वों के समाधान का प्रयास किया जाता है।

(15) उपयुक्त स्वास्थ्य व्यवहार का विकास (Development of appropriate health behaviour)– किशोरों, युवकों के जीवन में उपयुक्त स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवहार का विकास उनके वर्तमान और भविष्य हेतु अत्यन्त उपयोगी होता है। यौनिक व्यवहार का स्वास्थ्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। एच० आई० वी०/ एड्स की भयावह स्थिति, मादक पदार्थों के सेवन से उत्पन्न खतरों और मोटापा, डाइबिटीज एवं अन्य दोषपूर्ण जीवन शैली के द्वारा विकसित होने वाले रोगों/स्वास्थ्य समस्याओं के संदर्भ में समूह परामर्शन की आवश्यकता का अनुभव सभी वर्गों द्वारा किया जा रहा है।

परामर्शन के उद्देश्य (Objectives of Counselling)

आज तक के वर्णन में परामर्शन के तात्कालिक/मध्यस्थ लक्ष्यों का वर्णन किया गया है। प्रश्न यह है कि अन्ततः परामर्शन क्या करना चाहता है, इसका अभीष्ट लक्ष्य/उद्देश्य क्या है। परामर्शन का अभीष्ट उद्देश्य व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य का विकास, उसका एक 'पूर्णतः प्रकार्यात्मक व्यक्ति' के रूप में विकास, उसकी क्षमताओं का अत्यधिक विकास, उसका आत्म-उन्नयन/स्व आत्मीकरण, उसकी आत्म-सिद्धि की दिशा में उसे सहायता प्रदान करना माना जाता है। परामर्शन के प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन प्रस्तुत है :-

(1) मानसिक स्वास्थ्य (Mental health) – उपर्युक्त वर्णित अनेक लक्ष्यों का दीर्घकालिक/अभीष्ट उद्देश्य मानसिक स्वास्थ्य का लक्ष्य प्राप्त करना होता है। कुछ परामर्शदाता मानसिक स्वास्थ्य के सकारात्मक लक्ष्यों को सामने रखकर उपयुक्त लक्ष्य चयन, वस्तुनिष्ठ आत्मबोध, समस्या समाधान, समायोजन, परिवेश के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण हेतु विकास जैसे माध्यम लक्ष्यों को प्राप्त करते हुए मानसिक स्वास्थ्य के अभीष्ट उद्देश्य की दिशा में अग्रसर होने की वरीयता देते हैं परन्तु अन्य परामर्शदाता लक्ष्यों के बारे में अनिश्चयात्मक, चिन्ता और सावेंगिक तनाव जैसी समस्याओं के परिहार पर ध्यान केन्द्रित करते हैं।

(2) व्यक्ति के संसाधन का संवर्धन (Improving personal resourcefulness) – व्यक्ति को परिवेश की संरचना और विशेषताओं संबंधी सूचना

की प्राप्ति, अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों में दक्षता, सकारात्मक दृष्टिकोण, समस्याओं के समाधान की अभिप्रेरणा और तत्परता एवं आत्मविश्वास के आधार पर जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लाभ मिलता है। सूझबूझ, दृढ़ निश्चयात्मकता, अपनी क्षमताओं और सीमाओं की पहचान भी व्यक्ति के लिए उपयोगी संसाधन हैं जिनसे सफलता और प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। परामर्शन का अभीष्ट उद्देश्य व्यक्ति को भविष्य के लिए निजी संसाधनों की दृष्टि से सम्पन्न करना होता है।

(3) प्रकार्यात्मक दृष्टि से संपूर्ण व्यक्ति का विकास सहज बनाना (Facilitating development of a fully funtioning person) – मानवतावादी मनोदर्शन यह मानता है कि व्यक्ति घर, परिवार, समाज, संस्कृति और अपने अनुभवों द्वारा स्थापित समस्याओं और प्रतिबन्धों (constraints and restrictions) के कारण प्रकार्यात्मक क्षमताओं का पूर्ण व्यक्ति के रूप में कार्य नहीं कर पाता है। व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमताओं का अत्यधिक विकास (Optimum development of potentioal) नहीं हो पाता है। परामर्शन की प्रक्रिया व्यक्ति के लिए ऐसे परिवेश की रचना करती है। जिसके अन्तर्गत व्यक्ति पूर्ण स्वतंत्रता और सुरक्षा का अनुभव करता है, उसे किसी प्रकार की धमकी या असुरक्षा (threat) का अनुभव नहीं होता है, व्यक्ति अपनी सामर्थ्य का परामर्शदाता के द्वारा प्राप्त सुरक्षा और संरक्षण में परीक्षण कर सकता है। इस प्रकार का परिवेश व्यक्ति की अन्तर्निहित सामर्थ्य के अधिकतम संभव विकास में सहायक होकर व्यक्ति को प्रकार्यात्मक दृष्टि से संपूर्ण व्यक्ति के रूप में विकसित होने में सहायता प्रदान करता है।

(4) स्व-आत्मीकरण (Self-actualization) – रॉजर्स (1951, 1959) के अनुसार प्राणी (व्यक्ति) में अनुभवशील व्यक्ति के स्व के उन्नयन/आत्मीकरण (actualization) की मूल प्रवृत्ति होती है। व्यक्ति स्व के अनुरक्षण एवं उन्नयन की चेष्टा करता है। आत्मीकरण की प्रवृत्ति के कारण प्राणी परिवेश के उन पक्षो पर ध्यान केन्द्रित करता है जिनमें व्यक्ति के लिए पूर्णता की दिशा में अग्रसर होने की संभावना निहित होती है। स्व-आत्मीकरण व्यक्ति की एक मात्र प्रवृत्ति या अभिप्रेरणा होती है एवं 'स्व-आत्मीकृत' या 'पूर्ण-मानव' के रूप में विकसित होना व्यक्ति का एकमात्र लक्ष्य होता है परन्तु माता-पिता, अध्यापकों एवं अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों द्वारा बच्चों का नकारात्मक मूल्यांकन किये जाने के कारण इस प्रक्रिया में व्यवधान और

विकृति की उत्पत्ति होती है। परामर्शन और मनोपचार का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को बिना किसी शर्त के सकारात्मक सम्मान (unconditional positive regard) का अनुभव उपलब्ध कराना होता है जिससे कि व्यक्ति के लिए 'स्व-आत्मीकरण' संभव हो सके।

रॉजर्स की तरह ही गोल्डस्टीन (1939) भी 'स्व-आत्मीकरण' पर बल देते हैं। गोल्डस्टीन स्व-आत्मीकरण (self-actualization), आत्म-सिद्धि (self-realization), अन्तर्निहित क्षमताओं (innate potentialities) के विकास पर जोर देते हैं।

(5) आत्म सिद्धि (Self-realization) – गोल्डस्टीन के अनुसार व्यक्ति की समस्त आवश्यकताएँ जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य की अभिव्यक्ति मात्र होती है। सर्वोच्च लक्ष्य/अभिप्रेरणा 'स्व-आत्मीकरण' या 'आत्म सिद्धि' होती है जिसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति सतत् अपनी अन्तर्निहित क्षमताओं (inherent potentialities) का उपलब्ध सभी प्रकार के संभव मार्गों द्वारा सिद्धि (realization) के लिए प्रयास करता है। व्यक्ति की क्षमताओं को उसकी वरीयताओं और उस कार्य के अनुसार जाना जा सकता है जिसे वह सर्वोत्कृष्ट रूप में सम्पन्न करता है। सभी लोगों की अन्तर्निहित क्षमताएँ अलग प्रकार की होती हैं। अतः परामर्शन प्रक्रिय का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए व्यक्ति को उसकी (निजी) क्षमताओं की सिद्धि की दिशा में सहायता देना होता है।

परामर्श के क्षेत्र (Scope of Counseling)

जीवन में प्रत्येक मनुष्य कहीं न कहीं विभिन्न प्रकार की समस्याओं द्वारा गिरा हुआ है, उन समस्याओं की प्रकृति भिन्न-भिन्न है। अतः हम उनकी प्रकृति के अनुरूप परामर्श को उस क्षेत्र विशेष का परामर्श कह सकते हैं।

(1) **नियोजन सम्बन्धित परामर्श (Counseling Related to Placement)** – किसी भी व्यक्ति का रोजगार निर्धारण भविष्य की स्पष्टता द्वारा ही सम्भव है। उस रोजगार की प्रकृति और व्यक्ति की प्रकृति का संबंध भी आवश्यक है। परामर्श से व्यक्ति अपनी संतुष्टि का रोजगार तय कर पाता है।

(2) **व्यक्तिगत परामर्श (Personal Counseling)** – व्यक्ति की संवेगात्मक समस्याएँ इतनी अधिक होती हैं कि कुसमायोजन का शिकार हो जाता

NOTES

है। वह एक सामाजिक प्राणी है, उसका समाज के साथ समायोजन अत्यंत आवश्यक है। संवेगों में असंतुलन के कारण चिंता, अकेलापन, आत्मविश्वास की कमी इत्यादि समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, जिसे व्यक्तिगत परामर्श द्वारा ही दूर किया जा सकता है।

(3) **वैवाहिक परामर्श (Marriage Counselling)** – आज वैवाहिक परामर्श की परम्परा भी चल पड़ी है। इसमें उपर्युक्त जीवन-साथी चुनने के सुझाव दिये जाते हैं और व्यक्ति की यथासंभव सहायता की जाती है। विवाहित प्रार्थी Client की वैवाहिक जीवन की समस्याओं को सुलझाने के लिये परामर्श प्रदान किया जाता है। ऐसी वैवाहिक समस्याओं के विभिन्न कारण हो सकते हैं जैसे औद्योगीकरण, नगरीकरण Urbanization आदि। इसीलिए परिवार विघटित हो रहे हैं। उन्हें परामर्श की आवश्यकता है।

(4) **शैक्षिक परामर्श (Educational Counseling)** – शैक्षिक परामर्श का सम्बन्ध विद्यार्थियों को अध्ययन के लिये पाठ्यक्रम के निर्णय संबंधी सहायता प्रदान करने से है। विभिन्न अभिरूचियों, विभिन्न क्षमताओं और प्राकृतिक झुकावों या प्रवृत्तियों से तथा इनके संदर्भ में विद्यार्थियों की सहायता शैक्षिक-परामर्श द्वारा की जा सकती है। संक्षेप में, यह व्यक्ति की शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं में सहायता प्रदान करती है।

(5) **व्यावसायिक परामर्श (Vocational Counselling)** – व्यावसायिक परामर्श वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति के उपयुक्त व्यवसाय के चयन में उसके लिये 'तैयारी में सहायता की जाती है। व्यवसाय सम्बन्धी निर्णय की प्रकृति बहुत गंभीर मामला होता है। अतः इसमें विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। वरना कुसमायोजना और अप्रसन्नता इसके परिणाम हो सकते हैं।

(6) **नैदानिक परामर्श (Clinical Counseling)** – नैदानिक परामर्श की प्रक्रिया के अन्तर्गत समस्या का विश्लेषण एवं समस्या का उपचार सुझाने के प्रयास किये जाते हैं। नैदानिक मनोविज्ञान (Clinical Psychology) मनोविज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा भी है। नैदानिक मनोविज्ञान में ऐसे प्रार्थी की जिसमें सुसमायोजन एवं आत्म-अभिव्यक्ति के क्रम में कोई अनुचित व्यवहार विकसित हो जाता है, सहायता करने में व्यावहारिक मनोवैज्ञानिक ज्ञान एवं अभ्यास से सम्बद्ध होती है। इसमें निदान (Diag-

nosis) उपचार (Treatment) एवं प्रतिरोधन (Prevention) और ज्ञान के विस्तार हेतु की जानी वाली शोध के लिए प्रशिक्षण तथा वास्तविक अभ्यास को आत्मसात किया जाता है। नैदानिक परामर्श (Clinical Counselling) एवं नैदानिक मनोविज्ञान (Clinical Psychology) में अत्यधिक समानता पायी जाती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता कि नैदानिक परामर्श का सम्बन्ध व्यक्ति के सामान्य कार्य-व्यापार से सम्बद्ध कुसमायोजनों से है। इसमें परामर्शदाता और प्रार्थी का प्रत्यक्ष सम्बन्ध निहित होता है।

(7) मनोचिकित्सात्मक परामर्श (Psychotherapeutic Counselling) – स्नाईडर के अनुसार "मनोचिकित्सा वह प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, जिसमें मनोवैज्ञानिक रूप से प्रशिक्षण प्राप्ति व्यक्ति अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के सामाजिक कुसमायोजन वाले भावात्मक दृष्टिकोणों में सुधार के लिये शाब्दिक माध्यम से सचेत रूप से प्रयास करता रहता है तथा जिसमें प्रार्थी सापेक्ष रूप में स्वयं के व्यक्तित्व के पुनः गठन से परिचित रहता है, जिसमें से वह गुजर रहा है।"

(Psychotherapeutic Counseling is the face to face relationship in which a psychologically trained individual is consciously Attempting by verbal means to assist another Person Or Persons to Modify Emotional Attitude That are Socially Maladjusted And In Which The Subject Is Relatively Aware of the personality Re-organisation throught which he is going) **----W.V. Snyder**

परामर्श तथा निर्देशन की मूल दशाएँ

निर्देशन और परामर्श के क्षेत्र में हमारा देश विकसित देशों की अपेक्षा काफी पीछे है। स्थिति में सुधार लाने के लिए 1952-53 के माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा कुछ महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं। इनमें से कुछ सुझावों पर सरकार द्वारा अमल भी किया गया। 1964 में डॉ दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में जिस शिक्षा आयोग की स्थापना की गयी उसने निर्देशन के सभी पक्षों को सम्मिलित करते हुए निर्देशन के विकास का एक व्यापक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। कोठारी आयोग ने बताया कि निर्देशन का क्षेत्र व्यापक है, वह समायोजन तक ही अपने को सीमित नहींरखता, बल्कि बालक के विकास में भी सहायता करता है।

NOTES

कोठारी आयोग के विचार में निर्देशन का प्रारंभ प्राथमिक स्तर से ही होना चाहिए। इसके लिए निर्देशन सेवा का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राथमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण में प्रदान किया जाना चाहिए। बालकों के लिए ऐसा साहित्य प्रत्येक क्षेत्रीय भाषाओं में तैयार किया जाय, जो उन्हें व्यवसाय की ओर प्रेरित करे।

निर्देशन सेवाओं का उद्देश्य एवं क्षेत्र विस्तार (Aims & Scope of Guidance services)

निर्देशन सेवाओं का क्षेत्र एवं कार्य विद्यार्थियों को शैक्षिक एवं व्यावसायिक चयन (choices) में सहायता तक ही सीमित नहीं है बल्कि कहीं अधिक व्यापक है। निर्देशन का लक्ष्य समायोजन (Adjustment) एवं विकास (Development) दोनों में सहायता प्रदान करना है। निर्देशन जहाँ बालक को स्कूल एवं घर की परिस्थितियों में सर्वोत्तम संभावित समायोजन प्राप्त करने में सहायता पहुँचाता है, वहाँ बालक के व्यक्तित्व के सभी पक्षों का विकास भी उसका लक्ष्य है। इसलिए निर्देशन को शिक्षा का संघटक अंग माना जाना चाहिए। केवल शैक्षिक उद्देश्यों द्वारा प्रदान की जाने वाली मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक सेवा तक ही वह सीमित नहीं है बल्कि सभी विद्यार्थियों के लिए अपरिहार्य है, यह एक निरंतर चलने वाला प्रक्रम (Continuous Process) है जो व्यक्ति को समय-समय पर निर्णय करने एवं समायोजन में सहायता करता है। जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान का प्राथमिक शिक्षा से संबंध होने के कारण यहाँ पर प्राथमिक शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श की स्थिति एवं दिशा की चर्चा करना प्रासंगिक है।

प्राथमिक शिक्षा में निर्देशन (Guidance in Primary Education)

निर्देशन का प्रारंभ प्राथमिक स्तर की सबसे छोटी कक्षा द्वारा ही प्रारंभ होना चाहिए। प्राथमिक स्तर पर निर्देशन का प्रयोग बालकों के घर से विद्यालय में स्थानांतरण को संतोषजनक बनाने, मूल शैक्षिक कौशलों (Basic Education Skills) को सीखने में आने वाली समस्याओं के कारण खोजने (Diagnosing), प्रतिभाशाली (Gifted), पिछड़े हुए (Backward) एवं विकलांग (Differently Abled) की विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं को पहचानने, विद्यालय छोड़ने वाले तथा प्रतिभाशाली बालकों को विद्यालय में रहने में सहायता प्रदान करने वाले

बालकों को श्रम के प्रति वांछित दृष्टिकोण विकसित करने एवं श्रम संसार (world of work) के प्रति अपनी अंतर्दृष्टि (Insight) विकसित करने एवं प्रशिक्षण योजनाओं में सहायता देने में किया जा सकता है। प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर अब तक बहुत ही अल्प कार्य हुआ है। निर्देशन सुविधाओं में आने वाली प्रमुख समस्याएँ हैं- शिक्षा संस्थाओं की बड़ी संख्या, अध्यापकों में पर्याप्त अपेक्षित योग्यताओं (Qualifications) का अभाव एवं संसाधनों का न होना (Absence of Resources) प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर निर्देशन कार्य का श्रीगणेश करने के लिए निम्नलिखित सुझावों पर प्रयोग किया जा सकता है–

नैदानिक परीक्षणों की जानकारी– प्राथमिक शिक्षा के प्रशिक्षण कार्यक्रम में सामान्य नैदानिक परीक्षणों (Diagnostic Testings) संबंधी जानकारी प्रदान की जाए तथा वैयक्तिक विभिन्नताओं (Individual differences) से उत्पन्न होने वाली समस्याओं से अवगत कराया जाये।

व्यावसायिक अभिमुखीकरण– (Occupational Orientation) बालकों में व्यावसायिक अभिमुखीकरण हेतु साहित्य तैयार किया जाय तथा उसे क्षेत्रीय भाषाओं (Regional languages) में अनुदित करके उपलब्ध कराया जाये।

पाठ्यक्रमों का चयन– प्राथमिक स्तर की शिक्षा समाप्त करने पर बालकों एवं अभिभावकों को भावी शिक्षा के पाठ्यक्रमों के चुनाव (Selection of Courses) में सहायता की जाय और यह चुनाव मात्र परीक्षा परिणामों पर ही आधारित न हो बल्कि बालक की संभावनाओं (Potentialities) एवं रुचियों (interests) के आधार पर किया जाये।

प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर निर्देशन की बाधाएँ

यद्यपि भारत में निर्देशन कार्य का श्रीगणेश हो चुका है, परन्तु इसकी प्रगति अत्यंत अपर्याप्त एवं धीमी है। निर्देशन का जो थोड़ा बहुत कार्य हो रहा है उसे भी दोषमुक्त नहीं कहा जा सकता। इसलिए निर्देशन के मार्ग में आने वाली अनेक बाधाएं हैं जिनकी चर्चा नीचे की गयी है–

शिक्षकों का रूढ़िवादी रुख– भारत देश के अन्तर्गत शिक्षा के क्षेत्र में जो लोग प्रवेश करते हैं उनमें से अधिकांश जीवन के अन्य क्षेत्रों के अवसर से वंचित लोग होते हैं। बहुत कम लोग इस प्रकार के होते हैं, जिनकी शिक्षण के क्षेत्र में रूचि होती है। इसलिए कोई भी नवीन या रचनात्मक कार्य सौंपे जाने पर वे उसमें अपना उत्साह प्रदर्शित नहीं करते। उनके अध्यापन का

NOTES

NOTES

तरीका भी (बावजूद प्रशिक्षण के) प्राय: परम्परागत ही रहता है। शिक्षकों के इस रूढ़िवादी रूख से निर्देशन कार्य गतिशील नहीं हो पाता।

संसाधनों का अभाव– इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारे देश में विकसित देशों जैसी आर्थिक समृद्धि नहीं है परन्तु जो भी संसाधन उपलब्ध हैं उनका उचित प्रयोग न किये जाने के कारण शिक्षा और निर्देशन जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र पिछड़ जाते हैं और तत्संबंधी अधिकांश योजनायें कागजी रिपोर्ट रह जाती है।

शिक्षक छात्र अनुपात– देश में शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के बावजूद भी शिक्षक छात्र अनुपात निर्धारित मानक स्तर तक नहीं पहुँच पा रहा है और एक कक्षा में इतने अधिक छात्र होते हैं कि अध्यापक को छात्रों से व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करने में कठिनाई होती है एवं ऐसी स्थिति में वैयक्तिक परामर्श या निर्देशन कार्य जटिल हो जाता है।

शिक्षकों पर कार्यभार की अधिकता– निर्देशन का प्रारंभिक दायित्व शिक्षकों पर होता है, लेकिन हमारे देश में रजिस्टर अभिलेख कापियों को जाँचने सम्बन्धी कार्य, जनगणना, मतदान सम्बन्धी कार्य एवं अधिकांश गौण कार्यों की अधिकता के कारण शिक्षक अपने मूल कार्य शिक्षण एवं निर्देशन सम्बन्धी दायित्वों को पूर्णत: निर्वहन करने में कठिनाई महसूस करता है।

निर्देशन के विभिन्न अभिकरणों के बीच सामंजस्य का अभाव– निर्देशन की जो थोड़ी बहुत सुविधाएँ उपलब्ध हैं, सामंजस्य के अभाव में उनका प्रयोग नहीं हो पाता है। घर, विद्यालय, मनोचिकित्सा एवं राज्य निर्देशन ब्यूरो आदि अनेक निर्देशन और परामर्श अभिकरणों के कार्यों में आपसी सहयोग एवं आदान-प्रदान के अभाव में निर्देशन कार्यों की समुचित प्रगति संभव नहीं है।

निर्देशन के क्षेत्र में शोधकार्य की कमी– नई परिस्थितियों से जन्म लेने वाली अधिकांश नई समस्याओं का समाधान प्राप्त करने में शोधकार्य अत्यन्त उपयोगी होता है। पुराने एवं परम्परागत साधन अनुपयुक्त प्रतीत होने लगते हैं। शोधकार्य के द्वारा विभिन्न नये तथ्य एवं अनुभव प्रकाश में आते हैं। दुर्भाग्य की बात है कि निर्देशन जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र में हमारे विश्वविद्यालयों में शोध कार्य नगण्य रहा है।

निर्देशन सेवाओं की स्थिति में सुधार लाने के उपाय–

निर्देशन एवं परामर्श के महत्व एवं उपयोगिता की गंभीरता को देखते हुए केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE) ने स्वयं से संबद्ध विद्यालयों में

कैरियर काउंसलरों की नियुक्ति को अनिवार्य बना दिया है। निश्चित तौर पर सीबीएसई का यह कदम प्रादेशिक बोर्ड के विद्यालयों हेतु अनुकरणीय है। निर्देशन सेवाओं को उपयोगी बनाने के लिए निम्नलिखित उपायों को अपनाया जा सकता है –

निर्देशन के प्रति जागरूकता– अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों को निर्देशनाभिमुख (Guidance Oriented) बनाया जाये शिक्षकों के अन्दर निर्देशन सम्बन्धी दृष्टि (Guidance Insight) विकसित की जाये।

निर्देशन अवबोध विकसित करना– समाज और विद्यालय के लोगों के लिए निर्देशन सम्बन्धी समझ (Understanding of Guidance) विकसित करने हेतु उद्देश्य से निर्देशन कार्यक्रमों का संगठन किया जाये।

सामंजस्य– निर्देशन के विभिन्न अभिकरणों में समुचित संबंध लाने के लिए निर्देशन का व्यापक संगठन स्थापित किया जाय एवं अन्य अभिकरणों को उससे संबद्ध किया जाये।

संसाधनों की उपलब्धता– शासन, शिक्षाविदों, मनोवैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों, परामर्शदाताओं, शिक्षकों आदि को निर्देशन संबंधी महत्व एवं आवश्यकता को गंभीरता से अनुभव करना चाहिए एवं निर्देशन एवं परामर्श से सम्बंधित साहित्य एवं संसाधनों के एकीकरण में सहायता प्रदान की जानी चाहिए।

परामर्शदाता की दक्षताएँ (Skills of the Counsellor)

परामर्शन एवं मनोचिकित्सा (प्रविधियों की दृष्टि से यह पुसतक दोनों क्षेत्रों की मौलिक समानता को स्वीकार करती है) का कार्य कोई परामर्शदाता सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सके, इसके लिए आधुनिक मनोविज्ञान में तीन श्रेणियों की दक्षताओं का वर्णन किया जाता है –

(अ) सामान्य दक्षता (Generic skills)

(ब) विशद् एवं सूक्ष्म दक्षता (Macro and Micro skills)

(स) अनुषांगिक दक्षता (Anciliary skills) या पूर्व एवं पश्चात् दक्षता (Before and after skills)

(अ) परामर्शदाता की सामान्य दक्षताएँ (Generic Skills of the Counsellor)

NOTES

परामर्शन एवं मनोचिकित्सा की अनेक प्रविधियाँ प्रचलित हैं। किसी विशिष्ट प्रविधि का प्रयोग करने के लिए परामर्शदाता में विशिष्ट क्षमताएँ या दक्षताएँ (specific skills) होनी चाहिए जिसका उस प्रविधि द्वारा सीधा सम्बन्ध होता है किन्तु सभी प्रविधियों के लिए परामर्शदाताओं में कुछ सामान्य दक्षताओं (generic skills) का होना आवश्यक माना जाता है।

रॉजर्स (1957) ने परानुभूतिक बोध (empathic understanding), अप्रतिबंधित सकारात्मक सम्मान (unconditioned positive regard) एवं सर्वांग समता/संगति (congruence) और उनके समुचित संप्रेषण को परामर्शदाता के उन गुणों का आवश्यक तत्त्व बताया है जिनके आधार पर परामर्शदाता परामर्शी को वांछित परिवर्तन स्थापित करने के लिए सहायता प्रदान करता है। कर्क हफ्फ (*Carkhuff*, 1969) ने इस सूची में चार और आवश्यक दक्षताओं निश्चयात्मकता (concreteness), आत्म-अभिव्यक्ति (self-disclosure), सामना (confrontation) और तात्कालिकता (immediacy) को आवश्यक मौलिक दक्षता के रूप में सम्मिलित : केगन (Kagan, 1975) परामर्शदाताओं के प्रशिक्षण में अन्तर्वेयक्तिक प्रक्रिया प्रत्याह्वान (Interpersonal Process Recall-IPR) प्रणाली की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। यह प्रणाली परामर्शदाताओं को प्रशिक्षण काल में ऑडियो-वीडियो रिकॉर्ड के मूल्यांकन के समय मार्गदर्शन प्रदान करके आन्तरिक सजगता या बोध (internal awareness) की दक्षता के विकास का कार्य करती है। इस प्रक्रिया का प्रमुख उद्देश्य अन्तर्क्रिया प्रक्रिया के बारे में परामर्शदाता में सजगता, अपने अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार के पक्षों का अध्ययन करने एवं अपनी संवेदनाओं एवं विचारों के प्रति लयबद्धता को प्रोत्साहित करना होता है। इस प्रकार परामर्शदाता वास्तविक उपचारात्मक या परामर्शन परिस्थितियों में अपने बोध को संप्रेषित करके परामर्शन सम्बन्धों को विकसित करना सीखते हैं।

पिछले दशक में ब्रिटेन के अन्तर्गत नेशनल कौंसिल फॉर वोकेशनल क्वालिफिकेशन्स ने एक दल का गठन किया, जो कि CAMPAG के नाम से जाना जाता है। इस संगठन ने परामर्शदाताओं को मान्यता देने के लिए सामान्य दक्षताओं (जेनरिक स्किल्स) हेतु विशिष्ट दक्षताओं की सूची तैयार की जा रही है। अन्तरिम सूची के आधार पर इंसकिप्प (*Francesca Inskipp, 2000*) ने छः सामान्य दक्षताओं का उल्लेख किया है :-

(1) क्लायंट के साथ सम्पर्क स्थापित करने की दक्षता,

(2) परामर्शन दशा की संरचना सुनिश्चित करने की दक्षता,

(3) परामर्शन सम्बन्ध को विकसित करने की दक्षता,

(4) क्लायंट के साथ अन्तर्क्रिया के विकास एवं अनुरक्षण की दक्षता,

(5) अपने कार्य और आत्म मूल्यांकन की दक्षता,

(6) परामर्शन/उपचारात्मक प्रक्रिया में स्वयं का अनुश्रवण (मॉनीटरिंग) करने की दक्षता।

प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत अनेक आन्तरिक और बाह्य दक्षताएँ सम्मिलित की गयी हैं –

आन्तरिक दक्षताएँ	बाह्य दक्षताएँ
1. अवलोकन	1. ध्यान देना
2. सुनना	2. अभिवादन
3. संवेदनाओं, संवेगों, विचारों, प्रतिबिम्बों की पहचान हेतु शरीर की भाषा का अध्ययन	3. सक्रिय श्रवण (अनुभूतियाँ अभिव्यक्त करना) करना, संक्षेप करना, व्यांख्या
4. तटस्थ मूल्यांकन/निर्णय	4. प्रश्न पूछना
5. विभेदन	5. संविदा (उद्देश्य एवं वरीयता का वर्णन)
6. आत्म प्रत्यावर्तन (सेल्फ–रेफलेक्शन)	6. परामर्शन की भूमिका को स्पष्ट करना
7. परामर्शदाता के संबंध में अन्य व्यक्तियों (परामर्शी) के अनुभवों के बारे में ज्ञान	7. प्रदत्त अभिलेखन की आधुनिक ऑडियो–वीडियो तकनीक में दक्षता

द्वितीय श्रेणी का कार्य सम्पन्न करने हेतु क्लायंट को स्वीकार करने, उसका परीक्षण और मूल्यांकन करने, टेपरिकॉर्डिंग करने, सम्बन्धों का निर्माण करने के लिए आन्तरिक एवं बाह्य दक्षता की आवश्यकता होती है। प्रमुख दक्षताएँ निम्नांकित हैं :-

(1) प्रश्न पूछना और प्रश्न पूछने एवं उनके अभिलेखन का कारण परामर्शी को स्पष्ट करना,

(2) उद्देश्य का वर्णन करना

(3) वरीयता का वर्णन करना

(4) कुछ क्लायंट को परानुभूति, सम्मान एवं सुसंगत रूप में इनकार करना

(5) ठीक तरीके से टेप रिकॉर्डिंग करना

(6) क्लायंट के साथ संविदा (contract) तैयार करना और परामर्शन संबंधी अर्पण संगठनों (रेफरल ऑर्गनाइजेशन) को शिक्षित करना

(7) कार्य में सम्पूर्ण ऊर्जा के साथ, बाधक तत्त्वों जैसे– चिन्ता, परामर्शी को पसन्द न करना आदि बातों के प्रभाव से मुक्त होकर कार्य करना,

(8) अवलोकन करना

(9) ध्यानपूर्वक सुनना

(10) सहजीकरण बाह्य दक्षता (fecilitating outside skills), जैसे परानुभूति का संप्रेषण, प्रश्न पूछना, प्रतिक्रिया करना आदि।

क्लायंट के साथ अन्तर्क्रिया एवं परामर्शन/मनोचिकित्सकीय सम्बन्धों को विकसित और अनुरक्षित करने हेतु उपरोक्त दक्षताओं के अतिरिक्त कुछ और आन्तरिक एवं बाह्य दक्षताओं का इंसकिप्प ने वर्णन किया है :-

आन्तरिक दक्षताएँ
1. चुनौती प्रदान करने की अभिवृत्ति का आत्म-बोध
2. सिद्धान्तों की जाँच-परख
3. प्रत्यावर्तन और अभिलेखन

बाह्य दक्षताएँ
1. अभिसरण (फोकसिंग)
2. सार संक्षेपण
3. मूर्त उदाहरण
4. गहरी परानुभूति
5. चुनौती प्रदान करना

6. उपयुक्त आत्म-अभिव्यक्ति
7. तात्कालिकता

पूर्व वर्णित दक्षताओं को सहयोगात्मक (supportive) माना जाता है क्योंकि इनके प्रयोग द्वारा परामर्शदाता परामर्शी को सुरक्षा की ऐसी अनुभूति अर्जित करने में सहायता देता है जिसके आधार पर क्लायंट स्वयं अपना और अपनी परिस्थितियों का अन्वेषण आरम्भ कर पाता है लेकिन परामर्शन सम्बन्धों और अन्तर्क्रियाओं को विकसित करने हेतु, क्लायंट को लक्ष्य एवं उद्देश्य की दिशा में अग्रसर करने के लिए ऐसी दक्षताओं की आवश्यकता होती है जो परामर्शी के लिए चुनौतीपूर्ण (challenging) हो, जो कि क्लायंट को और आगे अन्वेषण करने, नया परिप्रेक्ष्य अर्जित करने, नयी मनोदशा प्राप्त करने और विश्व को नये तरीके से देखने की दृष्टि प्रदान करे।

परामर्शदाता परामर्शी को चुनौती दे इसके लिए उसे अपनी अनुभूतियों का अवलोकन करना होगा; उसे अपने भय, क्रोध तथा परामर्शी के क्रोध और भय की संभावना का बोध होना चाहिए। ऐसी चुनौती देने के लिए उपयुक्त समय का ध्यान रखा जाना अत्यन्त आवश्यक होता है। चुनौती प्रस्तुत करने का कार्य जिम्मेदारी के साथ करने हेतु आवश्यक होता है। चुनौती प्रस्तुत करने का कार्य जिम्मेदारी के साथ करने हेतु संचार/संप्रेषण दक्षता की आवश्यकता होती है। परामर्शदाता के पास सार-संक्षेपण और अभिसरण (फोकसिंग) दक्षता होनी चाहिए। संक्षेपण द्वारा ही विभिन्न बातों के मध्य सेतु निर्माण (अर्थात् उन्हें परस्पर जोड़ने) और परामर्शन साक्षात्कार को लक्ष्य की दिशा में लीक पर बनाये रखना संभव होता है। इंसकिप्प (2000) ने सार-संक्षेपण के लिए तीन विशिष्ट विधियाँ सुझाई हैं :-

(i) संक्षिप्त करते हुए परामर्शी से विकल्पों का चयन करने के लिए कहना,

(ii) संक्षिप्त वाले प्रस्तुत करने के साथ ही परामर्शी को विपरीत परिस्थितियों की कल्पना (विपरीत परिस्थिति का परामर्शदाता वर्णन करता है) करते हुए अन्वेषण करने के कलिए कहना,

(iii) वार्ता को संक्षिप्त करके उसे फोकस बिंदु की ओर ले जाना।

इस सार संक्षेपण क्रिया के लिए (i) ध्यानपूर्वक, शुद्ध रूप में सुनने; (ii) प्रासंगिक विचारों एवं अनुभूतियों को छांटने; और (iii) स्पष्ट संप्रेषण की क्षमता की आवश्यकता होती है। कभी-कभी सार संक्षेपण करते समय

NOTES

परामर्शी से अपने अनुभवों, विचारों एवं अनुभूतियों को मूर्त उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करने के लिए कहा जाता है। संक्षेपण और फोकसिंग परामर्शी हेतु चुनौतीपूर्ण होता है क्योंकि परामर्शी को परामर्शन वार्ता स्वयं का अधिक सन्निकटता के साथ परीक्षण/अन्वेषण करने के लिए बाध्य करती है। परामर्शदाता की आत्म-अभिव्यक्ति के अधिकांश लाभ होते हैं किन्तु परामर्शदाता को यह सुनिचित करना होग कि कब और क्या अभिव्यक्त किया जाय अन्यथा परामर्शी की आत्म-अभिव्यक्ति एवं सभ्य व्यक्ति के रूप में विकास में यह क्रिया सहायक होने के स्थान पर बाधक हो जायेगी। तात्कालिकता (immediacy) का अभिप्राय किसी क्षण की परामर्शन क्रिया के बारे में प्रत्यक्ष, खुले एवं स्पष्ट रूप में वार्ता करना होता है। इसमें यह बोध सम्मिलित होता है कि परामर्शदाता में (मन में) क्या चल रहा है या यह अनुमान किया जाता है कि परामर्शदाता और परामर्शी के बीच क्या घटित हो रहा है। तात्कालिकता की दक्षता का अर्थ यह जानना है कि सामर्थ्य का कब प्रयोग किया जाय: जब वार्ता रुक जाये, जब सम्बन्ध में समस्या उत्पन्न हो जाये; विश्वास का प्रश्न उत्पन्न हो; वर्ग, जाति, लिंग भेद हो; या परामर्शदाता परामर्शी के बारे में असमंजस में हो।

परामर्शन प्रक्रिया में परामर्शदाता के 'स्व' की देख-रेख (मॉनीटरिंग) और कार्य के मूल्यांकन हेतु पूर्व वर्णित दक्षताओं के अलावा आत्म-प्रबंधन दक्षताओं (self-management skills) की भी आवश्यकता होती है। ये दक्षताएँ हैं :-

(1) आत्म-स्वीकृति का विकास और अपने अन्दर न्यायपूर्ण तरीके से देखना;

(2) अपनी अधिगम, सांवेगिक, शारीरिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पहचान और उनकी पूर्ति के लिए संसाधनों का प्रयोग;

(3) मूल्यों, विश्वासों, सिद्धान्तों की पहचान और जाँच;

(4) प्रशिक्षण और व्यक्तिगत विकास की चल रही प्रक्रिया का नियोजन;

(5) प्रतिबिम्बन (रेफलेक्शन), अभिलेखन (रिकार्डिंग), प्रस्तुतीकरण और पर्यवेक्षण का प्रयोग;

(6) क्लायंट के साथ मिलकर पुनर्मूल्यांकन;

(7) क्लायंट से पुनर्निवेशन (फीडबैक) की माँग करना।

(ब) परामर्शदाता की विशद और सूक्ष्म दक्षताएँ (Macro and Micro Skills of Counsellors)

दक्षताओं का विकास करने, उन्हें अर्जित करने, उनका अपनी वृत्ति में प्रयोग करने के लिए यह अत्यनत उपचोगी होता है कि एक क्षमता या निपुणता को छोटी–छोटी इकाइयों में विभाजित करने के लिए परामर्शदाता समर्थ हो। जैसे 'संविदा' तैयार करने की क्षमता के लिए संधिवार्ता (negotiation) की क्षमता चाहिए और इसके लिए अन्य कई सूक्ष्म क्षमताएँ–जैसे सुनना, सार संक्षेपण करना और अनुभूतियों को प्रतिबिम्बित करने की योग्यता आदि होनी चाहिए। सूक्ष्म दक्षता का अधिगम और अभ्यास करके परामर्शदाता परामर्शी को अंतःकरण द्वारा स्वीकार किये बिना भी परानुभूति (empathy) और संगति संप्रेषित कर सकता है।

(स) परामर्शदाता की अनुषांगिक दक्षताएँ (Ancilliary Skills of the Counsellor)

परामर्शन सत्र से सम्बन्धित आन्तरिक और बाह्य दक्षताओं; अन्तर्वैयक्तिक, परामर्शन दक्षताओं के अलावा परामर्शदाता में अच्छी व्यावसायिक वृत्ति (professional practice) के लिए अनेक अनुषांगिक दक्षताएँ भी होनी चाहिए। कॉलिन फेल्थम (2000) के अनुसार अनुषांगिक दक्षताएँ मुख्य रूप से पूर्व एवं पश्चात् दक्षताओं (before and after skills) के रूप में होती है। अनुषांगिक दक्षता का सम्बन्ध परामर्शी के साथ किसी सम्पर्क या संदर्भ सूत्र के अनुसार सम्बन्ध स्थापित होने, परामर्शन की पृष्ठभूमि, सुरक्षा जैसे विषयों से होता है। ऐसी क्षमताओं को परामर्शन और व्यवसाय के बीच की क्षमता के रूप में समझा जा सकता है। फेल्थम ने इस श्रेणी में निम्न दक्षताओं को सम्मिलित किया है :-

(1) अर्पण प्राप्त करना (Receiving referrals) – परामर्शी के साथ सम्पर्क किसी अर्पण करने वाले व्यक्ति या संगठन या अभिकरण के पत्र, टेलीफोन आदि के द्वारा अथवा सीधे स्थापित हो सकता है। परामर्शी के साथ मिलने के लिए स्थान, तिथि, समय फीस का निर्धारण अत्यन्त सतर्कतापूर्वक करना होता है, अन्य क्लायंट या व्यस्तताओं के साथ टकराव नहीं होना चाहिए। इन विषयों में अनुभव को अत्यन्त उपयोगिता होती है।

NOTES

(2) सुरक्षा (Safety) – नैतिक, वैधानिक और व्यक्तिगत कारणों से परामर्शदाता और परामर्शी दोनों की सुरक्षा की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाना आवश्यक होता है। परामर्शी की सुरक्षा की दृष्टि से सुनसान कार्यस्थल, अंधकार, परिवहन आदि के खतरे; अन्य खतरनाक श्रेणी के परामर्शियों द्वारा आक्रमण का खतरा; हृदय, श्वास, मिर्गी, मनोविक्षिप्तता जैसे रोगों की आकस्मिक उत्पत्ति की संभावना आदि को ध्यान में रखना चाहिए। परामर्शदाता की अकेले कार्य करने की दशा (विशेषकर जब क्लायंट दूसरे लिंग का हो), अप्रत्याशित टेलीफोन कॉल या आगन्तुक, किसी क्लायंट की तैयारी, सतर्कता, आकलन और अन्तर्वेयक्तिक दक्षता की माँग करते हैं।

(3) परामर्शन परिवेश की भौतिक सज्जा का निर्माण (Developing physical setting of the counselling climate) – परामर्शन के लिए उपयुक्त परिवेश की रचना करने हेतु भौतिक सज्जा पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है। प्रवेश कक्ष, प्रतीक्षा कक्ष, शोर से सुरक्षित कक्ष का निर्माण और गोपनीयता, सुरक्षा, सुविधा को ध्यान रखने वाली संरचना एवं सज्जा परामर्शन को सरल बनाती है। परामर्शन के लिए उपयुक्तता को ध्यान में रखकर सम्पूर्ण भौतिक दशा की रचना का प्रबंध किया जाना चाहिए।

(4) अभिलेख, व्यक्ति विवरण एवं व्यक्ति अध्ययन (Keeping records, case notes and writing case study/reports) – परामर्शी की गोपनीयता के हित को ध्यान में रखकर परामर्शदाता की व्यक्तिगत डायरी और केस डायरी (परामर्शी की विवरणिका) भिन्न-भिन्न होनी चाहिए। परामर्शी के बारे में विवरणी में प्रारम्भिक धारणा, अवलोकन, सम्पर्को-सम्बन्धें, अनुभवों, स्वप्नों, आशाओं, लक्ष्यों, उद्देश्यों, भय; परामर्शदाता के लक्ष्य, व्यूह रचना, उनका परिाम, भावनात्मक-स्थानान्तरण जैसी बातों को अंकित किया जाता है। व्यक्ति अध्ययन का प्रयोग प्रशिक्षण, शोध, मान्यता/प्रत्यापन (accreditation), और प्रकाशन के लिए औपचारिक रूप में किया जाता है। परामर्शी के बारे में आरम्भिक सूचना, नैदानिक मूल्यांकन, परामर्शन प्रक्रिया और परामर्शन के परिणामों का मूल्यांकन एक व्यक्ति अध्ययन (केस स्टडी) के तत्त्व होते हैं। परामर्शदाता को प्रशिक्षित करने वाले कुछ संस्थान इस पक्ष पर पर्याप्त अत्यधि क बल देते हैं। परामर्शी की गोपनीयता, आवश्यक होने पर उसकी स्पष्ट/लिखित अनुमति, पहचान संभव बना सकने वाली सूचनाओं को छिपाना, लिखे गये विवरण की भौतिक सुरक्षा परामर्शदाता की अनुषांगिक दक्षता के महत्वपूर्ण तत्त्व होते हैं।

परामर्शदाता की दक्षता वस्तुतः व्यापक रूप में अपेक्षित है। सामान्य, सूक्ष्म, विशिष्ट एवं अनुषांगिक दक्षताओं के साथ-साथ उसमें नैदानिक वृत्ति, तकनीकी ज्ञान एवं व्यावसायिक वृत्ति से सम्बन्धित दक्षताओं की भी आवश्यकता होती है।

परामर्शदाता

परामर्शदाता व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति होता है, जो विद्यालयों में परामर्श एवं मार्गदर्शन सेवाओं का संगठन जिम्मेदारी के साथ करता है। विद्यालय का अध्यापक इस प्रकार के व्यावसायिक प्रशिक्षण के पश्चात् विद्यालय में परामर्शदाता की भूमिका अदा कर सकते हैं। परामर्शदाता निर्देशन और मार्गदर्शन कार्यक्रम का मुख्य तथा आकर्षक बिन्दु होता है। जो मार्गदर्शन तथा निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन तथा सूत्रधार विद्यालयों में होता है। परामर्शदाता प्रत्येक विद्यालय में आवश्यक है तथा यह एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ये विद्यार्थी के सामाजिक समायोजन, व्यावसायिक चयन, से लेकर संवेगात्मक समस्याओं का समाधान करते हैं। परामर्शदाता विद्यार्थी की हर प्रकार की समस्याओं का समाधान करने हेतु भिन्न-भिन्न प्रविधियों जैसे निदानात्मक उपकरण व्यावसायिक सूचनाएँ व्यक्ति को समझने के लिये विभिन्न परीक्षण का प्रयोग करते हैं। परामर्श एक व्यावसायिक सेवा है तथा यह मनुष्य की समस्या पर केन्द्रित होता है। परामर्श सदैव परामर्शदाता की भविष्यवाणी की उपयुक्तता पर आधारित होता है। एक अच्छे परामर्शदाता में परिपक्वता, भावात्मक स्थिरता, आत्मसम्मान तथा आत्म विश्वास, स्वयं के संदर्भ में ज्ञान, नेतृत्व की योग्यता, शैक्षिक पृष्ठभूमि तथा विद्वता, स्वास्थ्य एवं बाहरी व्यक्तित्व, व्यवसाय के प्रति सम्पूर्ण भावना प्रार्थी के मतभेदों के प्रति सहनशीलता और स्वीकृति का दृष्टिकोण तथा समस्त सकारात्मक गुण होनी चाहिए। विद्यार्थियों का सहयोग और उनकी संभागिता एक सफल परामर्शदाता के लिए आवश्यक है। परामर्शदाता विद्यार्थियों का विश्वास प्राप्त कर उनका ध्यान अपने ओर आकर्षित कर उनके विषय में तथा समस्याओं के विषय में सूचनाएँ एकत्रित कर सकता है। एक अच्छे परामर्शदाता को सदैव संवेदनशील होना चाहिए जिससे वह विद्यार्थी के समस्या के प्रति संवेदनशील हो सके। एक अच्छे परामर्शदाता की यह महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है कि वह विद्यार्थियों को इस योग्य बना सके कि वह अपनी समस्याओं के कारणों को ठीक प्रकार समझ सके तथा उनसे निपटने में अपने आपको समर्थ बनाने के प्रयत्न कर

NOTES

सकें। इस तरह से अगर परामर्शदाताओं के कार्यक्षेत्र और उत्तरदायित्वों का विवरण प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाये तो हम यह देख सकते हैं कि परामर्शदाता से ऐसा कोई भी कार्य तथा कार्य क्षेत्र अहुत नहीं है जो किसी न किसी रूप से बच्चों की शैक्षिक व्यावसायिक तथा व्यक्तिगत प्रगति तथा कल्याण से जुड़ा हुआ होता है। विद्यार्थियों का कल्याण उनके सर्वांगीण विकास व्यवहार में उचित परिमार्जन तथा उनके व्यक्तिगत, सामाजिक एवं पर्यावरणात्मक समायोजन से जुड़ा होता है। अत: हम कह सकते हैं कि एक बहुपक्षीय परामर्श कार्यक्रम को तभी सफल बनाया जा सकता है जब विद्यार्थियों में उचित परामर्शदाता तथा मार्गदर्शन के रूप में प्रशिक्षिता व्यक्ति उपलब्ध हो। इस तरह हम देख सकते हैं कि एक प्रशिक्षित परामर्शदाता अपने अच्छे गुणों, कौशल तथा विद्वता के आधार पर अपने जिम्मेदारियों का वहन करते हुए प्रत्येक विद्यार्थियों के जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप एक परामर्शदाता का भूमिका किस प्रकार विद्यार्थी जीवन में आवश्यक है? समझ सकती है एक अच्छे परामर्शदाता के अंदर किन-किन अच्छे गुणों का समावेश होना जरूरी है ये भी जान सकेंगे तथा एक अच्छे परामर्शदाता की एक विद्यालय तथा विद्यार्थी जीवन की समस्याओं का समाधान हेतु क्या-क्या जिम्मेदारियां होती हैं और इसका निर्वहन परामर्शदाता कैसे करते हैं?

अच्छे परामर्शदाता के गुण

एक अच्छे परामर्शदाता में बहुत से गुण निहित होते हैं तथा इन गुणों को हम तीन समूहों में विभक्त कर इसका वर्णन कर सकते हैं जो इस प्रकार है-

1. अच्छे परामर्शदाता के व्यक्तित्व की विशेषता
2. अच्छे परामर्शदाता का प्रशिक्षण एवं तैयारी
3. अच्छे परामर्शदाता के अनुभव

अच्छे परामर्शदाता के व्यक्तित्व की विशेषता

1. प्रत्येक परामर्शदाता की रूचियों में व्यापकता होनी चाहिए जिससे उसको पृथक-पृथक लोगों की नौकरियों और समस्याओं में रूचि लेने में सहायता

मिल सके। विभिन्न प्रकार की रूचियों के बारे में व्यापक समझ होना बहुत आवश्यक है।

2. परामर्शदाता में सहयोग की भावना का विकास होना अत्यन्त जरूरी है। जिससे वह विद्यालयी वातावरण में सहयोग कर तथा विद्यार्थियों का भी सहयोग कर सके एवं अन्य लोगों से सहयोग प्राप्त कर सकें। बिना सहयोग-भावना के वह न तो विद्यार्थियों और न ही शिक्षकों का कल्याण कर सकता है उसका सहयोगपूर्ण व्यवहार ही समस्याग्रस्त विद्यार्थियों को उस तक पहुँचने में सहायता करता है।

3. परामर्शदाता के स्वभाव में विनम्रता तथा वातावरण को सुखयुक्त बनाने की कला होनी चाहिए। उसकी वाणी मधुर होनी चाहिए जिससे विद्यार्थियों को उससे घुलने-मिलने में मदद मिल सकें। खुशनुमा वातावरण में विद्यार्थी अपनी समस्या आसानी से सुलझा लेते हैं।

4. परामर्शदाता को दूरदर्शी होना चाहिए जिससे विद्यालय में अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को समस्या को समझने में सहायता मिलती है तथा साथ ही साथ वह विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के भविष्य को सँवारने का काम भी करता है, उसकी दूरदर्शी सोच ही विद्यालय की प्रगति का आधार भी होती है।

5. परामर्शदाता का व्यक्तित्व आकर्षक होना चाहिए जिससे प्रत्येक मनुष्य उसको सुनने एवं समझने के लिए आकर्षित हो सके।

6. परामर्शदाता को विश्वासपात्र बनने की कला का ज्ञान होना जरूरी है जिसकी सहायता से वह किसी का विश्वास प्राप्त कर उससे घुल-मिल कर समस्या के तह तक पहुँच सके। अब आप परामर्शदाता के व्यक्तित्व के विशेषता को समझ गए होंगे।

अच्छे परामर्शदाता का प्रशिक्षण और तैयारी

आप देखेंगे कि परामर्शदाता के प्रशिक्षण के लिए क्या-क्या तैयारी करनी है वो निम्नवत् हैं :-

i. परामर्शदाता को शैक्षिक उद्देश्यों, पाठ्यक्रमों एवं विधियों का ज्ञान होना चाहिए।

NOTES

ii. परामर्शदाता को विभिन्न व्यवसायों के विषय में भिन्न-भिन्न गतिविधियों का ज्ञान होना चाहिए।

iii. परामर्शदाता को परामर्श एवं निर्देशन के सिद्धान्तों से भली प्रकार अवगत होना चाहिए।

iv. परामर्शदाता को समस्त विषयों का ज्ञान होना जरूरी है।

v. परामर्शदाता को विद्यालयों में निर्देशन-सेवाओं के गठन के विषय में पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

vi. परामर्शदाता को निर्देशन सेवाओं में मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं का ज्ञान जरूरी है।

vii. परामर्शदाता को व्यवसाय-संबंधी जानकारी देने की विधियों का भी ज्ञान होना अति जरूरी है। एक परामर्शदाता के लिए शैक्षिक योग्यताएँ निम्नवत् हैं :-

  i. एम० ए० (मनोविज्ञान या शिक्षा) या बी० ए० एम० एड० (निर्देशन सहित)।

  ii. शिक्षा-निर्देशन में डिप्लोम कोर्स।

  iii. परामर्शदाता को व्यक्तित्व संबंधी समस्याओं, परीक्षाओं, मानसिक स्वास्थ्य एवं परामर्श देने की तकनीकों का ज्ञान हों।

अच्छे परामर्शदाता के अनुभव

एक परामर्शदाता को निम्नलिखित अनुभवों का ज्ञान जरूरी है –

1. परामर्शदाता को निर्देशन कार्यक्रम में दक्षता प्राप्त होनी चाहिए जिससे उसे विद्यार्थियों की समस्या को समझने, तथा उन समस्याओं के समाधान करने तथा उनके साथ मधुर संबंध स्थापित करने में मदद मिलती है।

2. परामर्शदाता को व्यवसाय प्राप्त करवाने तथा सही कार्यवाही करना आना चाहिए।

3. परामर्शदाता को प्रत्येक प्रकार की सूचनाओं की व्याख्या करने में निपुणता आनी चाहिए।

4. परामर्शदाता को सामाजिक साधनों के प्रयोग में दक्षता होनी चाहिए।

5. परामर्शदाता में परामर्श सेवा का मूल्यांकन करने की योग्यता होनी चाहिए।

अच्छे परामर्शदाता की भूमिका एवं जिम्मेदारियाँ

अच्छे परामर्शदाता की भूमिका विद्यार्थी की जीवन में किस-किस प्रकार है एवं विद्यालय, विद्यार्थी व विद्यार्थी के माता-पिता की क्या-क्या अपेक्षाएँ एवं कुशल परामर्श दाता से हैं ये निम्न प्रकार हैं –

i. परामर्शदाता को विद्यार्थियों को उनकी योग्यताऐं तथा क्षमताएं, रूचियां, दृष्टिकोण तथा इच्छाएँ और अभिलाषाओं आदि से परिचित कराना चाहिए। जिससे उनके अंदर आत्मविश्वास उत्पन्न होता है।

ii. विद्यार्थियों के समस्या को समझ कर उससे मुक्ति दिलाने में परामर्शदाता की सहायता करनी चाहिए।

iii. विद्यार्थियों के व्यवहार में जो कमियाँ हो उसके परिमार्जन में परामर्शदाता की सहायता करनी चाहिए।

iv. परामर्शदाता को विद्यार्थी की शैक्षिक, उपलब्धि में वृद्धि करने हेतु विद्यार्थी को सुझाव एवं सहयोग देना चाहिए।

v. अध्यापकों के व्यवहार में जैसा वे चाहते हैं उसी के अनुसार बदलाव आ जाए, इस कार्य में परामर्शदाता को उनकी सहायता करनी चाहिए।

vi. विद्यार्थियों को अपने समूह से अच्छे संबंध एवं सम्मान दिलाने में परामर्शदाता को उसकी सहायता करनी चाहिए।

vii. परामर्शदाता को विद्यार्थी के लिए कौन सा रोजगार तथा कैरियर ठीक रहेगा एवं उसके लिए किस प्रकार तैयारी की जाए आदि बताना चाहिए।

viii. माता-पिता तथा अभिभावकों से बालकों की पटरी बैठाने में परामर्शदाता को उनकी मदद करनी चाहिए।

अब आप समझ गए होंगे कि एक परामर्शदाता की विद्यार्थी जीवन में क्या भूमिका तथा महत्व है।

NOTES

एक अच्छे परामर्शदाता का विद्यालय में क्या भूमिका है तथा परामर्शदाता विद्यालय के अध्यापक की किस प्रकार मदद कर सकता है। ये निम्नलिखित हैं-

i. परामर्शदाता शिक्षकों को विद्यार्थियों को जानने-पहचानने तथा भलीभाँति समझने में सहायता करें। उनके विभिन्न प्रकार के परीक्षण लेकर विद्यार्थियों के स्तर तथा व्यवहार को समझने में भी उनकी सहायता करें।

ii. शिक्षकों को मदद करें ताकि वह विद्यार्थियों के व्यवहार में अपेक्षानुरूप व्यवहार बदलाव कर सकें।

iii. समस्यात्मक एवं अनुशासनहीन विद्यार्थियों से निपटने में शिक्षकों की मदद करें। क्योंकि ऐसे बालकों से शिक्षा अधिगम प्रक्रिया में बढ़ा उत्पन्न होती है।

iv. पाठ्य सहगामी क्रियाओं में विद्यार्थियों का सही चुनाव कराने में शिक्षक की मदद करें।

v. विद्यार्थियों के माँ बाप तथा अभिभावकों से विद्यार्थियों के विकास हेतु पर्याप्त सहयोग लेने में शिक्षकों की मदद कर सकता है।

vi. प्रधानाध्यापक-शिक्षक तथा शिक्षक-शिक्षक के आपसी सम्बन्धों को ठोस बनाने में शिक्षकों को सलाह-मशविरा देते रहना चाहिए।

अब आप जान गये होंगे कि परामर्शदाता किस प्रकार अध्यापकों की मदद कर सकता है। आइए अब आप अवगत हों कि माँ-बाप तथा अभिभावकों की परामर्शदाता से क्या अपेक्षायें होती हैं-

i. बालकों को ठीक तरह समझने में अभिभावकों की सहायता करना।

ii. बालकों की गलत आदतों को हटाने में तथा व्यवहार को सुधारने में वह समस्त संभव उपाय करें।

iii. अगर बालक पढ़ाई में कमजोर है या उनका मन पढ़ाई में नहीं लगता तो वह उचित उपाय बताएँ।

iv. अभिभावकों वह यह बतायें कि उनके बालकों के लिए कौन से विषयों का पढ़ना ठीक है। एवं वे उपयुक्त व्यवसाय का चुनाव कर सकें।

v. अभिभावकों को फीस माफी, वजीफे तथा अन्य प्रकार की कैसी मदद किस रूप में उपलब्ध हो सकती है।

vi. अध्यापकों तथा प्रधानाध्यापकों से अभिभावकों का तालमेल बनाये रखने में मदद करें। विद्यार्थी, अध्यापक, माँ-बाप एवं अभिभावक की उपरोक्त अपेक्षाओं के आधार पर परामर्शदाताओं द्वारा निभाई जाने वाली भूमिकायें निम्न प्रकार की जा सकती हैं-

विद्यार्थियों को परामर्श देने से सम्बन्धित कार्य

i. विद्यार्थियों से आत्मीयता एवं घनिष्ठ सम्बन्ध बनाना। ताकि समस्या ग्रस्त विद्यार्थी अपनी परेशानी को बिना हिचकिचाहट के बता सकें व उन्हें यह भी भरोसा हो कि परामर्शदाता उनकी मदद अवश्य करेगा।

ii. विद्यार्थियों को जानने तथा समझने हेतु विभिन्न प्रकार के परीक्षणों जैसे बुद्धि परीक्षण, उपलब्धि परीक्षण, रूचि परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, अभिरूचि परीक्षणों एवं अन्य निरीक्षण तथा सूचना श्रोतों का उपयोग करना। विभिन्न परीक्षणों का उपयोग विद्यार्थी की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को जानने के लिए किया जाता है। इन विशेषताओं की जानकारी से परामर्शदाता को परामर्श देने में बहुत मदद प्राप्त होती है।

iii. विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना कि वे अपनी समस्याओं के कारणों को ठीक तरह समझ सकें तथा अपने सकारात्मक पक्षों को पहचान कर समस्या का निदान खुद करने में सक्षम हो सकें।

विद्यार्थियों के माता-पिता का सहयोग प्राप्त करने सम्बन्धी कार्य

माता-पिता अथवा अभिभावक का सहयोग लिए बिना विद्यार्थियों को अच्छी प्रकार से परामर्श नहीं दिया जा सकता है। इस बात से आप भी सहमत होंगे कि अभिभावक विद्यार्थियों के बारे में बहुत महत्वपूर्ण सूचनाएं परामर्शदाता को दे सकते हैं। परामर्शदाता इस सम्बन्ध में निम्न कार्य करता है-

i. परामर्शदाता विद्यार्थियों के माता-पिता अथवा अभिभावक को बालक के शैक्षिक विकास एवम् प्रगति के स्तर के बारे में जानकारी देते रहता है।

ii. माता-पिता तथा अभिभावकों को परामर्श एवं मार्गदर्शन सेवाओं के कार्यक्षेत्र तथा उपयोगिता से परिचित कराना तथा इन सेवाओं के आयोजन हेतु अपेक्षित सहयोग प्राप्त करना।

NOTES

iii. विद्यार्थी के व्यवहार, योग्यता तथा क्षमता स्तर, व्यक्तिगत गुणों एवं आदतों के संबंध में माँ-बाप से अपेक्षित सहयोग प्राप्त करना। माता-पिता एवं अभिभावकों से प्राप्त व्यवहार सम्बन्धी सूचनाएँ मार्गदर्शन करने में मदद प्रदान करती है।

iv. विद्यार्थियों में विशेष प्रकार के व्यवहार, समस्या तथा समायोजन से सम्बन्धित जरूरी जानकारी एकत्रित करने में माता-पिता का सहयोग लेना।

v. माता-पिता तथा अभिभावक विद्यार्थियों के साथ अच्छा तालमेल रखते हुए उनके विकास में योगदान दें इस हेतु मदद करना।

अब आप जान गए होंगे कि माता-पिता तथा अभिभावक का सहयोग अत्यधिक जरूरी है बिना उनके सहयोग के विद्यार्थियों से सम्बन्धित बहुत सारी महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होना असंभव है। उचित परामर्श प्रदान करने हेतु विद्यार्थी की पृष्ठभूमि से संबंधित अधिक से अधिक सूचनाएँ परामर्शदाता के पास होना अत्यंत आवश्यक है।

अध्यापकों से सहयोग प्राप्त करने सम्बन्धी कार्य

परामर्शदाता को अध्यापकों का सहयोग लेना भी आवश्यक है क्योंकि अध्यापक शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के दौरान विद्यार्थियों के व्यवहार का निरीक्षण करते हैं तथा वह विद्यार्थियों की विशेषताओं से परिचित होते हैं। अब आप परामर्शदाता के निम्नलिखित कार्यों से समझ पायेंगे कि अध्यापकों का सहयोग वह मार्गदर्शन सेवाओं हेतु किस प्रकार प्रकार प्राप्त करता है-

1. विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक गुणों को जानने हेतु विभिन्न परीक्षणों तथा उपकरणों को प्रशासित करते समय अध्यापक का सहयोग प्राप्त करना।

2. विद्यार्थियों को परामर्श एंव निर्देशन/मार्गदर्शन प्रदान करने हेतु जो भिन्न-भिन्न प्रकार के अभिलेख तैयार किये जाते हैं उनको तैयार करने तथा रखरखाव में अध्यापकों का सहयोग प्राप्त करना। संचित अभिलेख तैयार करने हेतु तथा उसके रखरखाव हेतु शिक्षक की सहायता लेने आवश्यक होता है क्योंकि शिक्षक विद्यार्थियों की अधिकतर विशेषताओं से परिचित होते हैं।

3. विद्यार्थियों से अध्यापक को किस प्रकार का व्यवहार करना अपेक्षित है। इस बात का आभास अध्यापकों को कराया जाना जरूरी है। परामर्शदाता

इस प्रकार का परामर्श अध्यापकों को समय-समय पर दिया जाता है। ताकि उनका विद्यार्थियों के साथ उचित तालमेल बना रहे। हमेशा विद्यार्थियों को डांटना फटकारना एवं गुस्से में बात करना अच्छे शिक्षण में बढ़ा उत्पन्न करता है। इस हेतु परामर्शदाता जरूरी परामर्श प्रदान करता है।

4. अध्यापकों को कुसमायोजित, विशेष बालकों को पढ़ाने में विशेष कठिनाई का अनुभव करना पड़ता है। इस सम्बन्ध में परामर्शदाता उन्हें उचित मार्गदर्शन के माध्यम से समायोजनात्मक तथा उपचारात्मक तरीकों से परिचित कराता है।

5. विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विशेषताओं से अध्यापक को परिचित कराना तथा वैयक्तिक विशेषताओं के अनुरूप शिक्षण प्रक्रिया के आयोजन में अध्यापक की मदद प्रदान करना।

6. विद्यार्थियों को मार्गदर्शन व परामर्श देने से पूर्व उन्हें अच्छी तरह जानने एवं समझने हेतु विद्यार्थियों के प्रति अध्यापकों की राय या प्रतिक्रिया जानना।

अब आप जान गए होंगे कि विद्यार्थियों को परामर्श प्रदान करने हेतु अध्यापक से जरूरी सहयोग कैसे प्राप्त किया जाता है, शिक्षण अधिगम को प्रभावी कैसे बनाया जाता है व कक्षा में समस्यात्मक बालकों से कैसे निपटा जाता है।

सूचनाएँ प्रदान करने सम्बन्धी कार्य

पिछली इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान गए होंगे कि मार्गदर्शन सेवाओं के अन्तर्गत सूचना सेवाओं को संगठन किया जाता है। इन सूचना सेवाओं के संगठन का उत्तरदायित्व परामर्शदाता के ऊपर होता है। इस हेतु वह निम्न कार्य कर सकता है-

1. विद्यार्थियों के व्यवहार, योग्यता, क्षमता, व्यक्तित्व गुणों आदि से सम्बन्धित सूचनाएँ जरूरत के अनुसार प्रदान करना।

2. विभिन्न शैक्षिक अवसरों (पाठ्यक्रमों), विषयों तथा क्रियाओं के बारे में आवश्यक जानकारी एवं सूचनाएँ प्रदान करना।

3. व्यावसायिक कोर्सों, नौकरी के अवसरों, विभिन्न रोजगारों आदि के बारे में समस्त आवश्यक जानकारी प्रदान करना।

NOTES

4. विद्यालय के इतिहास, उद्देश्य, नियम एवं सुविधाओं के बारे में आवश्यक जानकारी प्रदान करना।

5. फीस माफी, वजीफे और अन्य शैक्षिक या व्यावसायिक सुविधाओं के नियम, अवसरों आदि को उचित जानकारी प्रदान करना।

6. विद्यालय के भौतिक संसाधनों (पुस्तकालय, प्रयोगशाला, खेल मैदान, कम्प्यूटर लैब, हॉस्टल, डे सेन्टर, कॉमन रूम, कैन्टीन) की उचित जानकारी प्रदान करना।

7. सूचना पुस्तिका अथवा विवरणिका का तैयार करने की जिम्मेदारी भी परामर्शदाता की होती है।

इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि परामर्शदाता के पास अनेकों महत्वपूर्ण सूचनाओं का संग्रह होता है जिन्हें वह आवश्यकतानुसार प्रदान करता है। परामर्श की प्रक्रिया में सूचनाओं को एकत्रित करना एवं उनका उचित प्रयोग करना बहुत महत्वपूर्ण चरण है।

समुदाय के साथ सहयोग सम्बन्धी कार्य

परामर्श एवं मार्गदर्शन कार्यक्रम तभी सफल हो सकते हैं जबकि इनमें समुदाय तथा समाज के सदस्यों का सहयोग ठीक रूप में हासिल किया जा सके। इस बात से आप भी सहमत होंगे। इस हेतु परामर्शदाता के निम्न उत्तरदायित्व हैं-

1. परामर्शदाता को समुदाय या समाज विशेष की आवश्यकताओं तथा प्रकृति से पूर्ण रूप से परिचित रहना चाहिए। विद्यार्थियों के व्यवहारों के बारे में सही निष्कर्ष तक पहुँचाने में उसके समुदाय की प्रकृति व संस्कृति जानना बहुत आवश्यक है।

2. विद्यार्थियों को नौकरी के अवसरों, विभिन्न रोजगारों आदि के बारे में जानकारी उपलब्ध कराने हेतु, विभिन्न नियोक्ताओं से व्यक्तिगत संपर्क रखना।

3. विद्यार्थियों के परिवेश से संबंधित समायोजन संबंधी समस्याओं के हल हेतु समुदाय तथा समाज का सहयोग हासिल करना।

4. विद्यार्थियों की शैक्षिक एवं व्यावसायिक प्रगति हेतु उन्हें समुदाय तथा

समाज के सदस्यों के पास संस्थाओं, व्यवसायिक प्रतिष्ठानों में ले जाकर वास्तविक अनुभव प्रदान करना।

आप जान गए होंगे कि एक विद्यार्थी शिक्षा पूरी करने के पश्चात् समुदाय एवं समाज में ही सेवा हेतु जाता है इसलिए परामर्शदाता द्वारा समाज एवं समुदाय की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं एवं प्रकृति को जानना बहुत आवश्यक होता है। साथ ही साथ समुदाय व समाज से बेहतर तालमेल भी बनाए रखना जरूरी होता है।

मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवाओं से सम्बन्धित अन्य विविध कार्य

मार्गदर्शन कार्यक्रम के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न सेवाओं का संगठन किया जाता है ताकि मार्गदर्शन कार्यक्रम सफल हो सके। इन सभी मार्गदर्शन सेवाओं के संगठन और आयोजन का कार्य परामर्शदाता ही करता है। इस प्रकार समन्वित क्रियाओं का कुछ रूप निम्न प्रकार है-

1. समय-समय पर मार्गदर्शन तथा परामर्श सम्बन्धी भाषण, सेमिनार, विचार गोष्ठी, बाद-विवाद प्रतियोगिता, कविगोष्ठियों, रंगमंच अभिनयों, फिल्म, वीडियो स्लाइड आदि को दिखाने से सम्बन्धित कार्यक्रमों एवं प्रदर्शनी का आयोजन।
2. ओरियेन्टेशन सेवाओं के आयोजन सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की क्रियायें जैसे-ओरियेन्टेशन डे या सप्ताह का आयोजन, प्रचार तथा प्रसार सामग्री का प्रकाशन, सूचना केन्द्र की स्थापना, कैरियर कान्फ्रेन्स का आयोजन, कैरियर एण्ड गाइडेंस क्लब की स्थापना परामर्शदाता के नेतृत्व में ही सफलतापूर्वक किया जा सकता है।
3. विद्यार्थियों को विभिन्न महत्वपूर्ण स्थानों, संस्थाओं कंपनियों का भ्रमण कराना।
4. विद्यार्थियों से सम्बन्धित विभिन्न तरह के अभिलेख जैसे-संचित अभिलेख पत्र आदि तैयार करना।
5. उपयुक्त मार्गदर्शन तथा परामर्श प्रदान करने हेतु उपयुक्त अनुसंधान कार्य भी परामर्शदाता कर सकता है तथा इन विषय क्षेत्रों पर अनुसंधान करने वालों की सहायता भी कर सकता है।

NOTES

6. अनुवर्ती सेवाओं के द्वारा वह किसी व्यवसाय में समायोजन संबंधी विद्यार्थियों की समस्याओं को हल करने हेतु विविध उपाय करना।

इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि परामर्शदाता का कार्यक्षेत्र एवं उत्तरदायित्व का दायरा बहुत व्यापक है। यह विद्यार्थियों के शैक्षिक, व्यवसायिक तथा व्यक्तिगत प्रगति से जुड़ा है। विद्यालय के सभी विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास तभी संभव है जब विद्यालय में परामर्शदाता और मार्गदर्शक के रूप में योग्य, कुशल व प्रशिक्षित व्यक्ति उपलब्ध हो अथवा अध्यापकों को ही कुछ विशेष प्रशिक्षण देकर इन उत्तरदायित्वों के वहन के लिए तैयार किया जाए।

विशिष्ट बालकों की समस्याऐं एवं आवश्यकताएँ

विशिष्ट बालक से आशय उत्तम या अत्याधिक प्रतिभा सम्पन्न छात्र से नहीं है। विशिष्ट बालक सामान्य से उच्च एवं निम्न दोनों ही श्रेणियों के हो सकते हैं। विशिष्ट बालक मानसिक, शारीरिक तथा सामाजिक गुणों में सामान्य बालकों से भिन्न होते हैं। ऐसे बालकों के लिए कुछ अतिरिक्त अनुदेशन स्व-मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है तथा जिसकी सहायता से ऐसी दशा में उनका सामर्थ्य का सामान्य बालकों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

विशिष्ट बालकों के लक्षण, गुण, स्वरूप सामान्य बालकों से अलग होते हैं। एक विशिष्ट बालक वह है जो सामान्य शिक्षा कक्ष तथा सामान्य शिक्षा कार्यक्रमों द्वारा पूर्णतया लाभान्वित नहीं हो सकता क्योंकि उसके विकास की सामर्थ्य अधिक होती है।

एक विशिष्ट बालक शारीरिक मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक तथा शैक्षणिक उपलब्धियों जैसी समस्त धाराओं में सम्मिलित होता है।

विशिष्ट बालक की अधिकतम सामर्थ्य के विकास हेतु उसे स्कूल की कार्यप्रणाली तथा उसके साथ किये जाने वाले व्यवहार में परिवर्तन की आवश्यकता होती है।

एक विशिष्ट बालक शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक सामाजिक आधार पर सामान्य बालक से अलग होता है। सामान्य बालक की अपेक्षा उसका विकास तीव्र गति से होता है।

प्रत्येक विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के लिए अधिकांश बालक आते हैं। इनके अलावा कुछ ऐसे बालक भी आते हैं, जिनकी अपनी कुछ शारीरिक और मानसिक विशेषताएँ होती हैं। इनमें कुछ प्रतिभाशाली मन्दबुद्धि, पिछड़े हुए और कुछ शारीरिक दोषों वाले होते हैं। इनको विशिष्ट बालकों की संज्ञा दी जाती है। जो निम्न प्रकार के हैं –

(1) प्रतिभाशाली बालक (2) सृजनात्मक बालक (3) पिछड़े बालक (4) मन्द बुद्धि बालक (5) विकलांग बालक (6) जटिल अथवा समस्यात्मक (7) श्रवण बाधित बालक (8) अधिगम असमर्थी बालक (9) अस्थि बाधित बालक (10) बहुविकारों से पीड़ित बालक (11) दृष्टि बाधित बालक (12) समाज में असुविध ात्मक बालक (13) विशिष्ट स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायुक्त बालक (14) वाणी बाधित बालक (15) संवेगात्मक रूप से विक्षिप्त बालक (16) अपराधी बालक

विशिष्ट बालकों की समस्याऐं

अधिकांश बच्चों को कभी–न–कभी व्यवहारगत समस्याएँ होती हैं। व्यवहारगत समस्याएँ बालक की अंतर्दशाओं या प्रायः ध्यान में न आने वाले बाह्य दबाओं या दूसरों द्वारा नहीं समझे जाने वाली बातों द्वारा उत्पन्न होती है। व्यववहारगत समस्याएँ पलायन से लेकर उत्तेजित होने विरोध शत्रुता प्रकट करने एवं अत्यन्त आक्रामक रूख अपना लेने के रूप में प्रकट होती है। कक्षा में विद्यार्थी व्यवहारगत समस्याओं का सामना अपने तरीके से करने का प्रयास करते हैं। जो कभी–कभी दूसरों के लिए दुःखदायी हो जाता है।

जिस प्रकार मानसिक रूप से बालक धीरे–धीरे सीखते हैं। उसी प्रकार अन्य विशिष्ट बालक व्यवहारगत समस्याओं के कारण अपने विकास और अधिगम में गंभीर समस्या महसूस कर सकते हैं। अध्यापकों व माता पिता को अपने बच्चों की इस प्रकार की समस्याओं से निपटने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ऐसी समस्याएँ प्रायः अधिगम प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करती है। अतः एक अध्यापक के लिए अपने विद्यार्थियों की प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने वाली व्यवहारगत समस्याओं के कारणों के समझना आवश्यक है, अन्यथा वह ऐसे विद्यार्थियों के साथ ऐसे तरीके से व्यवहार कर सकता है जिसके परिणाम गंभीर हो सकते हैं। व्यवहारगत समस्याओं से ग्रस्त विद्यार्थी अपने अध्यापकों के लिए प्रायः अत्यधिक कुंठित करने वाली समस्याएँ या लाभदायक चुनौतियाँ पैदा कर देते हैं। इस प्रकार की विद्यार्थियों की शारीरिक

NOTES

आवश्यकताओं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं एवं शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति भली भांति समय पर होना चाहिए। विशिष्ट बालकों की समस्याएँ दो अवस्थाओं में होती है।

- विशिष्ट बच्चों की समस्याएं
- विशिष्ट किशोरों की समस्याएं

विशिष्ट बच्चों की समस्याएं

बच्चों द्वारा अनुभव की जाने वाली कुछ समस्याएं निम्न होती हैं जैसे अत्यधिक शर्मीलापन, डरावनापन, आक्रामक व्यवहार, ध्यान आकर्षित करना, अत्यन्त फुर्तीलापन, अत्यधिक निर्भरता, दिवास्वप्न देखना, पड़े रहना, धोखा देना और चोरी करना एवं शारीरिक विकलांग रूप से बालक के सामाजिक समायोजन में उत्पन्न कठिनाईयाँ उपहास के डर से सामान्य बच्चों के साथ खेल-कूद में सम्मिलित न होना, एकाकीपन आदि है। इन समस्याओं में से कई समस्याएं अध्यापक, माता-पिता द्वारा 'पुरस्कार' का प्रयोग करके, जैसे-प्रशंसा, खिलाना तथा खिलौने का प्रयोग करके समाधान की जा सकती है। माता-पिता एवं अध्यापकों को इस बात के लिए कि वे ऐसी समस्याओं वाले बालकों को इन पुरस्कारों को प्राप्त करने के लिए उपयुक्त व्यवहार में लगाने हेतु प्रोत्साहित करें प्रशिक्षित किया जा सकता है तथा विकलांग बच्चों के समस्याओं को उत्पन्न करने वाली सामाजिक स्थितियों को परिवर्तित करना तथा लोगों को विकलांग बच्चों के प्रति अपने व्यवहार में परिमार्जन तथा साथ ही साथ विचारों में परिवर्तन हेतु समझ उत्पन्न करनी चाहिए। प्रत्येक मनुष्य की कुछ मानवीय आवश्यकताएँ होती हैं। जो इस प्रकार हैं-

i. शारीरिक आवश्यकताएँ

ii. सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ

iii. प्यार और अपनत्व

iv. आत्म सम्मान की आकांक्षा

v. आत्मसिद्धी

अतः इस प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर विशिष्ट बालकों के समायोजन में किसी प्रकार की समस्या उत्पन्न नहीं होगी।

विशिष्ट किशोरों की समस्याएँ

किशोरावस्था की मुख्य पहचान है, प्रायः स्वतंत्रता के लिए पूर्ण प्रयास करना और वयस्क सत्ता से छुटकारा पाने के लिए बगावत करना। माता-पिता, अभिभावकों तथा विद्यालयीन अधिकारियों से खटपट, नशीले पदार्थों का सेवन, कर्तव्य पलायन, चोरी और लैंगिक दुराचार किशोरों की सामान्य समस्याएँ हैं। ऐसे अनिच्छुक किशोर अपनी समस्याओं के लिए दूसरों को दोष दे सकते हैं और उनमें अपने-अपने व्यवहार को परिवर्तित करने में अभिप्रेरणा की कमी पाई जाती है।

विशिष्ट बालकों की आवश्यकताएँ

सामान्यतः देखा जाये तो विद्यार्थियों की ऐसी कई शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक आवश्यकताएँ हैं जो उनकी वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक है। ये अवश्यकताएँ निम्नलिखित है-

शारीरिक आवश्यकता

- उचित भोजन व कपड़े
- दर्द व बीमारी से बचाव
- खेलने के लिए समय

मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं

- व्यक्ति के रूप में स्वीकरण
- संवेगात्मक संतुष्टि
- सतत् पुनः विश्वास
- स्नेह
- भावात्मक अनुक्रियाओं को नियंत्रित करने में सहायता करना।
- दूसरे व्यक्तियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाए इसे सीखने के लिये सहायता प्रदान करना।

शैक्षिक आवश्यकताएं

- ऐसी शिक्षा जो डर पर आधारित न हो।
- अध्ययन में सहायता।
- विद्यालय में समझपूर्ण और गरमजोशी भरा वातावरण

- उपलब्धि की भावना
- जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए शिक्षा
- कुछ न कुछ नया सीखने के लिए प्रोत्साहन ये सभी आवश्यकताएं परस्पर संबंधित है। ये सभी आवश्यकताएं एक-दूसरी को प्रभावित करती है और बढ़ रहे बालक पर अपना प्रभाव छोड़ती है।
- पिछड़े हुए एवं प्रतिभाशाली बालकों के उत्थान हेतु विशेष सुविधाओं एवं साधनों की आवश्यकता है।

प्रतिभाशाली बालकों को सामाजिक तथा वैयक्तिक आवश्यकताओं को ग्रहण करने के लिये अलग से सुविधाओं तथा साधनों की आवश्यकता होती है। अतः ऐसी सुविधायें प्रतिभाशाली बालकों को उनकी कार्य करने की क्षमता से अवगत कराती है, एवं शारीरिक रूप से बाधित बालकों में उनके दोषों को कम करने का प्रयास करती है।

विद्यालय में विशिष्ट कक्षायें बाधित बालकों के लिये आवश्यक है क्योंकि उनकी शिक्षा हेतु विशिष्ट विधियों तथा प्रविधियों की आवश्यकता होती है।

सामान्यतः विलक्षण बालक अन्य सामान्य बालकों की अपेक्षा अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। उनकी सोचने की क्षमता अधिक एवं तीव्र होती है। वे कार्य के प्रति सावधान होते हैं, इसलिये उनके शिक्षण में विशेष विधियों व प्रविधियों की आवश्यकता होती है।

प्रतिभाशाली बालकों का बुद्धि स्तर सामान्य बालकों की अपेक्षा ऊँचा होता है। इसलिये प्रतिभाशाली बालकों को सामान्य बालकों के साथ समायोजित करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

विशिष्ट बालकों का महत्व सामान्य कक्षा में आने वाली समस्याओं का समाधान खोजने द्वारा समझा जा सकता है। सामान्य कक्षा में अपंग तथा सामान्य अन्य विभिन्न श्रेणी के बालक होते हैं। वे शारीरिक रूप से बाधित और साधारण या प्रतिभाशाली बालकों के लिये अध्यापकों को ऐसी विधियां प्रयोग में लानी पड़ती हैं जिससे उपरोक्त विभिन्न बालकों को शिक्षा देते समय कक्षा में अध्यापक को

कुछ परेशानियों का सामना न करना पड़े। क्योंकि विद्यार्थियों को शिक्षक द्वारा प्रदान किए जाने वाला अनुदेशन समझने में समस्या आती है। कुछ विद्यार्थी अनुदेशन की सार्थकता के माप को कम समझते हैं ऐसी स्थिति में विशिष्ट कक्षाओं की आवश्यकता को गम्भीरता से समझा जाता है।

प्रयोगात्मक आँकड़े प्रकट करते हैं कि सामान्य शिक्षण संस्थाओं में प्रतिभाशाली बालकों के साथ सामाजिक कुप्रबन्ध उदण्डता के रूप में पाया जाता है। ऐसी परिस्थितियों में उनका व्यक्तिगत व्यवहार स्वीकार करने योग्य नहीं होता है क्योंकि वे स्वयं को उदण्डता के कार्यों में सम्मिलित कर लेते हैं।

लगभग 5 प्रतिशत शारीरिक रूप से बाधित बालक विशिष्ट शिक्षा केन्द्रों में शिक्षा ग्रहण करते हैं तथा उन्हें विभिन्न कार्य क्षेत्रों में शिक्षा प्रदान की जाती है। लेकिन अधिकांश ऐसी शिक्षण संस्थायें महानगरों या नगरों में स्थिति है। ऐसी शिक्षण संस्थाओं में ग्रामीण क्षेत्र के बालक शिक्षा ग्रहण करने नहीं जा पाते हैं। अतः इन क्षेत्रों में शिक्षा केन्द्रों के अति आवश्यकता है। इस प्रकार आप समझ गए होंगे कि विशिष्ट बालकों की क्या-क्या समस्याएं एवं क्या-क्या आवश्यकताएँ होती है। साथ ही साथ आप यह भी समझ गए होंगे कि इन बालकों की आवश्यकताओं एवं समस्याओं को क्यों और किस प्रकार ध्यान में रखना चाहिए।

विशेष आवश्यकता वाले बालकों की सहायता में शिक्षक की भूमिका

विशिष्ट शिक्षा एवं सामान्य शिक्षा के उद्देश्य समान होते हैं-जैसे बालकों को उपयुक्त शिक्षा द्वारा मानवीय संसाधनों का उत्थान, देश का विकास, समाज का पुर्नगठन नागरिक विकास, व्यवसायिक कार्यकुशलता आदि प्रदान करना इन उद्देश्यों के अलावा विशेष शिक्षक की और महत्वपूर्ण जिम्मेदारियाँ होती हैं। जैसे-

- शारीरिक दोष युक्त बालकों की विशेष आवश्यकताओं का पूर्ण पहचान एवं निर्धारण करना।
- शारीरिक दोष की स्थिति में उससे पहले बालक कितनी गम्भीर स्थिति को प्राप्त हो उनके रोकथाम के लिये पहले से ही उपाय करना। बालकों

NOTES

के सीखने की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए कार्य करने की नवीन विधियों द्वारा बालकों को शिक्षा प्रदान करना।

- शारीरिक रूप से बाधित बालकों की शिक्षण समस्याओं की जानकारी देना तथा सुधार के लिए सामूहिक संगठन तैयार करना।
- शिक्षा की राष्ट्रीय नीति (1986-92) में स्वयं एवं जीवन यापन के आव्यूहों का क्रमबद्धता से निर्धारण करना।
- शारीरिक बाधित बालकों के माता-पिताओं को निपुणता तथा कार्यकुशलताओं के बारे में समझाना एवं बालकों की उत्पन्न कमियों से संबंधित सुरक्षा तथा रोकथाम के उपाय करना।
- शारीरिक रूप से बाधित बालकों का पुर्नवास कराना।
- विशिष्ट बालकों के शैक्षिक चयन में अध्यापक के मार्गदर्शन का महत्वपूर्ण योगदान होता है। एक अध्यापक विशिष्ट बालक के अभिरूचि व अभिक्षमता के आधार पर उसके शैक्षिक क्षेत्र में विषय चयन में सहायता प्रदान करता है।
- विशिष्ट बालकों के व्यवसायिक चयन में शिक्षक के मार्गदर्शन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षक बालकों की रूचि के अनुसार तथा उपयोगी व्यवसायिक क्षेत्रों की जानकारी विशिष्ट बालकों को देते हैं। जिसकी सहायता से वो अपने लिये उपयोगी व्यवसाय को चयन करते हैं।

इस प्रकार आप समझ गए होंगे कि एक शिक्षक के रूप में विशेष आवश्यकता वाले बालकों की किस प्रकार मदद की जा सकती है।

प्रतिभाशाली तथा सृजनात्मक बालक का मार्गदर्शन

प्रतिभाशाली बच्चे वे होते हैं जिनकी मानसिक अवस्था वास्तविक अवस्था से ठीक होती है। साधारणा बच्चों की अपेक्षा ये बच्चे कम समय में किसी भी काम को सीखते हैं या करते हैं। प्रतिभाशाली बालक शारीरिक गठन, सामाजिक समायोजन, व्यक्तित्व के गुणों, विद्यालय उपलब्धि एवं खेलों की सूचनाओं और रूचियों की बहुरूपता में बालकों से श्रेष्ठ होते हैं किसी भी राष्ट्र की उन्नति इन प्रतिभावान बालकों पर ही निर्भर होती है। इसलिए प्रतिभावान बालक वे हैं जिनकी बुद्धि-लब्धि उच्च है अर्थात् 140 से अधि

क होती है। वे सभी कार्यों को शीघ्र ही पूरा करा लेते हैं। यह समाज के सभी कार्यों में रूचि भी लेते हैं। उनके कार्य समाज की भलाई के लिए होते हैं।

इसके साथ ही साथ कभी-कभी अध्यापक कक्षा में बालकों के सम्पर्क में आते हैं जो कार्य को नया रूप देकर नई विधि द्वारा पूरा करने की योग्यता रखते हैं। ऐसे बालकों के द्वारा आवश्यक रूप से प्रयोग गई विधियों का प्रारूप बालकों के मस्तिष्क की नई खोज होती है, जो अध्यापक जानता भी नहीं है। ऐसे बालक सृजनात्मक कार्य करने में अपनी बुद्धि का पूर्ण प्रयोग करते हैं तथा इनमें आत्मविश्वास अधिक होता है ऐसे बालकों के रचनात्मक कार्यों में स्कूल परिस्थितियों तथा सामान्य कार्यकलाप नियम आदि बाधा पहुँचाते हैं। ऐसे बालकों का व्यवहार कुछ अलग होता है। ऐसे बालक अपने कार्य में रूचि लेते हैं तथा साहसी होते हैं। ऐसे बालकों में आत्म-निर्भरता है। अध्यापकों को चाहिए कि इस प्रकार के बालकों के साथ अपने व्यवहार एवं कार्य प्रणाली में परिवर्तन करें तथा बालकों के रचनात्मक कार्यों को प्रोन्नत करने की दिशा में नये प्रयास करें। इस प्रकार हम सृजनात्मक बालकों को निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं। जो बालक किसी नई वस्तु को उत्पन्न करने, बनाने या अभिव्यक्त करने की योग्यता या क्षमता रखते हैं उन्हें सृजनात्मक या संरचनात्मक बालक कहते हैं।

प्रतिभाशाली बालक का मार्गदर्शन

प्रतिभाशाली बालक अपने आयु से अधिक बुद्धिमान होते हैं। अतः इस प्रकार के बालक के मार्गदर्शन हेतु माता-पिता एवं इनके शिक्षक को अत्यधिक ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है। प्रतिभाशाली बालक का बुद्धिस्तर सामान्य बालकों से ऊँचा होने के कारण समस्या का सामना करना पड़ता है। प्रतिभाशाली बालक सामान्य बालकों की अपेक्षा शीघ्र ही अपना कार्य समाप्त कर लेता है। अतः शिक्षक प्रतिभाशाली बालक के पाठ्यक्रम निर्माण में अहम् भूमिका अदा करते हैं एवं मार्गदर्शन कर उपर्युक्त पाठ्यक्रम का निर्माण करते हैं। विशिष्ट कक्षायें बालकों में अधिक सीमा तक शिक्षण मार्गदर्शक के रूप में अग्रसर होने का अवसर प्रदान करता है। प्रतिभावान बालकों की यदि विशेष प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध न होता तो उनकी बुद्धि-लब्धि में कमी आने का भय रहता है। प्रत्येक कक्षा एवं स्कूल में प्रतिभावान बालक होते हैं। लेकिन इनका चयन करना आसान कार्य नहीं है। अतः सर्वप्रथम शिक्षक को बुद्धि परीक्षण, पिछली कक्षाओं में सफलता, माता-पिता के विचार, रूचि परीक्षण तथा अन्य शिक्षकों के मतानुसार

NOTES

इन बालकों का चयन करना आवश्यक होता है। तत्पश्चात् इनका मार्गदर्शन करना चाहिए। प्रतिभावान बालकों के शैक्षिक पृष्ठभूमि को मजबूत बनाने हेतु शिक्षक एक मार्गदर्शक की भूमिका अदा करता है तथा स्कूल में अच्छे पुस्तकालय, वाचनालय एवं प्रयोगशाला की सुविधा उपलब्ध कराता है इससे समायोजन के लिए अच्छा एवं अनुकूल वातावरण मिल जाता है। इन बालकों को उत्तरदायित्व का कार्य सौंपा जाता है। जिससे इनमें नेतृत्व का गुण विकसित हो सके। प्रतिभाशाली बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए पाठ्यक्रम समृद्ध करने की सलाह शिक्षक देता है। क्योंकि ये बालक पाठ्यक्रम को समझने में बहुत कम समय लेते हैं, इसलिए बचा हुआ समय किसी और कार्य में व्यस्त करके उपयोग करने की कोशिश करते हैं। शिक्षक इन बालकों के लिए विशेष प्रकार की शिक्षण विधियों का प्रयोग करता है। जिसकी सहायता से इन बालकों की मौखिक योग्यता, मानसिक योग्यता, रचनात्मक एवं प्रयोगात्मक कार्यों पर अत्यधिक बल दिया जाता है। साथ ही साथ प्रतिभावान बालकों हेतु व्यक्तिगत शिक्षण विधि हेतु सुझाव दिया जाता है। शैक्षिक क्षेत्र में भाषण-प्रवचन आदि के प्रबन्ध में प्रतिभावान बालक अपनी योग्यताओं को सबने सामने व्यक्त करता है। जिससे उसके विकास में बढ़ोत्री होती है। शैक्षिक पृष्ठभूमि मजबूत होने के बाद इन बालकों के रूचि अनुसार शिक्षक व्यवसायिक क्षेत्र के चयन में इन बालकों की सहायता करता है। शिक्षक एक मार्गदर्शक के रूप में इन बालकों की उपलब्धि तथा वर्तमान समय की मांग के अनुसार व्यवसाय चयन करने के लिए प्रेरित करते हैं। जिससे कम समय में ये बालक अधिक उन्नति कर सकें।

सृजनात्मक बालक का मार्गदर्शन

जो बालक किसी नवीन स्थिति का निर्माण करने व जीवन में अभिनव व्यवहार करने की योग्यता रखते हैं उन्हें सामान्य बालकों से अलग सृजनात्मक व रचनात्मक बालक कहते हैं। ऐसे बालक सृजनात्मक कार्य करने में अपनी वृद्धि का भरपूर प्रयोग करते हैं एवं इनमें आत्मविश्वास अधि क होता है। शैक्षिक दृष्टि से सृजनात्मक बालकों की पहचान करना अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण होता है। अतः एक शिक्षक बालकों में सृजनात्मकता के उचित स्वं वांछित विकास हेतु मार्गदर्शक की भूमिका अदा करता है। बालकों के माता-पिता और अभिभावकों को कर्त्तव्य है कि वे उनके लिए उचित वातावरण की व्यवस्था करें जिससे सृजनात्मकता उचित रूप से विकसित हो सकें। बालकों में सृजनात्मकता के उचित विकास के लिये

आवश्यक है कि उनमें सदैव धनात्मक सामाजिक अभिवृत्तियां विकसित हो नहीं तो उनका साथियों, संरक्षकों एवं शिक्षकों से सम्बन्ध बिगड़ जाता है। बालकों को ज्ञान अर्जित करने के जितने अधिक अवसर प्राप्त होते हैं। उतना ही अधिक बालकों का सृजनात्मक विकास होने की सम्भावना रहती है। इन बालकों का विशेषज्ञों से प्रशिक्षण, सामाजिक सुगमता तथा सफलता के अनुभव सृजनात्मक के विकास में सहायक होते हैं। एक शिक्षक मार्गदर्शक के रूप में बालकों को जिज्ञासा व्यक्त करने का अवसर देता है एवं उनका उचित समाधान भी कर सकते हैं आप जान गए होंगे कि शिक्षक मार्गदर्शक के रूप में उपर्युक्त कारकों की सहायता से बालक को निरन्तर सृजनशील बनाए रखने उनके भविष्य को सभ्य सुसंस्कृत व निर्माणक बनाया जा सकता है। शिक्षक इन बालकों के मजबूत शैक्षिक पृष्ठभूमि के लिए सृजनात्मक शिक्षण, विभिन्न प्रकार के बालकों में प्रोत्साहित करने वाले पाठ्यक्रम पर आधारित शिक्षण प्रदान करने का कार्य करता है। बालकों में सृजनात्मकता एक स्वाभाविक गुण है। बालकों में सृजनात्मकता एक स्वाभाविक गुण है। यह करीब प्रत्येक बालक में पायी जाती है। क्योंकि विज्ञान और तकनीक से लेकर समाज के प्रत्येक कार्य क्षेत्र में सृजनात्मकता की आवश्यकता होती है। इससे रचनात्मक बालकों का वर्गीकरण किया गया है जो इस प्रकार है। वैज्ञानिक सृजनात्मकता, तकनीकी सृजनात्मकता, साहित्यिक सृजनात्मकता, सौन्दर्ययात्मक सृजनात्मकता, शैक्षिक सृजनात्मकता, संगीतिक सृजनात्मकता, कलात्मक सृजनात्मकता, औद्योगिक सृजनात्मकता इतने प्रकार की सृजनात्मकता बालकों में पायी जाती हैं जो वह अपने विचारों एवं कार्यों में प्रदर्शित करता है और इन्हीं आधारों पर उनकी रचनात्मकता देखी जा सकती है।

अतः शिक्षक, मार्गदर्शक के रूप में उपरोक्त उनके रूचि के अनुसार सृजनात्मकता के आधार पर बालक विशेष की अलग-अलग व्यवसायिक क्षेत्र चयन करने का सुझाव प्रस्तुत करता है। जिसकी सहायता से बालक कम सयम में अच्छी उन्नति कर सकता है।

आप समझ गये होंगे कि किस प्रकार एक शिक्षण सृजनात्मक बालक के शैक्षिक एवं व्यवसायिक क्षेत्र के चयन में मार्गदर्शक की भूमिका अदा करता है। आप प्रतिभाशाली एवं सृजनात्मक बालक के कैरियर मार्गदर्शक के महत्व से भली-भाँति परिचित हो गये होंगे।

NOTES

परीक्षापयोगी प्रश्न

- **दीर्घ उत्तरीय प्रश्न**

1. निर्देशन से आप क्या समझते हैं? शैक्षिक, व्यवसायिक तथा व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता स्पष्ट कीजिए।
2. निर्देशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उल्लेख कीजिए।
3. निर्देशन के उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।
4. निर्देशन के क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए।
5. परामर्श से आपका क्या तात्पर्य है? इसकी विध्यों एवं तकनीकियों का वर्णन कीजिए।
6. विद्यालय में परामर्श सेवा की सविस्तार व्याख्या कीजिए।
7. परामर्श के लक्ष्य एवं उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।
8. परामर्शदाता की दक्षताओं का वर्णन कीजिए।
9. परामर्शदाता की भूमिका तथा जिम्मेदारियों का उल्लेख कीजिए।
10. विशिष्ट बालकों की आवश्यकताओं का उल्लेख कीजिए।

- **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. निर्देशन से आपका क्या तात्पर्य है?
2. निर्देशन की प्रकृति को समझाइए।
3. निर्देशन के कार्यों का उल्लेख कीजिए।
4. निर्देशन के सिद्धान्त लिखिए।
5. परामर्श से आप क्या समझते हैं?
6. परामर्श में शोध से आप क्य समझते हैं?
7. परामर्श तथा मार्गदर्शन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
8. परामर्श के क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।
9. परामर्श तथा निर्देशन की मूल दशाओं को समझाइए।
10. परामर्शदाता के गुणों का उल्लेख कीजिए।
11. अच्छे परामर्शदाता के अनुभव को समझाइए।
12. परामर्शदाता के सूचना सम्बन्धी कार्यों को समझाइए।

NOTES

2 आत्म–प्रत्यय

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- आत्म–प्रत्यय।
- आत्म के अवयव।
- आत्म के प्रकार।
- भावनाएँ तथा परिवर्तनों की समझ।
- चेतना का अर्थ एवं परिभाषाएँ।
- परिवर्तन।
- परिवर्तन के प्रबन्ध।
- स्वयत्तता की आवश्यकता।
- व्यक्तित्व का अर्थ एवं परिभाषाएँ।
- व्यक्तित्व का सम्प्रयय।
- व्यक्तित्व का प्रकारानुसार वर्गीकरण।
- व्यक्तित्व का शीलगुण सिद्धान्त।
- व्यक्तित्व का अध्ययन के प्रमुख उपागम।
- आत्म सम्मान।
- बच्चे का आत्म–सम्मान बढ़ाने में शिक्षक की भूमिका।
- परीक्षापयोगी प्रश्न।

उद्देश्य–

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे–

- आत्म–प्रत्यय।
- आत्म के अवयव।
- आत्म के प्रकार।
- भावनाएँ तथा परिवर्तनों की समझ।
- चेतना का अर्थ एवं परिभाषाएँ।
- परिवर्तन।
- परिवर्तन के प्रबन्ध।
- स्वयत्तता की आवश्यकता।
- व्यक्तित्व का अर्थ एवं परिभाषाएँ।

NOTES

- व्यक्तित्व का सम्प्रयय।
- व्यक्तित्व का प्रकारानुसार वर्गीकरण।
- व्यक्तित्व का शीलगुण सिद्धान्त।
- व्यक्तित्व का अध्ययन के प्रमुख उपागम।
- आत्म सम्मान।
- बच्चे का आत्म-सम्मान बढ़ाने में शिक्षक की भूमिका।

प्राक्कथन

प्रायः आपने अपने आपको स्वयं के और दूसरों के व्यवहारों को जानने तथा उनका मूल्यांकन करने में प्रवृत्त पाया होगा। आपने निश्चित ही ध्यान दिया होगा कि कुछ विशेष स्थितियों में आप कैसे दूसरों से भिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया तथा व्यवहार करते हैं? दूसरों से अपने संबंधों को लेकर भी आपके समक्ष प्रश्न उपस्थित हुए होंगे। इनमें से कुछ प्रश्नों का उत्तर देने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने आत्म या स्व की अवधारणा का प्रयोग किया है। इसी प्रकार से जब हम ऐसे प्रश्न पूछते हैं कि क्यों लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं, कैसे वे घटनाओं का अलग-अलग अर्थ निकालते हैं एवं कैसे समान स्थितियों में वे भिन्न प्रकार से अनुभव करते और प्रतिक्रिया देते हैं। (ये प्रश्न व्यवहार वैभिन्य से संबंधित हैं), तब व्यक्तित्व की अवधारणा सक्रिय हो जाती है। आत्म व्यक्तित्व, ये दोनों ही घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं। वास्तव में आत्म व्यक्तित्व के मूल रूप में स्थित होता है।

आत्म एवं व्यक्तित्व का अध्ययन न केवल यह समझने में कि हम कौन हैं बल्कि हमारी अनन्यता और दूसरों से हमारी समानताओं को भी समझने में हमारी सहायता करता है। आत्म एवं व्यक्तित्व की समझ के द्वारा हम स्वयं के तथा दूसरों के व्यवहारों को भिन्न परिस्थितियों में समझ सकते हैं। अनेक विचारकों ने आत्म एवं व्यक्तित्व की संरचना एवं प्रकार्य का विश्लेषण किया है। फलस्वरूप आज हमें आत्म एवं व्यक्तित्व के भिन्न-भिन्न सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य उपलब्ध हैं। यह अध्याय आपको आत्म एवं व्यक्तित्व के कुछ आध ारभूत पक्षों से परिचित कराएगा साथ ही, आप आत्म तथा व्यक्तित्व के कुछ महत्वपूर्ण सैद्धांतिक उपागमों तथा व्यक्तित्व-मूल्यांकन की कुछ विधियों को भी सीख सकेंगे।

NOTES

आत्म-प्रत्यय (Self-concept)

आत्म-प्रत्यय वह सामान्य पद है, जिसका अर्थ है व्यक्ति के गुणों और व्यवहार आदि के सम्बन्ध में उसका मत। एक व्यक्ति अपने गुणों एवं व्यवहार आदि के सम्बन्ध में जो मत रखता है, वही उसका आत्म-प्रत्यय है। प्रत्येक व्यक्ति का आत्म-प्रत्यय उसके विचारों पर आधारित होता है तथा उस व्यक्ति के लिए यह आत्म-प्रत्यय अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। मनोविज्ञान में आत्म-प्रत्यय से सम्बन्धित शोध अध्ययन को सन् 1950 के आसपास से बहुत अधिक महत्व दिया जा रहा है। आत्म-प्रत्यय व्यक्तित्व का केन्द्र बिन्दु है। व्यक्तित्व की तुलना साइकिल के पहिए से करें तो कहा जा सकता है कि साइकिल के पहिए में लगा हुआ हब आत्म-प्रत्यय है एवं हब से जुड़ी हुई तीलियाँ व्यक्तित्व के विभिन्न लक्षण या शीलगुण (Traits) हैं। कैटले (1957) ने भी इस सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए लिखा है- "Self-concept is keystone of personality."

शैफर और शोबिन (1956) ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि- "The major function of traits is to integrated lesser habits, attitudes and skills into larger thoughts, feeling action patterns. The concept of self, in turn, integrates the psychological capacities of the person and initiates action in this role, the concept of self is the true core centre of gravity of the pattern."

आइजनेक और उनके साथियों (1972) ने आत्म-प्रत्यय को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "व्यक्ति के व्यवहार, योग्यताओं एवं गुणों के सम्बन्ध में उसकी अभिवृत्ति, निर्णयों तथा मूल्यों के योग, को ही आत्म-प्रत्यय कहते है।" ("Self-concept : The totality of attitudes, Judgments and values of an individual relating to his behaviour, objects and qualities.")

आत्म-प्रत्यय के अवयव (Components of Self-concept)

आत्म-प्रत्यय के निम्नलिखित प्रमुख अवयव हैं :

1. **प्रत्यक्षपरक अवयव (Perceptual Component)** – इस अवयव में उसके शरीर की प्रतिभा (Image) आती है तथा दूसरों पर क्या छाप छोड़ता है यह भी उसके प्रत्यक्षपरक अवयव के अन्तर्गत आता है। दूसरे

NOTES

शब्दों में में व्यक्ति शारीरिक रूप से कितना आकर्षक है। इस अवयव को शारीरिक आत्म-प्रत्यय (Physical Self-concept) भी कहा जा सकता है।

2. **प्रत्ययात्मक अवयव (Conceptual Component)** – इसके अन्तर्गत उसकी वह विशेषताएँ आती हैं, जिनके कारण वह दूसरों से भिन्न है। इसमें उसकी योग्यताएँ एवं अयोग्यताएँ भी आती है। इसके अन्तर्गत जीवन के समायोजन से सम्बन्धित विशेषताएँ भी आती है, जैसे ईमानदारी, आत्म-विश्वास, स्वतन्त्रता, साहस अथवा इन गुणों के विपरीत गुण। इस अवयव को मनोवैज्ञानिक आत्म-प्रत्यय (Psychological Self-Concept) भी कहा जाता है।

3. **अभिवृत्तिपरक अवयव (Attitudinal Self-concept)** – इसके अन्तर्गत व्यक्ति के स्वयं के प्रति भाव (Feeling) आते हैं तथा यह अभिवृत्तियाँ भी आती हैं जो इसके आत्म-सम्मान, आत्म-उपागम, गर्व आदि से सम्बन्धित होती हैं। इसके अन्तर्गत उसके विश्वास, धारणाएँ तथा विभिन्न प्रकार के मूल्य, आदर्श और आकांक्षाएँ भी आती हैं।

आत्म-प्रत्यय के प्रकार (Kinds of Self-concept)

आत्म-प्रत्यय मुख्यतः दो प्रकार का हो सकता है-(1) वास्तविक आत्म-प्रत्यय (Real)- वह कौन और क्या है से सम्बन्धित आत्म-प्रत्यय ही वास्तविक आत्म-प्रत्यय होता है। (2) आदर्श आत्म-प्रत्यय (Ideal Self-concept)- वह क्या बनना चाहेगा से सम्बन्धित आत्म-प्रत्यय ही आदर्श आत्म-प्रत्यय होता है। उपर्युक्त दोनों प्रकार का आत्म-प्रत्यय प्रायः दो-दो प्रकार का होता है।- (1) शारीरिक आत्म-प्रत्यय, (2) मनोवैज्ञानिक आत्म-प्रत्यय। इन दोनों प्रकार के आत्म-प्रत्यय का अर्थ ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है (कैटेल, 1957)।

कुछ अनुसन्धानकर्त्ताओं ने दो प्रकार के आत्म-प्रत्यय बताए हैं-

(1) गुणात्मक आत्म-प्रत्यय (Subjective Self-concept)- यह आत्म-प्रत्यय अस्थिर होता है यह "What I think of myself" कथन पर आधारित होता है। (2) वस्तुनिष्ठ आत्म-प्रत्यय (Objective Self-concept)- यह आत्म-प्रत्यय अपेक्षाकृत स्थिर होता है। यह "What others think of me" कथन पर आधारित होता है।

आत्म-प्रत्यय को प्रभावित करने वाले कारक

बालकों के आत्म-प्रत्यय का विकास अनेक कारकों से होता है। इन्हीं कारकों के प्रभावों के परिणामस्वरूप बालकों में आत्म-प्रत्यय का विकास होता है। कुछ महत्वपूर्ण कारक निम्नलिखित है-

(1) परिपक्वता (2) बौद्धिक योग्यताएँ, जैसे बुद्धि, तर्क, कल्पना, स्मृति एवं चिन्तन आदि, (3) सीखने के अवसर, (4) बालक के परिवार का आर्थिक-सामाजिक स्तर, (5) अनुभव, विशेष रूप से मूर्त अनुभव (6) लिंग, आयु बढ़ने` साथ-साथ यह कारक आत्म-प्रत्यय निर्माण को महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है, (7) सूचना प्रतिपूर्ति, (8) समायोजन, (9) सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक वातावरण आदि प्रमुख कारक हैं।

आत्म-प्रत्यय का विकास (Development of Self-concept)

आत्म-प्रत्यय (Self-concept)- जीवन के प्रथम वर्ष के अन्त तक वह अपने आपको एक अलग प्राणी के रूप में समझने लगता है। वह अपनी आवाज से पूर्व अपनी माँ की आवाज पहचानता है। इसी प्रकार से वह शीशे में अपनी शक्ल से दूसरों की शक्ल पहले पहचानना सीखता है। हरलॉक (1978) के अनुसार "Because baby is primarily egocentric; he forms concept about himself before he forms concepts about others." बच्चों के आत्म-प्रत्यय में दो प्रकार की प्रतिभाएँ होती हैं। पहली आत्म-प्रतिभाएँ शारीरिक आत्म-प्रतिभाएँ (Physical-Self Images) इन आत्म-प्रतिभाओं का विकास पहले होता है। इसका सम्बन्ध बालकों की शारीरिक बनावट तथा रंग-रूप से होता है। दूसरी आत्म-प्रतिभाएँ मनोवैज्ञानिक आत्म-प्रतिभाएँ होती हैं। इन आत्म-प्रतिभाओं में बालकों की भावनाएँ, विचार, संवेग, साहस, ईमानदारी, स्वतन्त्रता, आत्म-विश्वास, योग्यताएँ तथा आकांक्षाएँ आदि शामिल होती है। बालक की आयु जैसे-जैसे बढ़ती जाती है। वैसे-वैसे शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रतिभाएँ आपस में एक-दूसरे से सात्मीकृत हो जाती है या फ्यूज हो जाती है।

एल.के. फ्रैन्क और एम. एच. फ्रैन्क (L.K. Frank M.H. Frank, 1956) का विचार है कि "The child learns to think and feel about himself as defined by others. He develops an image of self as the chief actor in his 'private world' The image develops primarily from the way parents

NOTES

teachers, and other significant persons describe, punish, praise, or love him." बालक अपने चारों ओर के पर्यावरण में जैसे अपने आपको देखता है और जैसे उसके परिवार के लोग एवं परिचित उसे देखते हैं इसी आधार पर वह अपने आत्म-प्रत्यय का निर्माण करता है। यही कारण है आत्म-प्रत्यय को दर्पण प्रतिमा (Mirror Image) कहा गया है। हरलॉक (1978) का भी विचार है कि "The child's concept of himself as a person to a mirror image or what he believes significant people in his life think of him." कभी-कभी जब परिवार के लोग बालक को शैतान समझने लगते हैं। खेल के साथी भी इसी प्रकार का मत बना लेते हैं तो बालक अपना आत्म-प्रत्यय भी इसी प्रकार का बनाता है जिसमें वह अपने आपको एक शैतान बच्चे के रूप में देखता है। चूँकि बच्च कम अनुभवों वाला होता है, इसलिए दूसरे लागे उसके साथ कैसा व्यवहार करते हैं- इस बात को कभी-कभी वह Misinterpret कर जाता है।

एब बार आत्म-प्रत्यय बनने के बाद यद्यपि यह स्थिर होते हैं, लेकिन नए अनुभवों के बढ़ने के साथ-साथ इनमें भी संशोधन एवं परिवर्द्धन होता रहता है। आत्म-प्रत्ययों में क्रमबद्धता (Hierarchy) पाई जाती है। बालक में प्रारम्भिक अवस्था में जो आत्म-प्रतयय बनते हैं उन्हें प्राथमिक आत्म-प्रत्यय कहा जाता है, यह आत्म-प्रत्यय माता-पिता के शिक्षण के आधार पर अथवा परिवार के सदस्यों के शिक्षण के आधार पर बनते हैं। इन प्राथमिक आत्म-प्रत्यों में भी शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक; दोनों प्रकार की आत्म-प्रतिभाएँ पाई जाती हैं। जब बालक दूसरे बबच्चों के साथ खेलना प्रारम्भ करता है, स्कूल जाना प्रारम्भ करता है जब उसमें पहले से बने प्राथमिक प्रत्ययों का संशोधन एवं परिवर्द्धन होने लगता है। इस अवस्था के आत्म-प्रत्यय उद्दीपक आत्म-प्रत्यय कहे जाते हैं। इस प्रकार के आत्म-प्रत्यय बहुधा इस बात पर आधारित होते हैं कि दूसरे लोग बालक को किस प्रकार तथा किस दृष्टि से देखते हैं। बहुधा यह देखा गया है कि बालकों का प्राथमिक आत्म-प्रत्यय अधिक अनुकूल (Favourable) होता है तथा द्वितीयक आत्म-प्रत्यय उतना उनके अनुकूल नहीं होता है। अध्ययनों में देखा गया है कि समय-समय पर बालक अपने आत्म-प्रत्ययों में अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक समूहों के मूल्यों, नियमों और प्रतिमानों के अनुसार संशोधन करते रहते हैं।

लगभग तीन-चार वर्ष की अवस्था तक बालक सेक्स-सम्बन्धी अन्तर समझने ही नहीं लगता है, बल्कि वह बालों और कपड़ों के रखरखाव के आधार पर लड़के-लड़कियों, स्त्री-पुरुषों को भिन्न-भिन्न रूप में पहचानने भी लग जाता है। जब वह स्कूल जाना प्रारम्भ करता है, तो उसका यह अन्तर और अधिका स्पष्ट हो जाता है, लेकिन वय-सन्धि अवस्था में वह दो सेक्स के अन्तर को पूर्णतः पहचान जाता है। बालक जब स्कूल जाना प्रारम्भ करते हैं, उस समय तक मेल एवं फीमेल सेक्स के कार्यों को भी जानने लग जाता है। लगभग चार साल का बालक अपने जातीय और प्रजातीय अन्तरों को भी इसलिए पहचानने लग जाता है कि खेल के साथी और दूसरे लोग उससे उसकी जात और प्रजाति के अनुसार व्यवहार करने लग जाते हैं। जब वह स्कूल जाने लग जाता है तब वह अपने परिवार की प्रतिष्ठा और अपने परिवार के सामाजिक तथा आर्थिक स्तर का भी ज्ञान प्राप्त कर लेता है। स्कूल जाने तक वह यह समझने लगता है परिवार की और उसकी प्रतिष्ठा तथा सामाजिक-आर्थिक स्तर माता-पिता के व्यवसाय से निर्धारित होता है। वह इन सालों को अपने आत्म-प्रत्यय से जोड़ लेता है।

कुछ महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन

अनेक शोध अध्ययनों (सारबिन और रोजनबर्ग, 1955; अमातोरा, 1957, इन्गिल, 1959; स्मिथ एवं क्लीफन, 1962) से यह स्पष्ट हुआ है कि बालक एवं बालिकाओं के आत्म-प्रत्यय में सार्थक अन्तर होता है। लाइवली (1962) ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह स्पष्ट किया कि जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में आत्म-प्रत्यय अस्थिर होता है। आयु बढ़ने के साथ-साथ उसमें स्थिरता आती है। जिन लोगों का आत्म-प्रत्यय अस्थिर होता है उनका समायोजन अच्छा नहीं होता है। (बाच्रेल, 1957, क्रपरस्मिथ, 1959)। दीक्षित (1985) ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि किशोरों के आत्म-प्रत्यय को कुण्ठा तथा कुण्ठा के विभिन्न मोड्स अधिक प्रभावित करते हैं।

जरसील्ड (1971) का विचार है कि आत्म-प्रत्यय व्यक्ति के विचारों और अनुभवों से बनता हैं चूँकि विचार तथा अनुभव परिवर्तित होते रहते हैं, अतः आत्म-प्रत्यय भी परिवर्तित होता रहता है। वाइली (1961) ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि आत्म-प्रत्यय का सम्बन्ध

समायोजन से होता है। इस दिशा में हुए कुछ अध्ययनों (मेरिस, 1958ke, क्रपरस्मिथ, 1967; सियर्स, 1970) से यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि जिन व्यक्तियों में आत्म-स्वीकृति जितनी ही अधिक होती है, उनका समायोजन उतना ही अधिक होता है। कुछ अन्य अध्ययनों (मसैन और पोरर्टर, 1959, जिम्बार्डो और फारिमका, 1963; रिंग और साथी, 1965; हरटप और कोट्स, 1967; मैकडोनाल्ड, 1969 आदि) में यह प्रमाणित किया गया कि व्यक्ति के आत्म-प्रत्यय की शुद्धता (Accuracy) उसके जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के समायोजन को सार्थक ढंग से प्रभावित करती है। इसमें कुछ अध्ययनों से यह भी ज्ञात हुआ है कि आत्म-प्रत्यय की स्थिरता भी उसके समायोजन को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करती है। यह पाया गया है कि आत्म-प्रत्यय जितना ही अधिक स्थिर होता है विभिन्न क्षेत्रों का समायोजन उतना ही कठिन होता है (कैटल, 1967; कार्टराइट, 1963; हरलॉक, 1974)।

कुछ अध्ययनों (बेरी, 1974; टोनीबेथ; 1980; थॉमस, 1982) में यह सिद्ध किया गया है कि व्यक्ति जितना ही कम आक्रामक होता है, उसको आत्म-प्रत्यय उतना ही अधिक उच्च होता है। आकांक्षा स्तर तथा आत्म-प्रत्यय में भी महत्वपूर्ण सम्बन्ध होता है। मरगोरी (1979) के अनुसार आकांक्षास्तर और आत्म-प्रत्यय में ऋणात्मक सम्बन्ध होता है। यह देखा गया है कि जब व्यक्ति की उपलब्धि और उसके लक्ष्य में अन्तर अधिक होता है तब उसका आत्म-प्रत्यय ऋणात्मक रूप से प्रभावित होता है।

कमलेश रानी और डी. एन. श्रीास्तव (1992) को अपने अध्ययनों के आध ार पर निम्नलिखित महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त हुए –

(1) आन्तरिक लोकस आफ कन्ट्रोल जिन प्रयोज्यों का उच्च होता है, उनका आत्म-प्रत्यय भी उसी रूप में उच्च होता है। (2) इसी अध्ययन में यह भी देखा गया कि प्रयोज्यों के जीवन मूल्यों का भी आत्म-प्रत्यय अपेक्षाकृत अच्छा होता है। (3) तृतीय महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह प्राप्त हुआ कि जिन प्रयोज्यों का गृह समायोजन, स्वास्थ्य समायोजन, सामाजिक समायोजन, संवेगात्मक समायोजन तथा शैक्षिक समायोजन उच्च होता है उन प्रयोज्यों का आत्म-प्रत्यय भी अपेक्षाकृत अच्छा होता है। (4) स्वास्थ्य समायोजन या सामाजिक समायोजन या संवेगात्मक समायोजन और लोकस ऑफ कन्ट्रोल का आत्म-प्रत्यय

पर अन्तःक्रियात्मक प्रभाव पड़ता है। (5) धार्मिक मूल्य या सामाजिक मूल्य या आर्थिक मूल्य एवं संवेगात्मक समायोजन का आत्म-प्रत्यय पर अन्तःक्रियात्मक प्रभाव पड़ता हैं (6) संवेगात्मक समायोजन, लोकस ऑफ कन्ट्रोल और कुछ मूल्य, जैसे सामाजिक मूल्य, स्वास्थ्य मूल्य आदि एक-दूसरे पर आश्रित होकर प्रयोज्यों के आत्म-प्रत्यय को महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं।

आत्म के प्रकार

आत्म के विभिन्न प्रकार एवं रूप होते हैं। आत्म के इन विभिन्न रूपों का निर्माण भौतिक एवं समाज-सांस्कृतिक पर्यावरणों से होने वाली हमारी अंतःक्रियाओं के फलस्वरूप होता है। आत्म के मूलतत्व पर उस समय ध्यान आकृष्ट होता है जब एक नवजात शिशु भूखा होने पर दूध के लिए चीखता-चिल्लाता है। यद्यपि बालक की यह चीख प्रतिवर्त पर आधारित होती है तथापित यही प्रतिवर्त आगे चल कर इस जागरूकता के विकास के रूप में कि 'मैं भूखा हूँ' परिवर्तित हो जाता है। समाज-सांस्कृतिक वातावरण में यह जैविक आत्म स्वयं को रूपांतरित करता है। आप जबकि एक चॉकलेट के लिए भूख का अनुभव कर सकते हैं।

'व्यक्तिगत' आत्म एवं 'सामाजिक' आत्म के बीच भेद किया गया है। व्यक्तिगत आत्म (personal self) में एक ऐसा अभिविन्यास होता है जिसमें व्यक्ति प्रमुख रूप से अपने बारे में ही संबद्ध होने का अनुभव करता है। अभी हम लोगों ने देखा कि कैसे जैविक आवश्यकताएँ 'जैविक आत्म' को विकसित करती है। लेकिन शीघ्र ही बच्चे की उसके पर्यावरण में मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आवश्यकताएँ उसके व्यक्तिगत आत्म के अन्य अवयवों को उत्पन्न करने लगती हैं। किंतु इस विस्तार में जीवन के उन पक्षों पर ही जोर होता है जो संबंधित व्यक्ति से जुड़ी हुई होती हैं, जैसे- व्यक्तिगत स्वतंत्रता, व्यक्तिगत उत्तरदायित्व, व्यक्तिगत उपलब्धि, व्यक्तिगत सुख-सुविधाएँ इत्यादि। सामाजिक आत्म (social self) का प्रकटीकरण दूसरों के संबंध में होता है जिसमें सहयोग, एकता, संबंधन, त्याग, समर्थन अथवा भागीदारी जैसे जीवन के पक्षों पर बल दिया जाता है। इस प्रकार का आत्म परिवार तथा सामाजिक संबंधों को महत्व देता है। इसलिए इस आत्म को पारिवारिक (familial) अथवा संबंधात्मक आत्म भी कहा जाता है।

NOTES

आत्म के संज्ञानात्मक एवं व्यवहारात्मक पक्ष

विश्व के सभी भागों के मनोवैज्ञानिकों ने आत्म के अध्ययन में अभिरुचि प्रदर्शित की है। इन अध्ययनों द्वारा व्यवहार के कई ऐसे पक्ष सामने लाए गए हैं जिनका संबंध आत्म से होता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि हम सभी के अंदर यह जानने का बोध होता है कि हम कौन हैं और क्या हमको अन्य दूसरों से भिन्न बनाता है। हम अपनी व्यक्तिगत तथा सामाजिक अनन्यताओं से जुड़े रहते हैं और इस ज्ञान से कि ये अनन्यताएँ आजीवन स्थिर रहेंगी, हम सुरक्षित अनुभव करते हैं।

जिस प्रकार से हम अपने आपका प्रत्यक्षण करते हैं तथा अपनी क्षमताओं और गुणों के सम्बन्ध में जो विचार रखते हैं, उसी को आत्म-संप्रत्यय या आत्म-धारणा (self-concept) कहा जाता है। अति सामान्य स्तर पर अपने बारे में इस प्रकार की धारणा समग्र रूप से या तो सकारात्मक होती है या नकारात्मक। इससे अधिक विशिष्ट स्तर पर एक व्यक्ति अपने शैक्षिक प्रतिभा की अपेक्षा अपने खेलकूद की बहादुरी के प्रति सकारात्मक धारणा रख सकता है या अपने गणितीय कौशलों की अपेक्षा अपनी पठन-योग्यता के प्रति सकारात्मक आत्म-संप्रत्यय रख सकता है। किसी व्यक्ति के आत्म-संप्रत्यय के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना सरल नहीं होता है। इसके लिए सर्वाधिक उपयोग में लाई जाने वाली विधि के अंतर्गत व्यक्ति से उसके बारे में पूछा जाता है।

आत्म-सम्मान

आत्म-सम्मान हमारे आत्म का एक महत्वपूर्ण पक्ष होता है। व्यक्ति के रूप में हम सदैव अपने मूल्य या मान और अपनी योग्यता के बारे में निर्णय या आकलन करते रहते हैं। व्यक्ति का अपने सम्बनध में यह मूलय-निर्णय ही आत्म-सम्मान (self-esteem) कहा जाता है। कुछ लोगों में आत्म-सम्मान उच्च स्तर का जबकि कुछ अन्य लोगों में आत्म-सम्मान निम्न स्तर का पाया जाता है। किसी व्यक्ति के आत्म-सम्मान निम्न स्तर का पाया जाता है। किसी व्यक्ति के आत्म-सम्मान का मूल्यांकन करने के लिए उस व्यक्ति के समक्ष विविध प्रकार के कथन प्रस्तुत किए जाते हैं और उस व्यक्ति से पूछा जाता है कि किस सीमा तक वे कथन उसके संदर्भ में सही हैं, यह बताएँ। उदाहरण के लिए, किसी बालक/बालिका से यह पूछा जा सकता है, "मैं गृह

कार्य करने में अच्छा हूँ" अथवा "मुझे अक्सर विभिन्न खेलों में भाग लेने के लिए चुना जाता है" अथवा "मेरे सहपाठियों के माध्यम से मुझे बहुत पसंद किया जाता है" जैसे कथन उसके संदर्भ में किस सीमा तक सही हैं। यदि बालक/बालिका यह बताता/बताती है कि ये कथन उसके संदर्भ में सही हैं तो उसका आत्म-सम्मान उस दूसरे बालक/बालिका की अपेक्षा अधिक होगा जो यह बताता/बताती है कि ये कथन उसके सम्बन्ध में सही नहीं हैं।

अध्ययनों से यह जानकारी प्राप्त हुई है कि छः से सात वर्ष तक के बच्चों में आत्म-सम्मान चार क्षेत्रों में निर्मित हो जाता है- शैक्षिक क्षमता, सामाजिक क्षमता, शारीरिक/खेलकूद संबंधित क्षमता तथा शारीरिकरूप जो आयु के बढ़ने के साथ-साथ और अधिक परिष्कृत होता जाता है। अपनी स्थिर प्रवृत्तियों के रूप में अपने प्रति धारणा बनाने की क्षमता हमें भिन्न-भिन्न आत्म-मूल्यांकनों को जोड़कर अपने सम्बन्ध में एक सामान्य मनोवैज्ञानिक प्रतिमा निर्मित करने का अवसर देती है। इसी को हम आत्म-सम्मान की समग्र भावना के रूप में जानते हैं।

आत्म-सम्मान हमारे दैनिक जीवन के व्यवहारों से अपना घनिष्ठ संबंध प्रदर्शित करता है। उदाहरण के लिए जिन बच्चों में उच्च शैक्षिक आत्म-सम्मान होता है उनका निष्पादन विद्यालयों में निम्न आत्म-सम्मान रखने वाले बच्चों की अपेक्षा अधिक होता है और जिन बच्चों में उच्च सामाजिक आत्म-सम्मान होता है उनको निम्न सामाजिक आत्म-सम्मान रखने वाले बच्चों की अपेक्षा सहपाठियों द्वारा अधिक पसंद किया जाता है। दूसरी तरफ, जिन बच्चों में सभी क्षेत्रों में निम्न आत्म-सम्मान होता है उनमें दुश्चिंता, अवसाद तथा समाजविरोधी व्यवहार पाया जाता है। अध्ययनों द्वारा प्रदर्शित किया गया है कि जिन माता-पिता द्वारा स्नेह के साथ सकारात्मक ढंग से बच्चों का पालन-पोषण किया जाता है ऐसे बालकों में उच्च आत्म-सम्मान विकसित होता है क्योंकि ऐसा होने पर बच्चे अपने आपको सक्षम एवं योग्य व्यक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। जो माता-पिता बच्चों द्वारा सहायता न माँगने पर भी यदि उनके निर्णय स्वयं लेते हैं तो ऐसे बच्चों में निम्न आत्म-सम्मान पाया जाता है।

आत्म-सक्षमता

आत्म-सक्षमता (self-eeicacy) हमारे आत्म का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष है। लोग एक-दूसरे से इस बात में भी भिन्न होते हैं कि उनका विश्वास इसमें

है कि वे अपने जीवन के परिणामों को स्वयं नियंत्रित कर सकते हैं अथवा इसमें कि उनके जीवन के परिणाम भाग्य, नियति एवं अन्य स्थितिपरक कारकों द्वारा नियंत्रित होते हैं जैसे- परीक्षा में उत्तीर्ण होना। एक व्यक्ति यदि ऐसा विश्वास रखता है कि किसी स्थिति विशेष की माँगों के अनुसार उसमें योग्यता है या व्यवहार करने की क्षमता है तो उसमें उच्च आत्म-सक्षमता होती है।

आत्म-सक्षमता की अवधारणा बंदूरा (Bandura) के सामाजिक अधिगम सिद्धांत पर आधारित है। बंदूरा के आरंभिक अध्ययन इस बात को दर्शाते हैं कि बच्चे और वयस्क दूसरों का प्रेक्षण एवं अनुकरण कर व्यवहारों को सीखते हैं। लोगों की अपनी प्रवीणता तथा उपलब्धि की प्रत्याशाओं एवं स्वयं अपनी प्रभाविता के प्रति दृढ़ विश्वास से भी यह निर्धारित होता है कि वे किस तरह के व्यवहारों में प्रवृत्त होंगे और व्यवहार विशेष को संपादित करने में कितना जोखिम उठाएँगे। आत्म-सक्षमता की प्रबल भावना लोगों को अपने जीवन की परिस्थितियों का चयन करने, उनको प्रभावित करने तथा यहाँ तक कि उनका निर्माण करने को भी प्रेरित करती है। आत्म-सक्षमता की प्रबल भावना रखने वाले लोगों में भय का अनुभव भी कम होता है।

आत्म-सक्षमता को विकसित किया जा सकता है। देखा गया है कि उच्च आत्म-सक्षमता रखने वाले लोग धूम्रपान न करने का निर्णय लेने के बाद त्काल इस पर अमल कर लेते हैं। बच्चों के आरंभिक वर्षों में सकारात्मक प्रतिरूपों या मॉडलों को प्रस्तुत कर हमारा समाज, हमारे माता-पिता एवं हमारे अपने सकारात्मक अनुभव आत्म-सक्षमता की प्रबल भावना के विकास में सहायक हो सकते हैं।

आत्म-नियमन

आत्म-नियमन (self-regulation) का तात्पर्य हमारे अपने व्यवहार को संगठित तथा परिवीक्षण या मॉनीटर करने की योग्यता से है। जिन लोगों में बाह्य पर्यावरण की माँगों के अनुसार अपने व्यवहार को परिवर्तित करने की क्षमता होती है, वे आत्म-परिवीक्षण में उच्च होते हैं।

जीवन की कई स्थितियों में स्थितिपरक दबावों के प्रति प्रतिरोध और स्वयं पर नियंत्रण की आवश्यकता होती है। यह संभव होता है उस चीज के द्वारा जिसे

हम सामान्यतया 'संकल्प शक्ति' के रूप में जानते हैं। मनुष्य रूप में हम जिस प्रकार भी चाहें अपने व्यवहार को नियंत्रित कर सकते हैं। हम प्रायः अपनी कुछ आवश्यकताओं की संतुष्टि को विलंबित अथवा आस्थगित कर देते हैं। आवश्यकताओं के परितोषण को विलंबित तथा आस्थागित करने के व्यवहार को सीखना ही आत्म-नियंत्रण कहा जाता है। दीर्घावधि लक्ष्यों की संप्राप्ति में आत्म-नियंत्रण एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय सांस्कृतिक परंपराएँ हमें कुछ ऐसे प्रभावी उपाय देती हैं जिनसे आत्म-नियंत्रण का विकास होता है (उदाहरणार्थ, व्रत अथवा रोज़ा में उपवास करना और सांसारिक वस्तुओं के प्रति अनासक्ति का भाव रखना)।

आत्म-नियंत्रण के लिए अनेक मनोवैज्ञानिक तकनीकें सुझाई गई हैं। अपने व्यवहार का प्रेक्षण (observation of own behaviour) एक तकनीक है जिसके द्वारा आत्म के विभिन्न पक्षों को परिवर्तित, परिमार्जित तथा सशक्त करने के लिए आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। आत्म-अनुदेश (self-instruction) एक अन्य महत्वपूर्ण तकनीक है। हम प्रायः अपने आपको कुछ करने एवं मनोवांछित तरीके से व्यवहार करने के लिए अनुदेश देते हैं। ऐसे अनुदेश आत्म-नियमन में प्रभावी होते हैं। आत्म-प्रबलन एक तीसरी तकनीक है। इसके अंतर्गत ऐसे व्यवहार पुरस्कृत होते हैं जिनके परिणाम सुखद होते हैं। यदि आपने अपनी परीक्षा में अच्छा निष्पादन किया है तो आप अपने मित्रों के साथ फिल्म देखने जा सकते हैं। ये तकनीकें लोगों द्वारा प्रयोग में लाई जाती हैं और आत्म-नियमन तथा आत्म-नियंत्रण के संदर्भ में अत्यंत प्रभावी पाई गई हैं।

संस्कृति एवं आत्म

आत्म के अनेक पक्ष संस्कृति के उन विशिष्ट रूपों से जुड़े हुए प्रतीत होते हैं जिनमें एक व्यक्ति अपना जीवनयापन करता है। भारतीय सांस्कृतिक संदर्भ में आत्म का विश्लेषण अनेक महत्वपूर्ण पक्षों को स्पष्ट करता है जो पाश्चात्य सांस्कृतिक संदर्भ में पाए जाने वाले पक्षों से अलग होते हैं।

भारतीय तथा पाश्चात्य अवधारणाओं के मध्य एक महत्वपूर्ण अंत इस तथ्य को लेकर है कि आत्म और दूसरे अन्य के बीच किस प्रकार से सीमा रेखा निर्धारित की गई है। पाश्चात्य अवधारणा में यह सीमा रेखा अपेक्षाकृत स्थिर एवं दृढ़ प्रतीत होती है। दूसरी तरफ, भारतीय अवधारणा में आत्म और अन्य

NOTES

के मध्य सीमा रेखा स्थिर न होकर परिवर्तनीय प्रकृति की बताई गई है। इस प्रकार एक क्षण में व्यक्ति का आत्म अन्य सब कुछ को अपने में अंतर्निहित करता हुआ समूचे ब्रह्मांड में विलीन होता हुआ प्रतीत होता है। लेकिन दूसरे क्षण में आत्म अन्य सबसे पूर्णतया विनिवर्तित होकर व्यक्तिगत आत्म (उदाहरणार्थ, हमारी व्यक्तिगत आवश्यकताएँ एवं लक्ष्य) पर केंद्रित होता हुआ प्रतीत होता है। पाश्चात्य अवधारणा आत्म एवं अन्य मनुष्य और प्रकृति तथा आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ के मध्य स्पष्ट द्विभाजन करती हुई प्रतीत होती है। भारतीय अवधारणा इस प्रकार का कोई स्पष्ट द्विभाजन नहीं करती है।

पाश्चात्य संस्कृति में आत्म तथा समूह को स्पष्ट रूप से परिभाषित सीमा रेखाओं के साथ दो भिन्न इकाइयों के रूप में स्वीकार किया गया है। व्यक्ति समूह का सदस्य होते हुए भी अपनी वैयक्तिकता बनाए रखता है। भारतीय संस्कृति में आत्म को व्यक्ति के अपने समूह से पृथक नहीं किया जाता है; बल्कि दोनों सामंजस्यपूर्ण सह–अस्तित्व के साथ बने रहते हैं। दूसरी तरफ, पाश्चात्य संस्कृति में दोनों के बीच एक दूरी बनी रहती है। यही कारण है कि अनेक पाश्चात्य संस्कृतियों का व्यक्तिवादी और अनेक एशियाई संस्कृतियों का सामूहिकतावादी संस्कृति के रूप में विशेषीकरण किया जाता है।

भावनायें/अनुभूतियाँ/चेतना तथा परिवर्तन की समझ

भावनायें/अनुभूतियाँ (Affects/Feelings)

भावनाओं तथा अनुभूतियों के स्तर पर हस्तक्षेप करने के लिए परामर्शदाता परानुभूति के विविध स्तरों का संप्रेषण करने, भावनात्मक अभिव्यक्ति के लिए क्लायंट को अवसर देने और रिक्त–कुसी कार्य (empty-chair work) जैसी तकनीकों का प्रयोग करता है।

1. **परानुभूति के स्तर की अभिव्यक्ति एवं संप्रेषण (Expressing and communicating levels of empathy)** – परामर्शदाता की गतिविधियाँ परामर्शी के सम्बन्ध में प्रत्यक्षण, संज्ञान और भावानुभूति का विकास ओर संप्रेषण करने जैसी होती है। परानुभूति के स्तरों का अर्थ परामर्शी के सम्बन्ध में बोध की प्राप्ति की गहनता ओर उसके संप्रेषण से है (Carkhuff, 1969; Egan, 1998; Gordon jinks, 2000)। परानुभूति के स्तरों को जिंक्स तीन रूपों में बाँटते हैं –

(i) सरल परानुभूति प्रतिक्रियाएँ (अनुभूतियों का प्रत्यावर्तन, वार्ता का सार-संक्षेपण आदि)

(ii) उच्च परानुभूति प्रतिक्रियाएँ (क्लायंट के अनुभवों के उन पक्षों के संदर्भ में संचार करना जिसके विषय में वह अनभिज्ञ था, यथा-वार्ता के समय प्रयुक्त रूपकों/बिम्बों का उल्लेख, उसके चेहरे पर तनाव, परामर्शदाता की क्लायंट के सम्बन्ध में गहन अनुभूति का वर्णन)

(iii) सांस्कृतिक परानुभूति (क्लायंट और उसकी संस्कृति के मध्य की अंतर्क्रिया के बारे में समझ विकसित करना और क्लायंट को परामर्शदाता और उसकी संस्कृति के विषय में ऐसी ही समझ/परानुभूति विकसित करने के लिए प्रेरित करना)। उक्त तीन स्तरों पर परानुभूति का विकास तथा संप्रेषण परामर्शन सम्बन्ध को मजबूत करता है और भावनानुभूति के क्षेत्र में हस्तक्षेप की क्रिया को संभव एवं सहज रूप प्रदान करते हुए परामर्शी की मदद करता है।

2. **भावनात्मक अभिव्यक्ति (Catharsis)** – परामर्शी के द्वारा भावानुभूतियों की अभिव्यक्ति समायोजनात्मक एवं संवेगात्मक समस्याओं के क्षेत्र में परामर्शन कार्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। भावनाओं को अभिव्यक्त करने का अर्थ होता है कि क्लायंट उन अनुभूतियों को जो कि दुःखद हैं, जिनका सम्बन्ध विगत अनुभवों से है, जिनके खिलाफ क्लायंट ने मनोरचनाएँ प्रयुक्त की हुई हैं (और वह ऐसी भावनानुभूतियों का सामना नहीं करना चाहता है) के साथ पुनः सम्पर्क स्थापित करे तथा उन्हें अभिव्यक्त करें। जिंक्स के अनुसार परामर्शदाता विरेचन कार्य (cathartic work) दो रूपों में करा सकता है। पहला अत्यल्प संरचित उपागम और दूसरा संरचित उपागम।

अत्यल्प संरचित उपागम में परामर्शदाता सावधानीपूर्वक सरल/मौलिक परानुभूति तथा उच्च परानुभूति पर शुद्धतापूर्वक ध्यान केन्द्रित करता है एवं यह क्रिया स्वाभाविक रूप में क्लायंट का उसके संवेगों साथ घनिष्ठ सम्पर्क की दिशा में उत्प्रेरित करती है। विरेचन कार्य में परानुभूति सम्बन्धी व्यवहार उस समय अधिक प्रभावोत्पादक होता है जबकि क्लायंट के वर्तमान अनुभवों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए वह अपने

विगम मनोघातों एवं दुखद स्मृतियों के क्षेत्र में भी प्रवेश कर जाये। ऐसी स्थिति में परामर्शदाता उसके अनुभवों (जैसे कि वह अपने विगत जीवन का पुनर्अनुभव कर रहा है) पर परानुभूतिपूर्ण अनुक्रिया करता है। परामर्शदाता द्वारा बातचीत के साथ-साथ उपयुक्त चुप्पी का उपयोग परामर्शी को भावनात्मक अनुभूति का अवसर देता है। परामर्शी को सुरक्षित वातारण की अनुभूति होनी चाहिए जिसमें वह सहजतापूर्वक भावानुतियों को प्रवाहित कर सके। यह भी आवश्यक होता है कि इस कार्य के लिए निर्धारित सत्र लचीला हो, समय लगभग 90 मिनट दिया जाये। विरेचन कार्य के अन्त में परामर्शी को सत्र से बाहर जाने के लिए मानसिक तैयारी के लिए थोड़ा समय दिया जाता है और उसे सत्र की संज्ञानात्मक समीक्षा का अवसर- क्या हुआ है, क्लायंट ने क्या अन्वेषण किया है या सत्र में क्या सीखा है जानने के लिए अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

अधिक संरचित विरेचन कार्य में किसी एक विशेष मनोआघात का वर्णन करने के कार्य पर इस रूप में केन्द्रित किया जाता है जैसे कि घटनाएँ अभी घटितहो रही हैं (Heron, 1990; Mahrer, 1996)। परामर्शदाता विवरण के भावनात्मक पक्ष पर ध्यान केन्द्रित करता है। परामर्शी की चुप्पी, खालीपन, टिप्पणी, स्लिप ऑफ टंग, वार्ता में रुकावट तथा अन्य अवाचिक सूचनाओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है एवं परामर्शी को इनकी व्याख्या करने के लिए कहा जाता है जिसके फलस्वरूप वह अपनी अनुभूतियों का और गहराई के साथ अन्वेषण करता है।

3. रिक्त स्थान कार्य (Empty chair work) – इस तकनीक का उपयोग ऐसे क्लायंट के लिए किया जाता है जो अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए संघर्ष कर रहे होते हैं। क्लायंट को दो पक्षों (स्वयं एवं अन्य कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति; या 'आश्वस्त-आत्म एवं असुरक्षित-आत्म'; या, 'वर्तमान स्व तथा विगत/भविष्यकालिक स्व') के बीच की वार्ता में दोनों पक्षों की भूमिका निभाने (act out) के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। जिंक्स (2000) इस नाटक की द्विपक्षीय भूमिका निभाने के लिए दो या अधिक कुर्सियों पर बारी-बारी से बैठते हुए यह कार्य करना अधिक लाभकारी बताते हैं। क्लायंट यह कार्य जब कभी जिस किसी बिंदु पर बंद करना चाहता है तब उसे

अनुमति प्रदान की जाती है और प्रतिरोध/अनिच्छा के प्रति परानुभूतिपूर्ण अभिव्यक्ति करते हुए अन्वेषण कार्य सम्पन्न किया जाता है। इस प्रकार रिक्त स्थान कार्य विधि परामर्शी के बोध के स्तर को उठाने तथा जीवन की अनुभूतियों, सम्बन्धों, द्वन्दों को परामर्श कक्ष में लाने में उपयोगी सिद्ध होती है।

चेतना : अर्थ एवं परिभाषा

चेतना सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त है लेकिन उसका स्तर सभी जगह समान नहीं है। इनमें मानव चेतना का स्तर महत्त्वपूर्ण है। मानव चेतना, जड़ता तथा अपूर्ण चेतना से अति अथवा पूर्ण चेतना की दिशा में गतिशील है। मनुष्य बहुत्तर चेतना की ओर अग्रसर है जिस में वह अन्धकार से अलोक, भेद से अभेद, वामन से विशाल एवं स्पुट से समग्र चेतना का शोधकर्ता प्रतीत होता है। मानव चेतना अन्य प्राणियों से नितांत भिन्न तथा उत्कृष्ट है। पशु-जगत इन्द्रियजन्य चेतना तक सीमित होता है लेकिन मानव-चेतना संकल्प एवं सक्रियता से प्रेरित और प्रयत्नशील है। मनुष्य चेतन अपने परिवेश में विचार तथा आचार द्वारा सामंजस्य और समन्वय की स्थापना कर समग्रता की दिशा में अग्रसर रहती है।

दार्शनिकों ने देखा कि मनुष्य सोच सकता है, याद रख सकता है। ज्ञान का प्रयोग कर सकता है और विवेकी रहता है। ऐसे चेतन होने के कारण ही मनुष्य प्रपंच की अन्य वस्तुओं से अलग बन जाता है। चेतना मनुष्य की एक ऐसी क्रिया शक्ति है जिसके होने से ही वह अपने दैनिक जीवन में कुछ कर सकता हैं इसके सारे क्रिया कलापों के मूल में चेतना आवश्यक होती है। दार्शनिकों, वैज्ञानिकों तथा समाजशास्त्रियों ने चेतना शब्द का प्रयोग विभिन्न संदर्भों में किया है।

'चेतना' शब्द की व्युत्पत्ति

'चित्त' धासू से 'ल्यूट (अन्)' प्रत्यय के योग से चेतना शब्द की उत्पत्ति हुई है। 'चित्त' का सामान्य अर्थ है मन। अतः चेतना का शब्दिक अर्थ है कि चित का विशेष भाव या चित की विशेष अनुभूति। 'बृहद हिंदी कोश' में 'चेतना' का अर्थ "चैतन्य, ज्ञान, होश, याद, बुद्धि, चेत, विवेक से कम लेना, सोचना, विचारना।"

आदि दिए गए हैं। अंग्रेजी भाषा में मनोविज्ञान के अर्थ में "चेतना" शब्द का पर्यायी अंग्रेजी शब्द 'conscious' है, जिसका अर्थ जागृत है। मानव का प्रमुख

गुण जागरुकता है, इसे आधुनिक विद्वानों ने कहा है जिससे बाह्य व्यवहारों का ज्ञान होता है। श्रीधर स्वामी ने "ज्ञानात्मिका मनोवृत्ति" को चेतना कहा है।

शब्दार्थ चिन्तामणि में भगवान की ज्ञान नामक विभूति तथा उस चित्तवृत्ति या मनोवृत्ति को चेतना कहा है जो स्वरूप ज्ञान को व्यंजित करती है एवं प्रमाण का प्रमुख साधन है। वाचस्पति श्री ताशनाथ ने बुद्धि एवं ज्ञान के अर्थ में 'चेतना' शब्द को ग्रहण किया है। अमरकोश में भी चेतना को बुद्धि के अर्थ में ग्रहण किया गया है। संस्कृत, शब्दाथै कौस्तुभ के अनुसार संस्कृत में 'चेतना' शब्द संज्ञा, बोध, समझ, बुद्धि, विवेक आदि अर्थों में प्रयोग होता है।

डॉ. जोसेफ के मतानुसार –

"चेतना – कान्शसनेस अन्डर स्टैंडिंग, सेन्स इंटिलिजेन्स

चेतना – बुद्धिमता, विचार –विमर्श

चेतना – प्राण सजीवता

चेतना – समझ"

चेतना संबंधी अन्य उल्लेखनीय कुछ विचार भी देखने को मिलते है। जैसे कि मंजूर सैय्यद लिखते है "दर्शन में चेतना एक मानसिक, बौद्धिक उच्च शक्ति है। जिसके द्वारा विशुद्ध मानव वृत्तियों तथा गुणों का ज्ञान होता है। सामाजिक संबंधों, सामाजिक व्यवहारों के द्वारा यह ज्ञान प्राप्त करना सामाजिक चेतन का उद्घाटन है। मानव ... चेतना अपने इर्द–गिर्द के विभिन्न वातावरण से संबंधित घटनाओं को घटनाओं से संबंधित स्मृतियों का अनुभूत बुलबुले के समान कह सकते है जो कुछ क्षणमात्र के लिए निर्माण होता है तथा तुरंत ही लुप्त हो जाता है। उसी प्रकार मानव चेतना में विचारों का चक्र स्थिर नहीं होने से तुरंत परिवेश से संबंधित अनुभूतियाँ, स्मृतियाँ परिवर्तित अथवा लुप्त हो जाती है। चेतना की गति अनंत है, इस गति को विभक्त नहीं किया जा सकता, केवल उसे व्यक्ति के अंतर्मन की गतिविधियों द्वारा जाना जा सकता है।

चेतना मनुष्य के विवेक बुद्धि के रूप में, सहज बुद्धि के रूप में विकसित हुई है। मनुष्य को सुख – दुख, इच्छा, राग, द्वेष आदि से संबंधित अनुभूति चेतना के प्रवाह के द्वारा होती है। चेतना के सम्बन्ध में हम केवल यह

अनुभूत करते है, बिना किसी हिचकिचाहट के दूसरों को बता नहीं सकते। कुछ विद्वान चेतना को मस्तिष्क का गुण मानते है। जिसमें हम अन्य पदार्थों का उनकी उन्नति, अवनति का ज्ञान प्राप्त करते है। इस प्रकार चेतना का सीधा एवं स्पष्ट संबंध पदाथ से होता है।

चेतना के कारण ही मनुष्य किसी क्रिया विशेष को तथा विचारों को व्यक्त करता है तथा उसी से मनुष्य की पहचान होती है। किसी विषय वस्तु या घटना को स्वीकारना या नकारना चेतना पर ही निर्भर करता है। व्यक्ति का मन ही चेतना का उद्‌गम स्थल है और मानव में ही चेतना की मात्रा सर्वाधि क होती है, क्योंकि वह सबसे अधिक विकसित प्राणी है। चेतना वह शक्ति है जो स्वयं को और अपने आस-पास के वातावरण को समझने तथा उनकी बातों का मूल्यांकन करने की क्षमता प्रदान करती है। चेतना व्यक्ति का विशिष्ट गुण है, इसलिए चेतना को व्यक्ति सापेक्ष माना जाता है।

कार्लमार्क्स ने चेतना के सम्बन्ध में कहा है- "चेतना आरंभ से ही एक सामाजिक उपज है और वह तब तक ऐसी बन रहती है, जब तक मनुष्यों का अस्तित्व बना रहता है। निस्संदेह, चेतना प्रथमतः तत्कालीन इन्द्रिय ग्राह्य वातावरण से सरोकार रखने वाली चेतना मात्र है और अन्य व्यक्तियों तथा आत्म-चेतना विकसित करने वाले व्यक्तियों के बहिर्गत वस्तुओं के साथ सीमित संबंध की चेतना है। साथ ही यह प्रकृति की चेतना है, जो आरंभ में मनुष्यों के सामने ही सर्वथा विजातीय सर्वशक्तिशाली अविजेय शक्ति के रूप में प्रकट होती है।"

चेतना प्राणीमात्रा में रहने वाला वह तत्व है जो उन्हें निर्जीव जड पदार्थों से भिन्न करता है तथा उन्हें चैत्य संपन्न बनाकर जीवधारा सिद्ध करती है। हमारी चेतना में निरंतरता सदैव बनी रहती है, जिस कारण हम वस्तुओं, परिसिीतियों, व्यक्तियों तथा घटनाओं आदि की पहचान कर सकते हैं। चेतना कोई स्थिर इकाई नहीं है। यह अपने मूल तत्वों ज्ञान, भाव, चेष्टा के अनुसार संवेदना, अनुभूति के स्तर पर परिवर्तनशील है। चेतना सामाजिक वातावरण के संपर्क में विकसित होती है। वातावरण के प्रभाव से व्यक्ति नैतिकता तथा उचित वातावरण प्राप्त करता है। चेतना एवं मनुष्य के सामाजिक चरित्र में मौलिक संबंध है। क्योंकि मनुष्य चेतना में उत्पन्न प्रेरणा के कारण ही कोई भी कार्य करता है। चेतना वह विशेष गुण है, तो मनुष्य को जीवित रखती है।

किसी मनुष्य की चेतना उसकी व्यक्तिगत संपत्ति न होकर सामाजिक उपक्रम का प्रतिफल होती है। चेतना एक चिन्तनात्मक अभिवृत्ति का द्योतक है, जो व्यक्ति को स्वयं के, प्रति विभिन्न कोटि की स्पष्टता एवं जटिलता वाले पर्यावरण के प्रति जागरुक बनाती है। चेतना की जागृति सामूहिक प्रक्रिया नहीं है बल्कि समूह के एक हिस्से में उसका उद्‌गम पहले संभव होता है। जीवों के मस्तिष्क की गति या क्रिया ही उनकी चेतना है। जब जीव प्रयोजन से गति या क्रिया करने लगता है तो उसे हम चेतना कह देते है। इसके सम्बन्ध में राहुल जी का कथन महत्वपूर्ण है कि – "वर्तमान क्षण की संज्ञात क्रियाओं का नाम चेतना है। यह एक गतिशील वस्तु है, व्यक्ति सापेक्ष्य स्वतंत्र एवं सूक्ष्म। इसे किसी प्रकार से चश्मे से भी नहीं देखा जा सकता। अनुभवी विचारकों एवं आध्यात्मिक मनीषियों ने क्रिया संवेदना के कारण ही आधारभूत शक्ति को चेतना के नाम से पुकारा है। इसी क्रिया शक्ति को संस्कृत के आचार्यों तथा मनीषियों ने बुद्धि, ज्ञान, जीवनी शक्ति, भावना या विचार के अर्थ में स्वीकार किया है।" चेतना संबंधी अन्य उल्लेखनीय कुछ विचार भी देखने को मिलते है। इनमें मिल्टन, लोर्के तथा रीड के मत विशिष्ट महत्त्व रखते है। मिल्टन 'चेतना को चिन्तनशील प्राणी द्वारा अपने कार्यों और प्रवृत्तियों की स्वीकृति मानते है। लोर्के ने "मनुष्य के अपने मन में जो कुछ घटित होता है, उसके प्रत्यक्ष ज्ञान को चेतना कहा है।" रीड के अनुसा – "चेतना दार्शनिकों द्वारा प्रयुक्त शब्द है जो व्यक्ति के वर्तमान विचारों, उद्देश्यों एवं सामान्यतः मन की समस्त वर्तमान क्रियाओं से संबंध तत्कालीन ज्ञान का सूचक है।" चेतना के संबंध में कहा जा सकता है कि चेतना का संबंध अनुभूति के स्तर पर मस्तिष्क से है। सदैव परिवर्तनशीलता, गतिमयता उसका गुण है। कभी-कभी मनुष्य अपनी कृति को यथावसर चेतना का विषय बना होता है। चेतना के माध्यम से ही मनुष्य स्वयं का अन्वेषण करते हुए प्रश्न उठाता है कि सो अहम! इस रूप में चेतना ज्ञानात्मक जागृति बनती है।

ज्ञानात्मक जागृति का संबंध समाज के सामाजिक पक्ष से भी है। संक्षेप में चेतना के संबंध में कहा जा सकता है –

1. 'चेतना' की व्युत्पत्ति 'चित' धातू से है।

2. चेतना की निश्चित परिभाषा करना संभव नहीं है। लेकिन चेतना के स्वरूप पर प्रकाश डाला जा सकता है।

3. चेतना को बाह्य-प्रतिक्रियाओं के द्वारा कुछ मात्रा में ज्ञात किया जा सकता है।

4. निरंतर परिवर्तनशील, प्रवाहमयता आदि चेतना के गुण है।

5. मानव-चेतना प्राणीमात्र की चेतना से अलग है।

6. चेतना का संबंध मानव के अनुभूति तथा अभिव्यक्ति पक्ष से भी होता है।

7. समाज की अपनी एक सामाजिक चेतना होती है।

8. चेतना, ब्रह्मशक्ति, प्राणशक्ति, विश्व की स्पंदन शक्ति है।

9. चेतना सामाजिक जीवन के मर्म की खोज है।

10. चेतना से मनुष्य तथा समाज का असली अंतरंग उद्घाटित होता है।

अंत में संक्षेप में हम कह सकते हैं कि चेतना मनव में एक ऐसी क्रिया - शक्ति है जिनके बिना मनुष्य कोई कार्य नहीं कर सकता। चेतना के माध्यम से ही मनुष्य को प्रत्येक विषय के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त होता है। इसी ज्ञान को विचार शक्ति कहा जा सकता है। चेतना ऐसे मस्तिष्क का गुण है, जो भौतिक विश्व के साथ आदान-प्रदान किया करता है।

सामाजिक चेतना का स्वरूप

समाज तथा चेतना संबंधी उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि सामान्य परम्पराओं, रीति रिवाजो, आचार-व्यवहार की पद्धतियों के कारण परस्पर संगठित व्यक्तियों के समूह तथा उसके विभिन्न वर्गों, उपवर्गो के जीवन उनकी गतिविधियों, विविध क्रिया-कलापों, अभावों एवं विवशताओं आशाओं एवं आकांक्षाओं, न्यनताओं एवं उपलब्धियों के संबंध में जागरूकता बोध एवं सभासद विवेक तथा तज्जन्य प्रतिक्रिया सामाजिक चेतना कहलाता है। सामाजिक चेतना का जन्म सामाजिक अस्तित्व से हुआ है। समाज में जिस प्रकार के विचार, सिद्धान्त तथा मान्यताएँ प्रचलित रहती है, उसके अनुरूप ही सामाजिक चेतना बनती है, लेकिन सामाजिक चेतना निष्क्रिय नहीं रहती। वह सामाजिक अस्तित्व पर प्रभाव डालती है। सामाजिक चेतना को जन्म देने वाला सामाजिक अस्तित्व उससे प्रभावित होता है।

मानव जाति के सांस्कृतिक विकास का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि सामाजिक चेतना की अंतधारा उसमें निरंतर प्रवाहित होती रही है जो समाज को उत्तरोत्तर विकास की ओर ले जाती रही है। इस विकास क्रम में व्यक्ति-चेतना ही सामाजिक चेतना का विराट रूप धारण करती है। व्यक्ति के संदर्भ तथा समाज के संदर्भ में सामाजिक चेतना की दिशा भी उसके अनुरूप होगी। वास्तव में सामाजि कचेतना सामाजिक अस्तित्व का प्रतिबिम्बन होता है तथा सामाजिक अस्तित्व समाज के उत्पादन संबंधों द्वारा विकसित होता है।

इस संदर्भ में डॉ. प्रणय पालीवाल अनुसार- "शोषण संघर्ष, अस्पृश्यता वैवाहिक समस्याएँ, निरीहों-दलितों का करूण गान उनके दुःख-दर्द की अभिव्यक्ति, अमीरों-रईसो के प्रति घृणा का भाव, उनके शोषण-मूलक कर्म की निंदा धार्मिक मिथ्याडम्बर का विरोध, रूढ़िवाद की भर्त्सना सड़ाँध-भरी सामाजिक नैतिकता का विरोध, विसंगतियों एवं विकृतिमूलक व्यक्तिवादी भावनाओं का दमन तथा निर्माण मूलक व रचनात्मक विचारधारा का प्रवाह सामाजिक चेतना के मानदण्ड है।

सामाजिक चेतना का स्वरूप व्यापक है। समाज में शोषण, संघर्ष, आर्थिक, विषमताएँ, उँच-नीच की भावनाएँ छुआछूत, वैवाहिक समस्याएँ आदि सामाजिक वैषम्य होते है तब सामाजिक चेतना का उदय होता है। चेतना की अभिव्यक्ति सामाजिक संदर्भ में लोक मंगलकारी है। संपूर्ण मानवतावादी चेतना जो कि मनुष्य के मन, वाणी तथा कर्म द्वारा प्रकट होती है, सामाजिक चेतना के अंतर्गत आती है। समाज की सर्वमुखी उन्नति विकास तथा प्रगति के लिए प्रत्येक मनुष्य में सामाजिक चेतना की उपस्थिति अनिवार्य है। समाज के सभी क्षेत्रों में विकास तथा समानता की भावनाही सामाजिक चेतना का स्वरूप निध रिक है।

सामाजिक चेतना की परिभाषा

सामाजिक चेतना की परिभाषा अनेक विद्वानों ने अपने अपने दृष्टियों से की है। तो कुछ लेखक 'सामाजिक चेतना' को अपरिभाषा मानते है। प्रत्येक लेखक अपनी रचनाओं में समाज संबंध मान्यताओं को प्रत्यक्ष तथा प्रत्यक्ष रूप से प्रकट करता है। सामाजिक चेतना का मूलाधार सामाजिक संबंधों और

व्यक्ति के कार्यकलापों की विविधता का विचार-विमर्श है। समाज की प्रतिकूल परिस्थितियों में कुछ प्रतिभाएँ प्रज्वलित प्रकाश स्तंभ बनकर चमक उठती है। इनके आलोक में से समाज में जनजागृति की तरंगे लहराने लगती है। इन्हीं प्रतिभाओं को सामाजिक चेतना का वाहक माना जाता हैं। सामाजिक चेतना ही समाज को आगे बढाती है। सांस्कृतिक संस्कारों की सुरक्षा का कार्य सामाजिक चेतना संपन्न करती है। इस प्रकार समाज को सही मार्ग दिखाने का कार्य भी सामाजिक चेतना ही करती है।

कभी-कभी समाज अपने उच्च आदर्शों में विचलित होकर, पत्तनान्मुख हो जाता है। तब सामाजिक चेतना की अंत:शक्ति ही उसे पतन के दुष्परिणामों की ओर संकेत करके पुनः खोए हुए मूल्यों को पाने के लिए प्रयत्नशील बनाती है। सामाजिक चेतना अभावात्मक या नकारात्मक नहीं होती है, वह तो विकासात्मक होती है। डॉ. कुंवरपाल के अनुसार- “सामाजिक चेतना सरित प्रवाह की तरह विकसित होती चलती है, यह चेतना विच्छिन्न नहीं होती, बल्कि भिन्न-भिन्न सामाजिक समस्याओं, राजनीतिक गतिविधियों, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विषमताओं से संबंधित नागरिक जीवन की समानतामूलक विकासात्मक भावना ही सामाजिक चेतना है।

डॉ. रत्नाकर पाण्डेय के शब्दों में - “जब कोई नूतन विचारधारा समाज में प्रविष्ट होती है तथा निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ती है तो सामाजिक विचारध रा जागृत होती हैं इसी जागृति को सामाजिक चेतना कहा जाता है। सामाजिक चेतना के अर्थ राजनीति, धर्म आदि विविध तत्व है।”

सामाजिक चेतना व्यक्तिमूलक तथा समाजमूलक दोनों रूपों में रहती है। व्यक्ति-चेतना सामाजिक का एक रूप है। व्यक्तिमूलक सामाजिक चेतना व्यक्ति के दो छोरों को प्रकट करती है। एक छोर उसके क्षुद्ध व्यक्तित्व का है तथा दूसरे छोर पर वह रिाट व्यक्तित्व धारण कर सकता है। व्यक्ति जितने अंशों में सामाजिक चेतना को प्राप्त करता है उतना ही उसका जीवन समाज सापेक्ष होता है। जब व्यक्ति स्वचेतना में केंद्रित होकर समाज के स्वार्थ के विपरीत होता है तब समाज विरोधी स्थिति रहती है। सामाजिक चेतना से अभिप्राय हुआ सामाजिकता की आत्मा अर्थात उसके वे मूलभूत गुण जिनके कारण सामाजिक चेतना इस संज्ञा से अभिहित होती हैं आत्मा के उदात्त आशय, सभ्यता या संस्कृति के संपूर्ण तत्वों एवं समाज की उद्वेगजनक

स्थितियों की अवधारणा को सामाजिक चेतना कहा जाता है। जातियता, सार्वजनिकता, युग की संघर्षपूर्ण स्थिति की व्यंजकता सबको एक साथ मिलाकर सामाजिक चेतना का नाम दिया जा सकता है। जीवन जगत की विराटता का वैविध्यपूर्ण चित्रांकन, विशिष्ट जीवनदर्शन शाश्वत मानव प्रश्नों और मूल्यों की स्थापना आदि से सामाजिक चेतना की झलक मिलती है। परंपरागत आचार-विचारों का परिष्कार कर उन्हें युगीन रूप में प्रस्तुत करने में सामाजिक चेतना निहित है।"

डॉ. सोमनाथ शुक्ल कहते है, "सामाजिक चेतना ने व्यक्ति का समाज के प्रति दायित्व और व्यक्ति-व्यक्ति के संबंधो के स्वरूप को निर्धारित एवं नियंत्रित किया है। सामाजिक चेतना की सार्थकता, प्रत्येक माननीय समस्या पर सामूहिक दृष्टि से विचार करना है। सामाजिक चेतना ने आधुनिक युग में अधिकाधिक विस्तार प्राप्त किया है। व्यक्ति, उसका मन और महत्त्वकांक्षा, परिवार एवं परिवेश, समाज, सामाजिक, नीति और अनीति, धर्म और अध्यात्म, राज्य और राजनीति, शांति और समर आदि सभी सामाजिक चंतना के अंतर्गत विचारणीय हैं।"

सामाजिक चेतना समाज में मौजूद सभी संकट तथा अंतर्द्वन्द्व का उपचार नहीं। सामाजिक बीमारी का निदान कर समाज को सचेत बनाने का प्रयास ही है। सामाजिक चेतना से अनुप्रणित हर रचनाकार का रवैया यही होता है। एक सुखी और उत्कृष्ट समाज का निर्माण सामाजिक चेतना से युक्त हर लेखक का महान लक्ष्य होता है। समाज के आगे की गति सामाजिक चेतनापूर्ण रचनाकारों के हाथों में सुरक्षिक रह जाएगी।

सामाजिक चेतना के आधारभूत तत्व

उपर्युक्त सभी पुरानी मान्यताओं, उनका विरोध करती विचारधाराओं आदि को दृष्टि में रखते हुए सामाजिक चेतना के आधारभूत तत्वों को निरूपित करने की चेष्ट की जाए तो निम्नलिखित तत्व हमारे सामने स्पष्ट होते हैं-

1. वर्ण व्यवस्था के प्रति परिवर्तित दृष्टि
2. परिवार का नया स्वरूप
3. नारी के प्रति दृष्टिकोण

4. अर्थ के महत्त्व की वृद्धि

5. नैतिकता के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण

संक्षेप में कहे तो समय साक्षी है कि प्रत्येक देश का समाज साहित्य से प्रभावित हुआ है। समाज की प्रत्येक अच्छाइयाँ और बुराइयाँ साहित्यकार के द्वारा अपनी अपनी भाषा के साहित्य में देखने को मिलती है। साहित्यकार अपने समाज की हर इकाई को आम आदमी के समक्ष रखते हैं, जिसके द्वारा मनुष्य सच्चे मनुष्य को पहचानता है।

सामाजिक चेतना के विविध रूप

सामाजिक चेतना को विविध रूप देने वाले प्रत्यक्ष तथ परोक्ष अनेक तत्त्व होते हैं। समय-समय पर इनमें से कुछ तत्वों की प्रमुखता बढ़ती घटती दिखाई देती है। राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक, दार्शनिक तथा आध्यात्मिक दशाएँ सामाजिक चेतना पर प्रभाव डालती हैं और उसे रूप देने में सहायक होती है।

चेतना के विभिन्न प्रकार

वैयक्तिक चेतना

समाज में व्यक्ति के कुछ अधिकार एवं कर्तव्य होते हैं जिनका समाज के दायरे में रहते हुए वह प्रयोग करता है। व्यक्ति समाज की एक इकाई है एवं व्यक्तियों से मिलकर ही समाज का निर्माण होता है। व्यक्ति की अपने अधि कारों कर्तव्यों एवं हितों के प्रति जो जागरूकता है उसे ही वैयक्तिक चेतना कहा जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता का अधिकार है। इस अधिकार से मनुष्य में व्यक्ति का निर्माण होता है। इसे ही वैयक्तिक चेतना के नाम से पुकारा जाता है। आज हम देख भी रहे हैं कि आज आम आदमी अपने अधिकारो के प्रति, जागरूक होता जा रहा है। यदि कोई उसके अधि कारों का हनन करता है तो वह उसके खिलाफ खड़ा होने में संकोच नहीं करता है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण वैयक्तिक चेतना में वृद्धि होती जा रही है जो एक साफ-सुथरे समाज की प्रथम आवश्यकता है। व्यक्तिगत चेतना, सामाजिक चेतना के विकास का साधन है। इसलिए उस पर उन व्यक्तियों का प्रभाव रहता है, जिन्होंने उनके निर्माण में योगदान दिया है।

संक्षेप में कह सकते है कि व्यक्तिगत चेतना में यथार्थ का जो स्वरूप उभरता है उसमें वह सामाजिक चेतना से प्रभावित रहता है तथा इसी प्रकार सामाजिक चेतना में यथार्थ का प्रतिबिम्ब व्यक्तिगत चेतना के द्वारा संभव है।

सांस्कृतिक चेतना

सांस्कृतिक चेतना का अर्थ है 'संस्कृति संबंधी' चेतना। अपनी संस्कृति के प्रति जागरूकता को सांस्कृतिक चेतना कहा जाता है। हमारे देश में राजनीतिक चेता सांस्कृतिक चेतना की अनुगामिनी रही है। पुरातन काल से चले आ रहे सांस्कृतिक मूल्यों का सार्वजनिक महत्त्व है। ये मूल्य आज भी समाज के लिए प्रासंगिक है। इन्हीं मूल्यों की अभिव्यक्ति साहित्यकार अपने साहित्य में करते है, जिससे सांस्कृतिक चेतना बनी रह सके। वर्तमान में विदेशी भी भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता से प्रभावित होकर इसे ग्रहण कर रहे हैं।

राजनीतिक चेतना

सामाजिक चेतना में राजनीतिक चेतना की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राष्ट्र की प्रगति उसकी राजनैतिक प्रगति से जुड़ी रहती है। अतः राष्ट्र का कोई भी नागरिक उसकी राजनीतिक गतिविधियों से अछुता नहीं रह सकता। "राजनीतिक चेतना" संपूर्ण सामाजिक बोध में ग्रहण करने की दुष्टि पैदा करती है।" राजनीतिक चेतना मानव को अपने स्वत्व तथा गौरव सुरक्षित रखने की शक्ति प्रदान करती है। राजनीतिक चेतना के प्रसार में साहित्यकार का अपना दायित्व होता है। वह जनता को जागृत कर सकता है।

मानवीय चेतना

मानव कुछ ऐसे बंधनों में अपने को जकड़ा पाता है जो मुख्यतः मनुष्य निर्मित है। परिवार, भाषा, प्रांत, राष्ट्र, मजहब आदि की सीमाओं में बंधकर मनुष्य संकुचित निहित स्वार्थी का गुलाम बन जाता है। साधारणतया व्यक्ति इन सीमाओं के अंदर रहकर ही अपना पुरुषार्थ साधता है। लेकिन मानवीय संस्कृति में कुछ ऐसे भी उदास मूल्य है जो इन सभी सीमाओं को लाँघकर मानवमात्र के प्रति जुड जाने के लिए व्यक्ति का ह्रदय इतना उदार हो जाता है कि सम्पूर्ण वसुधा उसके लिए कुटुंब बन जाती है। यही मानवीय चेतना की पराकाष्ठा है।

दलित चेतना

'दलित' शब्द की व्यत्पत्ति संस्कृत के 'दल' धातु से हुई है। जिसका अर्थ है- फटना, खंडित होना, टूटना, कुचला हुआ आदि। प्राचीन साहित्य में इस शब्द को शूद्र, चांडाल, अत्यंज आदि अर्थों से प्रयोग में लाया गया है। दलित चेतना ऐसी अवधारणा है जिसे लेकर विवाद किया जा रहा है जो जन्मता दलित है, उसकी चेतना को हम दलित चेतना कहेंगे अथवा जो सामाजिक दृष्टि से पूर्णतः उपेक्षित है, तो वर्ण तथा जाति व्यवस्था के अंतर्गत सबसे आखिरी सीढ़ी पर खड़ा है, शोषित पीडित है, श्रमिक है, आदिवासी है, जिसकी अपनी कोई पहचान नहीं है और जिसके अस्तित्व को भी स्थापित वग्र नकारता हे, जिस की अस्मिता को सतत रौंदा जाता है, वह दलित एवं इस प्रतिकूल स्थिति के प्रति उसकी अपनी जो चेतना होती है उसके खिलाफ जो आक्रमक मुद्रा धारण किये खड़ा है उसे दलित चेतना कहते हैं।

ओमप्रकार वाल्मीकि के शब्दों में "जो दलितों के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छबि के तिलस्म को तोड़ता है वही दलित चेतना है। मतलब मानवीय अधिकारों से वंचित सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया है। उसकी चेतना यानि दलित चेतना।"

इस प्रकार दलित चेतना सत्य, न्याय तथा नीति के विजय की चेतना है। इसमें पीड़ित, शोषित मानव की यातनाएँ है, वेदना है, व्यथा है, संघर्ष है, आक्रोश है, विद्रोह है, सामाजिक उत्कर्ष की प्रक्रिया तथा नूतन क्रांति का बीजारोपण है।

आर्थिक चेतना

समाज वह इकाई है जिसका पूरा आधार अर्थव्यवस्था पर टिका होता है। जैसा आर्थिक ढाँचा होगा, उसके अनुरूप ही समाज होगा। आर्थिक प्रणाली का विकास ही सामाजिक संगठन तथा चेतना को नइ गति प्रदान करता है। मार्क्स कहते है- "विचारों, धारणाओं एवं चेतना की उत्पत्ति का सीधा संबंध आर्थिक संबंधों एवं गतिविधि से है। सोचना-विचारना एवं मानवों का मानसिक संबंध इस स्तर पर सीधे आर्थिक व्यवहारों से जन्मता है।"

मानव में विचारधारा का जो प्रभाव होता है, वह धार्मिक चेतना, राजनीतिक चेतना अथवा सामाजिक चेतना से ही होता है, लेकिन उसमें मूल रूप से

आर्थिक व्यवस्था निहित होती है। क्योंकि अर्थ बिना न तो धर्म की रक्षा हो सकती है, न राजनीति तथा समाज का पोषण ही हो सकता है। मानव के आर्थिक संबंध सामाजिक संबंधों को प्रभावित करते है। आर्थिक विषमता व्यक्ति के विकास में जब बाधक होती है, तब व्यक्ति कुंठित-विकृत एवं विद्रोही बन जाता है। आर्थिक समस्या आधुनिक साहित्य में अनिवार्य चेतना के रूप में उपस्थित होती है, जिसका सामाजिक चेतना से अनिवार्य तथा प्रत्यक्ष संबंध होता है। आर्थिक व्यवस्था द्वारा समाज व्यक्ति के विकास के लिए उचित वातावरण तैयार करता है। जिस समाज में आर्थिक असमानता अधिक पाई जाती है उस समाज में व्यक्तियों का विकास अवरुद्ध हो जाता है। फलस्वरूप समाज की प्रगति ही धीमी पड़ जाती है। मार्क्सवादी लेखकों में आर्थिक चेतना का स्वर अधिक देखने को मिलता है। नगेन्द्र ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखा है- "साहित्य का इतिहास परिवर्तित अभिरूचियों और संवेदनाओं का इतिहास होता है, जिसका सीधा संबंध आर्थिक और चिन्तनात्मक परिवर्तन से है।"

धार्मिक चेतना

धर्म समाज का अभिन्न तथा महत्वपूर्ण अंग है। कोई भी सभ्य समाज धर्म के बिना अपने स्वरूप का विकास नहीं कर सकता। धर्म वह कच्चा अदृश्य धागा है, जो समाज को उसकी सीमाओं के बाहर नहीं जाने देता। समाज में विभिन्न चरित्र वाले व्यक्ति होते है, जो कभी न कभी धर्म की सीमाओं को तोड़कर 'नित' को ही महत्व प्रदान करते हैं। मानव जीवन की समस्याओं को सुलझाने तथा चित्त वृत्तियों का परिष्कार करने के लिए तथा विश्व शान्ति की स्थापना के लिए समय-समय पर अवतरित महापुरुषों ने अपने-अपने मतों की स्थापना की है जो धर्म कहलाते हैं। इनमें यद्यपि बाह्यडम्बर संबंधी अन्तर पाए जाते हैं तो भी इनके आधारभूत सिद्धांत प्रायः समान है जो सत्य, अहिंसा, प्रेम, शांति जैसे शाश्वत मूल्यों पर अधिष्ठित है। इन्हीं मूल्यों की स्थापना की प्रेरणा देने की प्रकृति धार्मिक चेतना मानी जा सकती है।

अतः धर्म के विकास के साथ-साथ सामाजिक चेतना भी विकसित होती जाती है। धर्म का व्यक्ति के जीवन में बड़ा महत्व है, क्योंकि धर्म से प्रेरित व्यक्ति नैतिक रूप से आदर्शशील, विवेक एवं किन्हीं श्रेष्ठ मान्यताओं को लेकर चलने वाला होता है। व्यक्ति का जैसा धर्म व आचरण होगा, समाज भी उसी

के अनुरूप होगा। इसलिए कहा जा सकता है कि धर्म तथा सामाजिक चेतना इन दोनों का अटूट तथा घनिष्ठ संबंध होता है। अतः सामाजिक चेतना के निर्धारण में धार्मिक भावना की महत्वपूर्ण भूमिका है।

साहित्य की सामाजिक चेतना

किसी भी समाज में जब परिवर्तनकारी शक्तियाँ संघर्ष के मार्ग पर आगे बढ़ती है तो साहित्य उनकी वैयक्ति चेतना को सामाजिक चेतना में परिवर्तित कर आंदोलन के आगे मशाल लेकर चलता है। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान भी साहित्य ने भारत की सामाजिक चेतना को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। हिंदी साहित्य में सामाजिक चेतना का उदय यथार्थवादी साहित्य चिंतन का उदय भारतेन्दु हरिश्चंद्र से मानते हैं। वास्तव में देखा जाए तो भारतेन्दु एवं उसके साथियों की रचनाओं में समाज का यथार्थ अनेक रूपों में तथा विभिन्न विधाओं में अभिव्यक्त हुआ।

समाज का साहित्यकार सदस्य होता है। साहित्य और समाज परस्पर से कभी अलग नहीं होते हैं। अनेक संबंध संश्लिष्ट होते है। साहित्यकार समाज से प्रभावित होता है, वह समाज को जांचता परखता है, समाज में जीता, भोक्ता है, समाज के संबंधों का गहन अध्ययन चिंतन करता है। इस प्रकार साहित्यकार सामाजिक प्रश्नों से जूझता हुआ तथा अनुभवों के द्वारा रिश्ता जोड़ता हुआ, एक जीवन पहचान समाज के माध्यम से प्रस्तुत करता है, इसलिए साहित्य को सामाजिक साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। समाज का वैचारिक, भावनिक, मानसिक संघर्ष साहित्य में व्यक्त होता है। साहित्यकार सामाजिक अनुभव बोध तथा चेतना के आधार पर जीवन मूल्यों का वर्णन करता है।

समाज की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है। इस प्रकार साहित्य की अंतर्ववस्तु साहित्य की स्व-संरचना भाषा आदि सामाजिक चेतना से अनुप्राणित होता है। इस प्रकार साहित्य साहित्यकार की सामाजिक चेतना, अविष्कृत कलात्मक रचना है। इस संदर्भ में डॉ. सुरेश बत्रा ने साहित्य की सामाजिक चेतना के संबंध में मत प्रस्तुत करते हुए कहा है कि- "जब वर्ग वैषम्य उस समाज को पंगु बना दे, परिस्थितियाँ इन्सान को स्वार्थ साधनहीन बना दे, तब पाप पुण्य की सीमा रेखा से परे एक संवेदनशील आदर्शवादी, मानवतावादी उपन्यासकार बौद्धिक चेतना से झकझोर उठता है।"

साहित्यकार का कार्य यथार्थ जीवन को प्रतिबिम्बित करना न होता तो वह प्रजापति का दर्जा न पाता। वस्तुतः साहित्य का उद्देश्य सामाजिक अभिव्यक्ति मात्र नहीं है, बल्कि साहित्य समाज के लिए एक प्रेरणा शक्ति भी है। साहित्यकार समकालीन समाज की विचारधाराओं का मंथन कर अपने साहित्य में समाज के लिए जीवन दृष्टि प्रस्तुत करता है। जो रचनाकार अथवा साहित्यकार जीवन दृष्टि के निर्माण एवं संघर्ष पर बल नहीं देता उसकी रचना में प्रस्तुत जीवन मांस के लोथडे के सामन होता है, जिसमें चेतना नहीं होती। साहित्य सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति है। साहित्य समाज की भावनाओं, संवेगों, आशाओं, आकांक्षाओं तथा स्वप्नों का व्यापक रूप में प्रतिनिधित्व करता है। साहित्य और सामाजिक जीवन के बीच के संबंधों की पहचान जब से आरम्भ हुई तब से सामाजिक चेतना भी सक्रिय बन गई थी। समकालीन समाज की व्याख्या करके उस समाज की विसंगतियों तथा अंतरविसंगतियों को अपने पूरे वातावरण में उजागर करना ही साहित्य में निहित सामाजिक चेतना है।

साहित्यकार में सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन करने की क्षमता अवश्य होनी चाहिए। साहित्य सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति का साधन है और सामाजिक चेतना का परिष्कार भी इनके द्वारा संभव हो सका है। मानवता के विकास क्रम को कलाओं व साहित्य सृजन के माध्यम से जाना जा सकता है। साहित्य चेतना को लोकमानस तक पहुँचाना है तथा व्यक्ति चेतना का परिष्कार करता है। साहित्य सामाजिक स्थितियों को बदलने की वैचारिक भूमिका तैयार करता है और इस प्रकार बदलती सामाजिक चेतना का वाहक बनता है। इस प्रकार सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार से विभिन्न घटकों द्वारा होती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार साहित्यकार समाज जीवन को अनुभूत करते हुए, समाज से सामाजिक बोध ग्रहण करता है। लेकिन यह बोध जब विशिष्ट विचार-धारा, विशिष्ट चिंतन, विशिष्ट दृष्टिकोण, विशिष्ट सौंदर्य बोध आदि के रूप में अभिव्यक्त होना है तो इसे साहित्यकार की 'सामाजिक चेतना' कहते हैं। साहित्य की सामाजिक चेतना के सौंदर्यता के संदर्भ में साहित्यकार के दायित्व का प्रश्न उपस्थित होता है। किसी काल्पनिक संसार में रहकर साहित्यकार मानव जीवन के यथार्थ का आकलन नहीं कर सकता। इसलिए जिस समाज का उद्घाटन वह अपनी रचना

में करने जा रहा है उस समाज का अन्यतम परिचय प्राप्त करना साहित्यकार का प्रथम उत्तरदायित्व है। साहित्य समाज जीवन की प्रतिकृति मात्र नहीं होता वह उसे गति तथा सही दिशा प्रदान करता है।

सामाजिक चेतना समाजगत होने के साथ-साथ उसके विभिन्न अंग राजनीति, धर्म, अर्थ, संस्कृति से परस्पर सम्बन्धित है। स्वतंत्रता संग्राम के समय देश में चेतना की चिनगारी फुंककर क्रांति की अग्नि प्रज्वलित करने का कार्य तत्कालीन साहित्य तथा साहित्यकारों ने ही किया था। अंत में साहित्य की सामाजिक चेतना के संबंध में निम्न तथ्य स्पष्ट होते है।

परिवर्तन (Change)

परिवर्तन उत्पन्न करने के लिए मनोचिकित्सक की सद्‌भावना, सहानुभूति, परानुभूति की क्षमता प्रमुख साधन होती है। मनोचिकित्सक में यह विश्वास होना चाहिए कि अत्यन्त विकृत उदाहरणों में भी सार्थक परिवर्तन उत्पन्न किया जा सकता है।

मनोचिकित्सा की सहयोगात्मक शैली में क्लायंट को चिन्तन, अनुभूति तथा अनुक्रिया में किये जा रहे परिवर्तनों के बारे में पुनर्निवेशन प्रदान किया जाता है। परामर्शन की तीन मुख्य अवस्थाएँ होती हैं- वर्णन, पहचान एवं संशोधन। परिवर्तन उस समय आता है जब व्यक्ति अपने परिचित/स्थापित प्रत्यक्षण से वापस लौट कर नये विकल्प का अवलोकन करता है तथा निर्णय से पूर्व नये विकल्प का मूल्यांकन करता है। परामर्शदाता व्यक्ति/रोगी को ऐसे उपकरणों के विकास में मदद देता है जिनके द्वारा अत्यन्त पृथक ढंग से चिन्तन, अनुभूति और अनुक्रिया करना सम्भव हो सकता है। माता-पिता द्वारा दोषपूर्ण पालन-पोषण एवं परिवेशीय हस्तक्षेप एवं परित्याग के कारण व्यक्ति की संसार की कार्यपद्धति के विषय में ज्ञान क्षेत्र में अन्तराल शेष रह जाता है। अतः परामर्शदाता अधिगम सम्बन्धी आवश्यकताओं पर भी जोर देता है। परामर्शदाता वस्तुतः अपनी उपस्थिति और सहयोग द्वारा व्यक्ति क्लायंट को समस्याओं का स्वयं समाधान करने के लिए प्रोत्साहित करता है (जेम्स लो)।

– CAT is a 'post-rusk' therapy where patients are encouraged to work on their own tasks in and with the presence and help of the therapist (James Low, 2000).

अल्प–अवधि वाले उपागम में 'क्लायंट के लिए' या 'क्लायंट के साथ' की तुलना में 'क्लायंट–द्वारा' की नीति अधिक उपयोगी मानी जाती है।

परिवर्तन के प्रबंध

परिवर्तन एक संगठन के पर्यावरण, संरचना, प्रौद्योगिकी, या लोगों में बदलाव होता है। संगठनात्मक परिवर्तन तब होती है जब एक कंपनी एक संक्रमण से अपनी वर्तमान स्थिति के लिए कुछ वांछित भविष्य राज्य बनाता है। अगर परिवर्तन नहीं होता तो, प्रबंधक का काम सरल हो जाता। योजना करना आसान होता क्यूं कि आज और आने वाला कल में कोई परिवर्तन नहीं होता। उसी तरह निर्णय लेना आसान हो क्योंकि अनिश्चितता नहीं होती। पर परिवर्तन तो प्रत्येक संगठन की सच्चाई है। परिवर्तन को संभालना हर प्रबंधक का काम है।

कर्मचारियों के लिए, परिवर्तन ही तनाव का कारण है। एक गतिशील और अनिश्चित माहौल से कर्मचारियों की बड़ी संख्या तनाव में है। तनाव एक जटिल मुद्दा है। बाधाओं तथा मांगों के द्वारा तनाव कर्मचारियों में बढ़ रहा है। दबाव तनाव एक कारण है। इस संदर्भ में, शब्द 'तनाव' का केवल एक ही मतलब महत्वपूर्ण नकारात्मक परिणाम है, या संदर्भित संकट, हंस सेयेले (Hans Selye) के अनुसार जिसे वो युस्त्रेस्स (eustress) कहता है, तनाव का परिणाम सहायक या अन्यथा सकारात्मक रहता है। तनाव कई शारीरिक एवं मानसिक लक्षण है जो प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति के अनुसार बदलाव उत्पन्न करता है। ये शारीरिक स्वास्थ्य गिरावट के रूप में अच्छी तरह से शामिल कर सकता है। तनाव प्रबंधन की प्रक्रिया आधुनिक समाज में एक खुश तथा सफल जीवन की कुंजी से एक के रूप में नामित किया गया है।

नवाचार प्रबंधन नवचार प्रक्रियाओं का प्रबंधन है। यह उत्पाद और संगठनात्मक दोनों का नवाचार है। नवाचार प्रबंधन एक प्रक्रिया है जिसमें रचनात्मक विचार को बदलकर एक उपयोगी उत्पाद, सेवा या आपरेशन की विधि बनाया जाता है। अभिनव प्रबंधन में प्रबंधकों और इंजीनियरों के एक सामान्य समझ के साथ प्रक्रियाओं एवं लक्ष्यों को समझना चाहिए। अभिनव प्रबंधन संगठन को बाहरी या आंतरिक अवसरों के लिए जवाब है और अपनी रचनात्मकता का उपयोग विचारों, प्रक्रियाओं या उत्पादों नया पेश करने की अनुमति देता है। यह अनुसंधान एवं विकास में चलता नहीं है। यह एक कंपनी के उत्पाद

विकास, विनिर्माण तथा विपणन के लिए रचनात्मक योगदान करने में हर स्तर पर कार्यकर्ताओं शामिल है। प्रबंधन को संगठन में परिवर्तन लाने के लिए नवाचार लाना होता है।

परिवर्तन प्रबंधन

परिचय

बदलें प्रबंधन (मुख्यमंत्री) संक्रमण के लिए किसी भी दृष्टिकोण को दर्शाता है। व्यक्तियों, टीमों तथा संगठनों को फिर से सीधा करने के लिए संसाधनों, व्यापार प्रक्रिया, बजट आवंटन या ऑपरेशन के अन्य साधनों में महत्वपूर्ण है कि एक कंपनी या संगठन नयी आकृति प्रदान के लिए उपयोग का इरादा तरीकों का उपयोग करे। संगठनात्मक परिवर्तन प्रबंधन (ओसीएम) पूर्ण संगठन मानता है एवं बदलने की जरूरत को मानता है। संगठनात्मक बदलें प्रबंधन सिद्धांतों और व्यवहारों व्यक्ति पर पूरी तरह ध्यान केंद्रित बदलाव के लिए एक उपकरण के रूप में मुख्यमंत्री सम्मिलित हैं।

मुख्यमंत्री ऐसे लोगों और टीमों के एक संगठनात्मक संक्रमण से प्रभावित है। यह कई अलग-अलग विषयों के लिए व्यवहार और सामाजिक विज्ञान से संबंधित है। साथ सूचना प्रौद्योगिकी और व्यापार समाधान है। एक में परियोजना प्रबंधन संदर्भ, मुख्यमंत्री का उल्लेख कर परिवर्तन पर नियंत्रण की प्रक्रिया है। जिसमें एक परियोजना के दायरे में परिवर्तन औपचारिक रूप से आरम्भ की है और मंजूरी दे दी है।

परिवर्तन प्रबंधन के सिद्धांत

प्रबंधन सभी कर्मचारियों के बीच सहयोग शामिल करता है-

- सभी समय में शामिल है और प्रणाली के भीतर लोगों से समर्थन सहमत (सिस्टम = पर्यावरण, प्रक्रियाओं, संस्कृति, रिश्ते, व्यवहार, आदि, व्यक्तिगत या संगठनात्मक है)।
- समझ में जहाँ आप / संगठन पल में है।
- समझ में जहाँ आप होना चाहते हैं। कब, क्यों और क्या उपाय वहाँ मिला होने के लिए किया जाएगा।

- उचित प्राप्त दर्जे का चरणों में ऊपर की ओर योजना विकास।
- संवाद शामिल है, सक्षम तथा लोगों से शामिल होने की सुविधा के रूप में जल्दी और खुले तौर पर और पूरी तरह से के रूप में संभव है।

परिवर्तन मॉडल

परिवर्तन प्रबंधन के कई महत्वपूर्ण मॉडल मौजूद हैं।

सफल परिवर्तन करने के लिए आठ कदम

प्रमुख परिवर्तन के लिए जॉन कोटर के 8 कदम बताये हैं -

- **तात्कालिकता बढ़ाएँ** - लोगों, ले जाने के उद्देश्यों को वास्तविक तथा प्रासंगिक बनाने के लिए प्रेरित करते हैं।
- **मार्गदर्शक टीम बनाने** - सही भावनात्मक प्रतिबद्धता के साथ जगह में सही लोगों को मिलता है, कौशल और स्तर का सही मिश्रण है।
- **दृष्टि ठीक हो जाओ** - सेवा और दक्षता ड्राइव करने के लिए आवश्यक भावनात्मक और रचनात्मक पहलुओं पर एक साधारण दृष्टि तथा रणनीति, ध्यान की स्थापना के लिए टीम मिलता है।
- **खरीदें** - इनके लिए संवाद संभव के रूप में कई लोगों को शामिल करना, अनिवार्य संवाद, बस, और अपील करता है और लोगों की आवश्यकताओं का जवाब है। डी-अव्यवस्था संचार आपके लिए बजाय खिलाफ प्रौद्योगिकी का काम करते हैं।
- **सशक्त कार्रवाई** - बाधाओं को दूर, नेताओं से सकारात्मक प्रतिक्रिया और समर्थन की बहुत सारी सक्षम इनाम और प्रगति एवं उपलब्धियों को पहचान।
- **अल्पकालिक जीत बनाएं** - उद्देश्य उस लक्ष्य को हासिल करने के लिए आसान कर रहे हैं। सेट काटने के आकार मात्रा में। पहल के प्रबंधनीय संख्या नए लोगों को शुरू करने से पहले वर्तमान चरणों को खत्म कर रहा है।

- **ऊपर मत देना** – फोस्टर और दृढ़ संकल्प और दृढ़ता के लिए प्रोत्साहित चल रही परिवर्तन प्रकाश डाला हासिल की और भविष्य के मील के पत्थर चल रही प्रगति रिपोर्ट प्रोत्साहित करते हैं।
- **परिवर्तन छड़ी बनाने** – भर्ती, पदोन्नति, नए बदलाव के नेताओं के द्वारा सफल परिवर्तन का मूल्य मजबूत है। संस्कृति में परिवर्तन बना है।

बदलें प्रबंधन फाउंडेशन और मॉडल

बदलें प्रबंधन फाउंडेशन परियोजना प्रबंधन प्रबंध तकनीकी पहलुओं और आधार पर परिवर्तन को लागू लोगों एवं नेतृत्व के शीर्ष पर दिशा तय करने के साथ एक पिरामिड की तरह आकार का है। बदलें प्रबंधन मॉडल चार चरणों के होते हैं-

- परिवर्तन के लिए की आवश्यकता का निर्धारण
- तैयार करें और परिवर्तन के लिए योजना
- परिवर्तन को लागू
- परिवर्तन को बनाए रखने

डेमिंग चक्र योजना-मत-चेक-अधिनियम

योजना-मत-चेक-अधिनियम साइकिल के द्वारा बनाई गई डब्ल्यू एडवर्ड्स डेमिंग, नियंत्रण तथा प्रक्रियाओं और उत्पादों की निरंतर सुधार के लिए व्यापार पद्धति में सुधार करने के लिए एक प्रबंधन की विधि है। यह चार चरणों के होते हैं।

योजना-मत-चेक-अधिनियम (PDCA) द्वारा बनाई गई साइकिल डब्ल्यू एडवर्ड्स डेमिंग-

- **योजना** – उद्देश्यों एवं प्रक्रियाओं की स्थापना।
- **कर** – क्या योजना को लागू करने, प्रक्रिया निष्पादित, उत्पाद बनाने।
- **चेक** – वास्तविक परिणाम का अध्ययन करने तथा अपेक्षित परिणाम के खिलाफ तुलना
- **अधिनियम** – अधिनियमित नए मानकों

NOTES

सफल परिवर्तन प्रबंधक के कारक

सफल परिवर्तन प्रबंध के लिए, निम्न शामिल किए गए हैं तथा अधिक होने की संभावना है–

- औसत दर्जे परिभाषित हितधारक लक्ष्य और उनकी उपलब्धि के लिए एक व्यापार के मामले बनाने (लगातार अद्यतन किया जाना चाहिए जो)
- मान्यताओं, जोखिम, निर्भरता, लागत की निगरानी, निवेश पर प्रतिफल, जिले लाभ और सांस्कृतिक मुद्दों।
- प्रभावी संचार के परिवर्तन के लिए कारणों के विभिन्न हितधारकों को सूचित (क्यों?), सफल कार्यान्वयन के लाभ (क्या यह हमारे लिए है और आप) के रूप में भी परिवर्तन (के विवरण कब? कहाँ? कौन शामिल है? यह कितना खर्च होगा? आदि)
- संगठन के लिए एक प्रभावी शिक्षा, प्रशिक्षण तथा कौशल उन्नयन योजना वसीयत
- कंपनियों के कर्मचारियों से प्रतिरोध का मुकाबला करने और उन्हें संगठन के समग्र रणनीतिक दिशा के लिए पंक्ति में
- किसी भी परिवर्तन से संबंधित डर को दूर करने के लिए व्यक्तिगत परामर्श प्रदान (यदि आवश्यक)
- कार्यान्वयन तथा ठीक ट्यूनिंग की निगरानी की आवश्यकता के रूप में।

नवाचार प्रबंधन

परिचय

अभिनव प्रबंधन के निर्णय, गतिविधियों एवं प्रथाओं है। आमतौर पर, नवाचार निवेश के लिए, नए उत्पादों, सेवाओं या प्रौद्योगिकियों के विकास पर केंद्रित है। हालांकि, नवाचार के प्रकार है कि व्यापार के परिणामों को बढ़ा सकते हैं इन अच्छी तरह से परे जाना, एक कंपनी के व्यापार मॉडल में परिवर्तन भी सम्मिलित है। पहचान करना और इन निवेशों को सफलतापूर्वक ओर बार-बार बनाने नवाचार प्रबंधन का प्रमुख उद्देश्य का गठन किया है।

जटिल नवाचार के प्रबंध

अभिनव एक परिवर्तन है कि पिछले एक अभ्यास से बेहतर साबित होता है। नेतृत्व या नवाचारों के साथ बनाए रखने के लिए, प्रबंधकों नवाचार नेटवर्क है, जो नवाचार की जटिलता की गहरी समझ की आवश्यकता पर भारी ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। सहयोग नवाचार की एक महत्वपूर्ण स्रोत है। नवाचार तेजी से कंपनियों के नेटवर्क के माध्यम से बाजार के लिए लाया जाता हे, उनके तुलनात्मक लाभों के अनुसार चयन किया है और एक समन्वित तरीके से काम कर रही।

एक प्रौद्योगिकी एक प्रमुख परिवर्तन चरण के द्वारा चला जाता है और एक सफल नवाचार पैदावार है, यह एक बहुत अच्छा अनुभव है, न केवल माता-पिता उद्योग लेकिन साथ ही अन्य उद्योगों के लिए हो जाता है। बिग नवाचारों आमतौर पर, तकनीकी क्षेत्रों के बीच अंतर तथा अंतःविषय नेटवर्किंग के परिणाम हैं अंतर्निहित और स्पष्ट ज्ञान के संयोजन के साथ। नेटवर्किंग के लिए आवश्यक है, लेकिन नेटवर्क एकीकरण जटिल नवाचार के लिए सफलता की कुंजी है। सामाजिक आर्थिक क्षेत्रों, प्रौद्योगिकी गलियारों, मुक्त व्यापार समझौतों तथा प्रौद्योगिकी समूहों तरीके संगठनात्मक नेटवर्किंग और पार कार्यात्मक नवाचारों को प्रोत्साहन देने के लिए कुछ कर रहे हैं।

प्रबंध नवाचार से लाभ

अभिनव प्रबंधन जल्दी से एक स्थायी व्यवसाय को सक्षम करने के लिए एक महत्वपूर्ण आवश्यकता बनता जा रहा है। यह अच्छी तरह से करने के लिए लाभ में से कुछ में सम्मिलित हैं-

- बाजार परिचय के लिए बेहतर समय
- बनाए रखने या व्यापार मार्जिन में सुधार करने की क्षमता
- नए ग्राहकों तथा बाजारों के लिए उपयोग को सक्षम
- वृद्धि शेयर बाजार
- लंबे समय तक टिकाऊ प्रतिस्पर्धात्मक लाभ
- कर्मचारी सगाई और पहल

- बेहतर ग्राहक संतुष्टि
- शेयरधारक रिटर्न में सतत वृद्धि

स्वायत्तता की आवश्यकता

प्रारंभ में कालेजों की संबंधक प्रणाली उस समय तैयार की गई थी जब किसी एक विश्वविद्यालय में उनकी संख्या बहुत कम होती थी। तब विश्वविद्यालय कालेजों के कार्य की कारगर ढंग से देखभाल कर सकता था, परीक्षक निकाय के रूप में कार्य कर सकता है तथा उनकी ओर से डिग्री प्रदान कर सकता था। यह प्रणाली अब अव्यवहारिक हो गई है और प्रत्येक कालेज की अनेक प्रकार की आवश्यकताएं पूर्ण करना विश्वविद्यालय के लिए निरन्तर कठिन होता जा रहा है। कालेज अपनी पाठ्यचर्या को आधुनिक बनाने तथा स्थानीय रूप से उसे प्रासंगिक बनाने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं। सभी कालेजों पर समान रूप से लागू होने वाले विश्वविद्यालय विनियमों तथा उनकी सामान्य प्रणाली से प्रत्येक कालेज का अकादमिक विकास प्रभावित हुआ है चाहे उनके प्रबल पक्ष तथा दुर्बल पक्ष और अवस्थितियां कुछ भी रही हों। जिन कालेजों के पास उच्चस्तरीय कार्यक्रम प्रस्तुत करने की संभाव्यता विद्यमान होती है उनके पास उन्हें लागू करने की स्वतंत्रता नहीं होती है। 1964-66 के शिक्षा आयोग ने यह जताया था कि हमारे देश के बौद्धिक वातावरण के विकास के लिए शिक्षकों द्वारा अकादमिक स्वतंत्रता का उपयोग किए जाने की अत्यन्त आवश्यकता है। जब तक ऐसा वातावरण नहीं बन जाता है तब तक हमारी उच्च शिक्षा प्रणाली में उत्कृष्टता प्राप्त करना कठिन है। चूँकि उच्च शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने में छात्र, शिक्षक एवं प्रबंधक वर्ग समान रूप से भागीदार हैं। अतः मुख्य दायित्व में उनका बराबर भाग लेना परमावश्यक है। इसी दृष्टिकोण से शिक्षा आयोग (1964-66) ने कॉलेज स्वायत्तता की सिफारिश की जो कि तत्वतः अकादमिक उत्कृष्टता में वृद्धि करने का माध्यम है।

उद्देश्य

(क) राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986-92) ने स्वायत्त कालेजों के लिए निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए हैं। स्वायत्त कालेज को निम्नलिखित मामलों में स्वतंत्रता प्रदान की गयी-

NOTES

- अपने अध्ययन-पाठ्यक्रम तथा पाठ्य विवरण निर्धारित एवं विहित करना तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रमों का पुनर्गठन करना।
- राज्य सरकार की आरक्षण नीति के अनुरूप दाखिले के नियम बनाना।
- छात्रों के निष्पादन का मूल्यांकन करने, परीक्षा लेने तथा परिणाम अधिसूचित करने की विधियां तैयार करना।
- उच्च स्तर तथा अधिक रचनात्मकता प्राप्त करने के लिए शैक्षिक प्रौद्योगिकी के आधुनिक साधन प्रयोग करना; और
- सामुदायिक सेवा, विस्तार-गतिविधियां, आम समाज के लिए परियोजनाएं, पड़ो के कार्यक्रम आदि जैसी स्वस्थ प्रथाओं को प्रोत्साहन देना।

(ख) मूल विश्वविद्यालय, राज्य सरकार तथा अन्य शिक्षा संस्थाओं के साथ संबंध :

स्वायत्त कॉलेज अपनी पाठ्यचर्या तैयार करने, परीक्षा तथा मूल्यांकन की विधियां खोजने के लिए विश्वविद्यालय विभागों तथा अन्य संस्थाओं के विशेषज्ञों का उपयोग करने के लिए स्वतंत्र होते हैं। वे अपने शिक्षकों को (निजी तथा सरकारी कालेजों के लिए) विद्यमान प्रक्रिया के अनुसार भर्ती कर सकते हैं।

मूल विश्वविद्यालय अपने स्वायत्त कालेजों की शिक्षण, परीक्षा, मूल्यांकन एवं पाठ्यक्रम पाठ्यचर्या की कार्यप्रणाली स्वीकार करेंगे। ये कालेजों को अपने अकादमिक कार्यक्रम विकसित करने, संकाय सुधारने में, कालेजों के विभिन्न निकायों की चर्चाओं में भाग लेकर आवश्यक मार्गदर्शन करने में उसकी मदद भी करेंगे।

मूल विश्वविद्यालय की भूमिका यह होगी -

- अपने प्रभाव-क्षेत्र में अधिक संख्या में स्वायत्त कालेजों को लाना।
- नवाचारी अकादमिक कार्यक्रम आरम्भ किए जाने के कार्य को प्रोत्साहित करके स्वायत्त कालेजों में अकादमिक कार्यक्रम शुरू

NOTES

किए जाने के कार्य को प्रोत्साहित करके स्वायत्त कालेजों में अकादमिक स्वतंत्रता को बढ़ावा देना।

- अनुदेश में अपेक्षित न्यूनतम घंटों, विषयवस्तु तथा मानकों के अधीन अध्ययन के नवीन पाठ्यक्रमों को शुलभ बनाना।
- उन्हें अपने अन्तिम, प्रवास तथा अन्य प्रमाणपत्र जारी करने की अनुमति देना।
- स्वायत्तता की भावना को प्रोत्साहन देने के लिए यथासंभव सभी उपाय करना।
- यह सुनिश्चित करना कि जारी की गई डिग्रियां/डिप्लोमा/प्रमाणपत्र कालेज का नाम दर्शाते हैं।
- स्वायत्त कालेजों की विभिन्न समितियों में कार्य करने तथा उनके कार्यकलापों के विषय में फीडबैक प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न नामितियों को प्रतिनियुक्त करना।
- स्वायत्त कालेजों के सुचारू कार्य को सुलभ बनाने के लिए जहां कहीं भी आवश्यक हो, पृथक स्कंध (विंग) बनाना।

राज्य सरकार स्वायत्त कालेजों की सहायता इस प्रकार करेगी–

- आवश्यकता–आधारित स्थानान्तरणों को छोड़कर जहां तक संभव हो शिक्षकों के स्थानांतरण करने से बचना, विशेष रूप से उन कालेजों में जहां अकादमिक नवाचार तथा सुधार चल रहे हों।
- समीक्षा समिति की रिपोर्ट प्राप्त होने के 90 दिनों के अनुबंधित समयावधि में किसी कालेज की स्वायत्तता बढ़ाने के अपनी सहमति सूचित करना। ऐसा न करने की स्थिति में यह समझा जाएगा कि कालेज की स्वायत्तता जारी रहने में राज्य सरकार को कोई आपत्ति नहीं है।
- सरकारी कालेजों के शासी निकाय तथा अन्य निकायों में, जहां कहीं भी उनके नामित व्यक्ति सम्मिलित किए जाने हों वहां समय पर नामितियां को प्रतिनियुक्त करना।

- तीनों अंशधारकों, मूल विश्वविद्यालय, राज्य सरकार तथा वि.अ.आ. को सुविधाप्रदाता के रूप में अत्यन्त सुसंगत तथा सक्रिय भूमिका अदा करनी होगी।

स्वायत्त दर्जा प्रदान करना

संस्थान को प्रदत्त स्वायत्ता संस्थागत है तथा यह स्नातकपूर्व स्नातकोत्तर, डिप्लोमा, एम.फिल स्तर पर सभी पाठ्यक्रमों को कवर करता है जो संस्थान द्वारा स्वायत्तता दर्जा प्रदान करते समय चलाए जा रहे हैं। संस्थान द्वारा स्वायत्तता का दर्जा प्रदान किए जाने के पश्चात् आरंभ किए गए सभी पाठ्यक्रम स्वत: ही स्वायत्तता के क्षेत्र के अन्तर्गत आ जायेंगे। किसी भी संस्थान को आंशिक स्वायत्तता नहीं दी जा सकती है।

स्वायत्तता के दर्जे में कालेजों में चलाए जा रहे प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, स्नातकपूर्व, स्नातकोत्तर तथा एम.फिल. कार्यक्रम कवर किए जाते हैं जोकि स्वायत्त है एवं जो स्वायत्त दर्जा चाहते हैं। मूल विश्वविद्यालय किसी कालेज, जो स्थायी रूप से सम्बद्ध है उसे राज्य सरकार एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहमति से स्वायत्त का दर्जा देगा। एक बार स्वायत्तता दिए जाने पर, विश्वविद्यालय स्वायत्त कालेज द्वारा यथासंस्तुत इस प्रकार की डिग्री दिए जाने के लिए स्वायत्त कालेज के छात्रों को स्वीकृति देगा।

विश्वविद्यालयों के अधिनियम तथा परिनियमों में संशोधन करना चाहिए ताकि सम्बद्ध कालेजों को स्वायत्तता अनुदान का प्रावधान किया जा सके। स्वायत्तता प्रदान किए जाने से पूर्व, विश्वविद्यालय यह सुनिश्चित करेगा कि आवेदन करने वाले कालेज का प्रबंधन ढांचा पर्याप्त रूप से भागीदार है एवं अकादमिशियनों को सृजनात्मक योगदान देने के लिए अधिक अवसर प्रदान करता है।

स्वायत्तता हेतु आवेदन करने पूर्व की जाने वाली तैयारी :

स्वायत्तता के लिए कालेज को तैयार करना

कालेज की स्वायत्तता का सफलतापूर्वक कार्यान्वयन करने हेतु अनेक विषय क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ उपयुक्त तैयारी आवश्यक है। वे इस प्रकार हैं; संकाय तैयार करना, विभागीय तैयारी, संस्थागत तैयारी तथा छात्रों तथा स्थानीय समुदाय को

तैयार करना। ऐसी बहुमुखी तैयारी स्वायत्तता चाहने से काफी पूर्व तथा कालेज को दर्जा प्रदान किए जाने से पहले पूरी कर ली जानी चाहिए ताकि कालेज समुदाय के किसी भी अंग को ऐसा नहीं पाया जाता है कि वह नवीन उत्तरदायित्व के लिए तत्पर नहीं हैं जिसका वहन करने की इससे अपेक्षा की जाती है।

संकाय तैयार करना

कालेज के स्टाफ को शुरू से ही विचार करने एवं योजना तैयार करने की प्रक्रिया में सम्मिलित करना आवश्यक है। स्वायत्तता की संकल्पना उद्देश्य एवं औचित्य से स्टाफ को अवगत कराने के लिए संगोष्ठियां, कार्यशालाएं एवं परामर्श आयोजित किए जा सकते हैं। (इससे उनमें निर्णय लेने के कार्य में भागीदारी की भावना उत्पन्न करने में तथा उन्हें समग्र प्रक्रिया में शामिल होने के लिए अभिप्रेरित करने में सहायता मिलेगी)। इसे कालेज का अकादमिक कैलेण्डर का भाग बनाया जा सकता है।

विभागीय तैयारी

प्रमुख तथा संबंधित विषयों में उपर्युक्त पाठ्यक्रम डिजाइन करना, अध्ययन के नए पाठ्यक्रमों को लागू करना विषयवस्तु बदलकर पुराने पाठ्यक्रम को नवीन नाम देना, प्रत्येक विद्याशाखा में अधुनातन पाठ्यक्रमों के तुल्य बनाने के लिए विद्यमान पाठ्यक्रमों को अद्यतन बनाना, पाठ्यक्रम सामग्री तथा मानव संसाधन तैयार करना विभाग की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है।

ये कार्य स्वायत्तता के सामान्य उद्देश्यों तथा शिक्षा-संस्थाओं के विशिष्ट उद्देश्यों के प्रकाश में किए जाएंगे।

अपनाए जाने वाले सामान्य कार्यक्रम :

(क) अध्ययन का सेमेस्टर पैटर्न

(ख) सतत आंतरिक मूल्यांकन

(ग) क्रेडिट/ग्रेडिंग प्रणाली

(घ) छात्र फीडबैक

(ङ) शिक्षकों द्वारा स्व-मूल्यांकन

संस्थागत तैयारी

चूँकि एक स्वायत्त कालेज को अनेक ऐसे कार्य करने होते हैं जो अभी तक विश्वविद्यालय द्वारा किए जाते थे अत: इसे एक प्रकार के परिवर्तन में निहित अकादमिक, प्रशासनिक/प्रबंधन तथा वित्तीय निहितार्थों का अध्ययन करना चाहिए और नए कार्यों का सुचारू निष्पादन करने के लिए अपने को तैयार करना चाहिए।

आवेदन करने की प्रक्रिया

वि.अ.आ. स्वायत्तता दर्जा प्राप्त करने के पात्र कालेजों से एक अकादमिक वर्ष में एक बार, सितम्बर/अक्टूबर माह में प्रस्ताव आमंत्रित करने के लिए विज्ञापन देगा। विश्वविद्यालय भी कालेजों को आवेदन करने के लिए परिपत्र भी भेजेगा।

वि.अ.आ. द्वारा अनुमोदन प्रदान किए जाने की प्रक्रिया

स्वायत्तता प्रदान करने हेतु अनुदानों का अनुमोदन दो स्तरों में किया जाएगा। प्रथम स्तर पर वि.अ.आ. द्वारा एक छानबीन समिति का गठन किया जाएगा। समिति की संरचना निम्न प्रकार की होगी-

(क) वि.अ.आ. द्वारा नामित तीन से पांच विशेषज्ञ (एक विशेषज्ञ संयोजक द्वारा नामित किया जाएगा।

(ख) संबंधित राज्य का उच्च शिक्षा सचिव/अथवा उसके द्वारा नामित व्यक्ति

(ग) अध्यक्ष राज्य उच्च शिक्षा परिषद् तथा उसके द्वारा नामित व्यक्ति (जहां कहीं भी गठन किया गया हो)

(घ) कालेज-शिक्षा निदेशक/आयुक्त अथवा उसके द्वारा नामित व्यक्ति

(ङ) कुलपति अथवा उसके द्वारा नामित व्यक्ति

(च) संयुक्त सचिव, स्वायत्तत कालेज का वि.अ.आ. प्रभारी-सदस्य सचिव

दूसरे स्तर पर वि.अ.आ. द्वारा गठित अन्य विशेषज्ञ समिति संक्षिप्त सूची में दर्ज कालेजों का भ्रमण करेगी। यह समिति अपने निष्कर्षों तथा सिफारिशों के साथ अपनी रिपोर्ट वि.अ.आ.को प्रस्तुत करेगी। इसके पश्चात् वि.अ.आ. इसकी सिफारिशें स्वायत्तता प्रदान किए जाने के लिए संबंध विश्वविद्यालय को भेजेगा। प्रारंभ में स्वायत्तता छह वर्ष के लिए दी जाएगी।

सहायता का स्वरूप

वित्तीय सहायता तथा अन्य समर्थकारी उपबंध

आयोग स्वायत्त कालेजों को उनकी अतिरिक्त तथा विशेष आवश्यकताएं पूरी करने के लिए इस योजना के अधीन आर्थिक सहायता उपलब्ध कराएगा।

- अतिथि/अभ्यागत संकाय
- शिक्षकों की अभिविन्यास एवं पुनः प्रशिक्षण
- पाठ्यक्रमों की पुनःरचना तथा शिक्षण/अधिगम सामग्री का विकास
- कार्यशालाएं तथा संगोष्ठियां
- परीक्षा सुधार
- कार्यालय उपस्कर, शिक्षण साधन तथा प्रयोगशाला उपरकर
- कार्यालय, कक्षा, पुस्तकालय एवं प्रयोगशालाओं के लिए फर्नीचर
- पुस्तकालय उपस्कर, पुस्तकें/जर्नल
- शासी निकाय एवं समितियों की बैठकों पर खर्चा
- परीक्षा नियंत्रक (पूर्णकालिक) को मानदेय। यह रु. 8000/- प्रति माह से अधिक नहीं होगा।
- प्रत्यायन (नाक) फीस
- पुरूद्धार एवं मरम्मत जिसमें नए भवन का निर्माण शामिल नहीं है।
- विस्तार गतिविधियाँ

स्वायत्तता अनुदान के उपयोग के लिए निम्नलिखित मार्गदर्शी सिद्धांत होंगे-

- स्वायत्त अनुदान की निधियों का इस्तेमाल नवीन मदों के सृजन, कालेज स्टाफ को वेतन की अदायगी विद्यमान स्टाफ को मानदेय (उपर्युक्त खंड (x) को छोड़कर) देने के लिए कालेज की सामान्य आकस्मिक आवश्यकताएं पूर्ण करने तथा सहायिकी प्रदान करने के लिए नहीं किया जा सकता है।
- परीक्षा शुल्क निर्धारित किया जाना चाहिए ताकि शुल्क की आय से परीक्षाओं तथा परीक्षा शाखा में नियुक्त अन्य स्टाफ पर होने वाले व्यय को पूरा किया जा सके।

स्वायत्त कालेज का शासन

अकादमिक, वित्तीय तथा सामान्य प्रशासनिक मामलों का समुचित प्रबंध सुनिश्चित करने के लिए कालेज में निम्न समितियां होंगी-

सांविधिक निकाय निम्नलिखित हैं-

- शासी निकाय
- विद्या परिषद्
- पाठ्य समिति
- वित्त समिति

(शासी निकाय, न्यास बोर्ड/प्रबंध बोर्ड/कार्यकारिणी समिति/प्रबंध समिति से भिन्न हैं)

उपर्युक्त समितियों का गठन एवं कार्य अनुलग्नक III के VII में दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त कालेज में अन्य समितियां भी होंगी जैसे-योजना और मूल्यांकन समिति, शिकायत अपील समिति, परीक्षा समिति, दाखिला समिति, पुस्तकालय समिति, छात्र कल्याण समिति, पाठ्येत्तर गतिविधि समिति तथा अकादमिक लेखापरीक्षा समिति।

शासी निकाय

शासी निकाय का गठन अनुलग्नक-III में दी गई संरचना के अनुसार होगा।

NOTES

अकादमिक परिषद्

विद्या परिषद् अकादमिक नीति तैयार करना पाठ्यक्रमों का अनुमोदन, विनिमय तथा पाठ्य विवरण जैसे सभी अकादमिक मामलों के लिए पूर्णत: जिम्मेदार होगी। परिषद् सभी स्तरों पर संकाय वर्ग को एवं बाहर के विशेषज्ञों को भी शामिल रखेगी जिसमें विश्वविद्यालय तथा सरकार के प्रतिनिधि भी सम्मिलित होंगे। अकादमिक परिषद् द्वारा लिए गए निर्णय, विश्वविद्यालय की अकादमिक परिषद अथवा विश्वविद्यालय के अन्य शासी निकायों के अनुसमर्थन के अधीन नहीं होंगे। अकादमिक परिषद् का गठन तथा कार्य अनुलग्नक IV में दिए गए हैं।

अध्ययन बोर्ड

अध्ययन बोर्ड स्वायत्त कालेज की अकादमिक प्रणाली का बुनियादी घटक है। इसके कार्यों में विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए पाठ्य-विवरण तैयार करना, समय-समय पर इसकी समीक्षा करना एवं अद्यतन बनाना, अध्ययन के नए पाठ्यक्रम लागू करना, सतत् मूल्यांकन के ब्यौरे का निर्धारण करना, सेमेस्टर प्रणाली के अंतर्गत परीक्षकों के पैनल की सिफारिश करना सम्मिलित है। अध्ययन बोर्ड का गठन एवं कार्य अनुलग्नक V में दिए गए हैं।

वित्त समिति

वित्त समिति शासी निकाय को परामर्श देगी तथा वर्ष में कम से कम दो बार इसकी बैठक होगी। वित्त समिति की संरचना एवं कार्यों का ब्यौरा अनुलग्नक में दिया गया है।

परिवीक्षण/मूल्यांकन करने की प्रक्रिया और अनुदान को जारी किया जाना

- स्वायत्तता का अधिकार सदा के लिए प्रदान नहीं किया जाएगा। कालेज को सतत् रूप से इसे अर्जित करना होगा। स्वायत्तता प्रारंभ में छह वर्ष के लिए दी जाएगी।
- प्रत्येक स्वायत्त कालेज अपनी अकादमिक परिषद् के अनुमोदन से इसके अकादमिक निष्पादन का मूल्यांकन स्तर में सुधार तथा स्वायत्तता का उपयोग करने में प्राप्त सफलता को आंकने के लिए

उपर्युक्त कार्यप्रणाली तैयार करेगी। स्व-मूल्यांकन प्रतिवर्ष किया जाएगा। इसके अतिरिक्त दो बाहरी मूल्यांकन होंगे पहला चार वर्ष के बाद और दूसरा 6 वर्ष के बाद। दूसरा मूल्यांकन उपरोक्त स्वायत्तता का दर्जा जारी रहने अथवा रद्द करने का निर्णय करेगा।

स्वायत्तता की पहली तथा उत्तरवर्ती अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात् स्वायत्तता दर्ज के विस्तार के लिए कालेज के प्रस्ताव की जांच के लिए एक संयुक्त विशेषज्ञ समिति का गठन किया जाएगा जिसमें सम्बद्ध विश्वविद्यालय एवं संबंधित राज्य सरकार, दोनों से एक-एक प्रतिनिधि तथा तीन प्रतिनिधि वि.अ.आ. से होंगे जिसमें से एक समिति का संयोजक होगा।

मौजूदा स्वायत्त कालेजों को परेशानी से बचाने के लिए, ग्राहय अनुदान के 80 प्रतिशत भाग को इस प्रकार के स्वायत्त कालेज को क्षेत्रीय कार्यालयों द्वारा "आन अकाऊंट" अनुदान के रूप में जारी कर दिया जाएगा यदि स्वायत्त कालेजों की समीक्षा में स्वायत्तता अवधि की समाप्ति से अधिक विलम्ब हो जाता है।

साथ ही समीक्षा रिपोर्ट तथा स्वायत्तता नवीकरण में विलम्ब होने पर, कालेज स्वायत्तता के साथ-साथ योजना में परिकल्पित मौद्रिक एवं अन्य लाभ का हकदार होगा जब तक कि सरकार या मूल विश्वविद्यालय विशेष आदेश के द्वारा इस प्रकार के लाभ को जारी रखने पर प्रतिबन्ध नहीं लगाता है।

किसी स्वायत्त कालेज में स्तरों में गिरावट के पुष्टिकारक साक्ष्य मिलने की स्थिति में वि.अ.आ. तथा विश्वविद्यालय कालेज की स्वायत्तता सावध ानीपूर्वक की गई छानबीन, आपसी परामर्श तथा प्रबंधकों को उचित अधि सूचना देने के पश्चात् समाप्त कर सकते हैं। ऐसे मामलों में स्वायत्तता योजना के अधीन पहले से दाखिल कर लिए गए छात्रों को स्वायत्तता के दर्जे के अधीन पाठ्यक्रम पूरा करने दिया जाएगा। स्वायत्त कालेज को स्वायत्ता/विस्तार प्रदान किए जाने की तिथि से दो वर्ष के भीतर अपने लिए "नाक (एन.ए. ए.सी.) द्वारा प्रत्यायन ग्रहण कर लेना चाहिए।

वि.अ.आ. द्वारा स्वायत्तता अनुदान जारी किए जाने की प्रक्रिया

अवधि के दौरान स्वायत्तता का दर्जा प्राप्त कालेजों को स्वायत्तता अनुदान जारी करने के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया निर्धारित की गई है।

NOTES

1. स्वायत्त कालेज को अप्रैल के पूर्व सप्ताह में पिछले वर्ष के स्वायत्तता अनुदान का उपयोग करने तथा आगामी वर्ष के स्वायत्तता अनुदान के लिए के बजट पर चर्चा करने के लिए वित्त समिति की बैठक आयोजित करनी चाहिए। इस बैठक में बजट के विस्तृत खाके को विधिवत् रूप से अनुमोदित किया जाना चाहिए।

2. केवल उन्हीं मदों को सम्मिलित किया जाना चाहिए जो दिशानिर्देशों के खण्ड-7 के अनुसार ग्राह्य हैं। इन मदों के अतिरिक्त कोई अन्य मद उपयोग के लिए स्वीकार नहीं की जाएगी।

3. इस प्रकार तैयार किए गए तथा वित्त समिति द्वारा अनुमोदित बजट को प्रत्येक वर्ष 25 अप्रैल से पूर्व अंतिम अनुमोदन के लिए शासी निकाय के समक्ष रखा जाएगा।

4. वित्त समिति तथा शासी निकाय द्वारा विधिवत् रूप से अनुमोदित बजट को 30 अप्रैल या इससे पहले वि.अ.आ. के संबंधित क्षेत्रीय कार्यालय में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यदि शासी निकाय की बैठक अपरिहार्य कारणों के चलते 30 अप्रैल से पूर्व आयोजित नहीं की जाती है तो प्राचार्य शासी निकाय के सदस्य सचिव की हैसियत से, शासी निकाय के अध्यक्ष के अनुमोदन के अधीन वि.अ.आ. के संबंधित क्षेत्रीय कार्यालय को बजट प्रस्तुत कर सकते हैं।

नए पाठ्यक्रमों का प्रारंभ करने के संबंध में सामान्य बातें

स्वायत्त कालेज विश्वविद्यालय के पूर्व अनुमोदन के बिना डिप्लोमा (स्नातकपूर्व तथा स्नातकोत्तर) अथवा प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम आरंभ करने के लिए स्वतंत्र हैं। डिप्लोमा और प्रमाणपत्र कालेज की मुहर के साथ जारी किये जायेंगे।

स्वायत्त कालेज, कालेज की अकादमिक परिषद के अनुमोदन से नई डिग्री अथवा स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम आरंभ करने में स्वतंत्र हैं। ऐसे पाठ्यक्रम विश्वविद्यालय/वि.अ.आ. द्वारा घंटों की संख्या, पाठ्यचर्या की विषवस्तु तथा स्तर की बावत विहित न्यूनतम स्तर की पूर्ति करेंगे एवं ऐसे पाठ्यक्रमों के सम्बन्ध में विश्वविद्यालय को विधिवत् सूचित किया जाएगा।

स्वायत्त कालेज वि.अ.जा के मानदण्डों के अनुसार कालेज की अकादमिक परिषद् के अनुमोदन से नवीन गठन/डिजाइन के बाद विद्यमान पाठ्यक्रमों को

नया नाम दे सकता है। विश्वविद्यालय को ऐसी कार्यवाही विधिवत् सूचित की जानी चाहिए ताकि यह पुरानी डिग्रियां के स्थान पर नई डिग्रियां प्रदान कर सके।

विश्वविद्यालय को स्वायत्त कालेज के सभी नए पाठ्यक्रमों की समीक्षा करने का अधिकार होना चाहिए। जहां गुणवत्ता अथवा स्तर में गिरावट दिखाई दे वहां विश्वविद्यालय सावधानीपूर्वक छानबीन करने के बाद वि.अ.आ. के साथ परामर्श करके यदि संभव हो तो उन्हें सुधारने में सहायता करें अथवा ऐसे पाठ्यक्रमों को रद्द कर दें।

स्वायत्त कालेज की विशिष्ट विशेषताएं

नया पाठ्यक्रम आरंभ करना

कोई भी स्वायत्त कालेज डिप्लोमा (स्नातकपूर्व तथा स्नातकोत्तर) या प्रमाण पत्र पाठ्यक्रम बिना विश्वविद्यालय की पूर्व अनुमति के आरंभ करने को स्वतंत्र है। डिप्लोमा तथा प्रमाण पत्र कालेज की मुहर के अन्तर्गत जारी किए जायेंगे।

स्वायत्त कालेज, कालेज की अकादमिक परिषद् के अनुमोदन से नई डिग्री या स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम आरंभ करने के लिए स्वतंत्र है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम घंटों की संख्या पाठ्यक्रम की विषयवस्तु एवं मानकों के रूप में विश्वविद्यालय/वि.अ.आ. द्वारा विहित न्यूनतम मानदण्ड पर खरे उतरने चाहिए तथा विश्वविद्यालय को इस प्रकार के पाठ्यक्रमों के सम्बन्ध में विधिवतरूप से सूचित किया जाना चाहिए।

एक स्वायत्त कालेज कालेज, मौजूदा पाठ्यक्रम के पुनर्गठन/पुर्न:तैयार करने के पश्चात् वि.अ.आ. मानदण्डों के अनुसार कालेज अकादमिक परिषद् के अनुमोदन से इसका पुनर्नामकरण कर सकता है। नया नाम वि.अ.आ. अधि नियम की धारा 22 के तहत यथा विर्निदिष्ट होना चाहिए। विश्वविद्यालय को इस प्रकार की कार्यवाहियों के सम्बंध में यथोचित रूप से सूचित किया जाना चाहिए ताकि यह पुरानी डिग्री की बजाय नई डिग्री दे सके।

विश्वविद्यालय को किसी स्वायत्त कालेज के सभी नए पाठ्यक्रमों की समीक्षा करने का अधिकार होना चाहिए। जहाँ मानदण्ड एवं गुणवत्ता में गिरावट के

सबूत हों, विश्वविद्यालय सावधानीपूर्वक सवीक्षा कर, वि.अ.आ. के परामर्श से, जहां कहीं संभव हो, इस प्रकार के पाठ्यक्रमों को या तो उन्हें आशोधित करे या उन्हें रद्द करें।

स्वायत्त कालेज द्वारा नया पाठ्यक्रम आरंभ करने की प्रक्रिया

पहला कदम

कालेज के संबंधित विभाग को नए पाठ्यक्रम के विचार को जन्म देना चाहिए तथा इस विषय पर अध्ययन बोर्ड की भली-भांति चर्चा होनी चाहिए। अध्ययन बोर्ड सभी आवश्यक ब्यौरे यथा उद्देश्य, अर्हता, पाठ्यक्रम विषयवस्तु एवं शुल्क ढांचें के साथ विचार को प्रस्ताव में परिवर्तित करेगा। इस प्रकार के प्रस्ताव को अकादमिक परिषद् को अग्रेषित किया जाएगा। प्रस्ताव अध्यादेश की शक्ल में होगा।

दूसरा कदम

यदि परिषद् को प्रस्ताव उचित लगे तो अकादमिक परिषद् इस प्रकार के प्रस्ताव की बैठक में चर्चा करेगा तथा प्रस्ताव को अनुमोदित करेगा। अकादमिक परिषद् को अधिकार होगा कि वह पुनरीक्षण/आशोधन के लिए प्रस्ताव अध्ययन बोर्ड को वापिस भेज दे या उचित कारण देकर प्रस्ताव को अस्वीकार कर दे। आवश्यक आशोधन किए जाने पर प्रस्ताव को पुनर्विचार करने के लिए अकादमिक परिषद् को पुनः प्रस्तुत किया जा सकता है।

तीसरा कदम

अकादमिक परिषद् द्वारा अनुमोदित प्रस्तावों को अंतिम अनुमोदन एवं प्रस्ताव को निष्पादन करने की अनुमति प्राप्त करने के लिए कालेज के शासी निकाय को प्रस्तुत किया जाएगा।

चौथा कदम

स्वायत्त कालेज, कालेज के शासी निकाय द्वारा अनुमोदित सभी प्रस्ताव को विश्वविद्यालय को सूचनार्थ भेजेगा।

विश्वविद्यालय कालेज से प्रस्ताव के संबंध में स्पष्टीकरण मांग सकता है।

कालेज इस प्रकार के स्पष्टीकरण देने के लिए बाध्य है चूँकि नए प्रस्तावित पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विश्वविद्यालय ही छात्रों को डिग्री प्रदान करेगा।

सांविधिक निकायों की बैठकें

बड़े पैमाने पर तैयारी तथा चर्चा के बाद ही नए पाठ्यक्रम को शुरू किया जाना चाहिए।

- अध्ययन बोर्ड की बेठकों के साथ पिछले सत्र के अक्टूबर माह से ही अगले अकादमिक सत्र में आरंभ किए जाने वाले पाठ्यक्रम की तैयारी शुरू की जानी चाहिए।
- अकादमिक परिषद् की बैठक दो बार होनी चाहिए एक जनवरी माह में, अगले अकादमिक सत्र के लिए प्रस्तावों पर वार्ता करने तथा पुनः अगस्त माह में आरंभ किए गए नए पाठ्यक्रम की स्थिति की निगरानी करने के लिए। अकादमिक परिषद् गुणवत्ता मानदण्डों को बनाए रखने के लिए तरीके सुझाएगा।
- अकादमिक परिषद् की बैठकों के पश्चात् शासी निकाय की बैठक होनी चाहिए। अगस्त माह में शासी निकाय को वि.अ.आ. द्वारा प्राप्त स्वायत्ता अनुदान सहित स्वायत्त निधि के बजट को पारित किया जाना चाहिए।
- वित्त समिति की बैठक एक वित्तीय वर्ष में कम से कम दो बार होनी चाहिए। बैठकों को प्रत्येक वर्ष के अप्रैल तथा सितम्बर माह में आयोजित किया जा सकता है। अप्रैल में होने वाली बैठक स्वायत्तता अनुदान के लिए बजट बैठक होगी एवं सितम्बर में कालेज द्वारा परीक्षा एवं अन्य संगत फीस के द्वारा सृजित स्वायत्तता निधि के संबंध में दूसरी बजट बैठक होगी।

परीक्षा प्रकोष्ठ तथा तंत्र

स्वायत्त कालेजों में एक परीक्षा प्रकोष्ठ होगा जिसकी अध्यक्षता परीक्षा नियंत्रक करेगा जो व्यक्ति की क्षमता के आधार पर प्राचार्य द्वारा नामित एक स्थायी शिक्षक होगा। कालेज का प्राचार्य परीक्षा का मुख्य नियंत्रक होगा।

परीक्षा नियंत्रक कालेज के प्राचार्य की अनुमति से अपना स्वयं का दल बनाएगा। इस दल में उप नियंत्रक/सहायक नियंत्रक होंगे एवं नामित किए जाने वाले व्यक्तियों की संख्या परीक्षा प्रकोष्ठ में कार्य की मात्रा पर निर्भ करेगी। कालेज में कार्य करने वाले शिक्षक परीक्षा प्रकोष्ठ में 3 वर्ष की अवधि के लिए नामित किए जायेंगे।

स्वायत्त प्रकोष्ठ में कार्यालय सहायकों, कम्प्यूटर प्रोग्रामर, डाटा एंट्री आपरेटर एवं अन्य सहायकों का एक दल होगा।

परीक्षा प्रकोष्ठ में प्रश्न पत्र एवं अन्य गोपनीय सामग्री के प्रकाशन के लिए एक मुद्रण इकाई भी होगी।

परीक्षा प्रकोष्ठ के सभी अंशकालीन/पूर्णकालीन पदाधिकारियों को उनके सामान्य कार्य के अतिरिक्त कार्य करने के लिए मानदेय का भुगतान किया जाएगा। इस प्रकार के मानदेय को वित्त समिति द्वारा प्रस्तावित किया जाएगा तथा शासी निकाय द्वारा अनुमोदित किया जाएगा।

शासी निकाय, वित्त समिति की सिफारिश पर संविदागत आधार पर परीक्षा प्रकोष्ठ में पूर्णकालीन कर्मचारियों की नियुक्ति का भी अनुमोदन कर सकता है। इस प्रकार के स्टाफ का वेतन भी इसी तंत्र द्वारा निर्धारित किया जाएगा। आंतरिक तथा बाहरी परीक्षा के द्वारा छात्रों का सतत् एवं बृहद मूल्यांकन किया जाएगा। प्रति सेमेस्टर कम से कम 2 आंतरिक परीक्षाएं तथा एक सेमेस्टर समाप्त होने के समय परीक्षा की जाएगी।

छात्रों को विशुद्ध शिक्षण से मुक्त होने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए समूह चर्चा, पत्र पठन, गृह कार्य तथा मौखिक परीक्षा आदि के विभिन्न आंतरिक मूल्यांकन के तंत्र को स्वीकार किया जाना चाहिए।

कुछ सामान्य मुद्दे

- शिक्षक स्टॉफ की सभी भर्ती राज्य सरकार तथा वि.अ.आ. द्वारा विहित नीतियों के अनुसार शासी निकाय/राज्य सरकार द्वारा की जाएगी।
- विश्वविद्यालय उच्च स्तरीय पाठ्यक्रमों में स्वायत्तत कालेजों के छात्रों के दाखिले के लिए उनके आंतरिक एवं बाह्य दोनों ही मूल्यांकनों पर विचार करेंगे।

- कालेज के अनुवर्ती शिक्षा विभाग के अधीन विशेष आवश्यकता आधारित अल्पकालिक पाठ्यक्रमों का आयोजन करना स्वायत्तत कालेज की प्रमुख गतिविधि होगी। ऐसे पाठ्यक्रमों से कालेज के छात्रों के साथ-साथ बाहरी छात्रों को भी लाभ पहुंचना चाहिए जो उनके लिए अपना नामांकन कराते हैं।

- शिक्षकों द्वारा परियोजनाओं एवं विस्तार कार्य पर लगाया गया समय आयोग द्वारा विहित उनके कार्य भार में सम्मिलित किया जाएगा।

- स्वायत्तत कालेज को विभिन्न निकायों के लिए बैठकों का एक कैलेण्डर तैयार करना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उनके द्वारा की गई सिफारिशों का कार्यान्वयन ऐसी बैठकें न बुलाए जाने के कारण अनावश्यक रूप से प्रदर्शित न हो।

- पाठ्यक्रमों के अनेक प्रकार के मॉड्यूलों में विकसित किए जाने चाहिए ताकि छात्र अपनी सुविधा के अनुसार उन्हें चुन सकें। ऐसे पाठ्यक्रमों से उन्हें अतिरिक्त क्रेडिट प्राप्त करने में मदद मिल सकती है।

- स्वायत्तत कालेजों में शिक्षकों के मूल्यांकन में आवधिक स्व-मूल्यांकन, उनके निष्पादन का संस्थात्मक मूल्यांकन, छात्रों का फीडबैक, अनुसंधान मूल्यांकन एवं उनके मूल्यांकन के अन्य उपर्युक्त प्रकार सम्मिलित हो सकते हैं।

- किसी प्रदत्त क्षेत्र के स्वायत्त कालेज चुने हुए क्षेत्रों-जैसे प्रबंध कौशल, राष्ट्रीय सेवा, प्रवेश-परीक्षा, सेवा परियोजनाओं का अतः कालेज/अंतरा-कालेज तथा शिक्षण कार्यक्रमों के लिए मानव संसाध न में आपसी सहकारिता के लिए एक कन्सोर्टियम बना सकते हैं।

- कालेजों के बीच आमतौर पर एवं स्वायत्त कालेजों में विशेष रूप से क्रेडिट प्रणाली तथा क्रेडिट अन्तरण उचित रूप से अपनाया जा सकता है।

- स्वायत्तत कालेजों को पुनरावर्तक अकादमिक नवाचार क्रियाकलाप आयोजित करने चाहिए जिन्हें छात्रों की रूचि तथा शिक्षा की

NOTES

गुणवत्ता पर बिना समझौता किए सावधानीपूर्वक डिजाईन किया जाता है।

- सरकारी स्वायत्त कालेज के प्राचार्य को बिना राज्य सरकार की पूर्व अनुमति/अनुमोदन के वि.अ.आ. निधियों से क्रय करने का अधिकार प्राप्त होगा।
- स्वायत्त कालेज को प्रत्येक वर्ष मूल विश्वविद्यालय को सम्बद्ध शुल्क प्रदान करने की आवश्यकता नहीं है। स्वायत्त दर्जा प्रदान करते समय एकमुश्त फीस दी जा सकती है। इस प्रकार की फीस मूल विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद् द्वारा निर्धारित की जा सकती है।

अकादमिक परिषद् की संस्तुत संरचना तथा स्वायत्त कालेज में इसके कार्य

I. गठन

1. प्राचार्य (अध्यक्ष)
2. कालेज के सभी विभागाध्यक्ष
3. कालेज में सेवा की वरिष्ठता के आधार पर चक्रानुक्रम से शिक्षण स्टाफ के विभिन्न भागों का प्रतिनिधित्व करने वाले कालेज के चार शिक्षक।
4. कालेज के बाहर से कम से कम चार विशेषज्ञ जो विभिन्न क्षेत्रों जैसे उद्योग, वाणिज्य, विधि, शिक्षा, चिकित्सा, इंजीनियरिंग आदि का प्रतिनिधित्व करते हों। शासी निकाय द्वारा इनका नामांकन किया जाएगा।
5. विश्वविद्यालय द्वारा नामित तीन व्यक्ति
6. प्राचार्य द्वारा नामित एक संकाय सदस्य (सदस्य-सचिव)

II. सदस्यों का कार्यकाल

नामित सदस्यों का कार्यकाल दो वर्ष का होगा।

III. बैठकें

प्राचाय वर्ष में कम से कम एक बार अकादमिक परिषद् की बैठक आयोजित करेगा।

IV. कार्य

उल्लेखित कार्यों के सामान्य स्वरूप पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना अकादमिक परिषद् के निम्न अधिकार होंगे :

1. अध्ययन के पाठ्यक्रमों, अकादमिक विनियमों, पाठ्यचर्या, पाठ्य-विवरण तथा उनके आशोधनों, अनुदेशात्मक एवं मूल्यांकन की व्यवस्थाओं, विधियों तथा उनकी प्रासंगिक प्रक्रियाओं आदि की बावत पाठ्य-समितियों के प्रस्तावों की छानबीन करना तथा आशोधन सहित अथवा अशोधन बिना अनुमोदन करना बशर्ते कि किसी प्रस्ताव से विद्या परिषद् सहमत नहीं है तो कारणों का उल्लेख करते हुए इसे सम्बन्धित अध्ययन बोर्ड के पास मामले पर पुनर्विचार करने के लिए वापस भेजने का अथवा रद्द कर देने का अधिकार होगा।
2. कालेज में अध्ययन के विभिन्न कार्यक्रमों में छात्रों के दाखिले की बावत विनियम बनाना।
3. खेलकूद, पाठ्येत्तर गतिविधियों, खेल के मैदानों एवं छात्रावासों के उपर्युक्त अनुरक्षण तथा कार्यक्षमता बनाए रखने के लिए विनियम से प्रस्तावों की सिफारिश करना।
4. अध्ययन के नए कार्यक्रम आरम्भ करने के लिए शासीनिकाय से प्रस्तावों की सिफारिश करना।
5. छात्रवृत्तियां, अध्येतावृत्तियां, पुरस्कार तथा पदकों की स्थापना के लिए शासी निकाय से सिफारिश करना एवं एतदर्श विनियम बनाना।
6. अकादमिक मामलों के सम्बन्ध में शासी निकाय के सुझावों के विषय में परामर्श देना।
7. शासी निकाय द्वारा प्रदत्त अन्य कार्य करना।

व्यक्तित्व का अर्थ (Meaning of Personality)

व्यक्तित्व अंग्रेजी शब्द पर्सनेलिटी का अनुवाद है। पर्सनेलिटी शब्द लेटिन के शब्द परसोना (Persona) से बना है, जिसका अर्थ होता है, मुखोटा। ग्रीक अभिनेता अभिनय करते समय चरित्र के अनुसार मुखोटा पहना करते थे। इसी के आधार पर व्यक्तित्व का अर्थ बाह्य रंग-रूप, आकार-प्रकार से लिया जाता है। किन्तु व्यक्तित्व के इस अर्थ को सन्तोषप्रद नहीं माना जा सकता, क्योंकि मनुष्य की आकृति से उसके व्यक्तित्व के इस अर्थ को सन्तोषप्रद नहीं माना जा सकता, क्योंकि मनुष्य की आकृति से उसके व्यक्तित्व का बोध नहीं हो सकता। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं, जिनका बाह्य रंग-रूप प्रभावी नहीं था। परन्तु आन्तरिक गुणों में विश्वविख्यात हुए। उदाहरण के लिए सुकरात, अब्राहम लिंकन, अेष्टावक्र गांधीजी, लालबहादुर शास्त्री आदि कई हस्तियां चारित्रिक दृष्टि से अनुकरणीय हुई हैं। अतः बाह्य अकृति, रंग-रूप का व्यक्तित्व से वह सम्बन्ध नहीं हैं, जिसे आम आदमी समझा करता है। रूप तथा कुरुपता देखने की नहीं बल्कि समझने की बात है।

आगे की पंक्तियों में हम व्यक्तित्व के भारतीय दृष्टिकोण से परिचय हासिल कर रहे हैं।

सत, रज, तम

भारतीय साहित्य ने व्यक्तियों की तीन श्रेणियां सत, रज एवं तमोगुण बताई है। महाभारत के अवश्वमेध पर्व में तमोगुणी व्यक्ति के लक्षणों का वर्णन किया गया है। तमोगुणी व्यक्ति में मोह, अज्ञान, त्याग की कमी, कर्मों का निर्णय न कर सकना, निद्रा, गर्व, भय, लोभ, शोक, दोषदर्शन, स्मरण शक्ति का अभाव, परिणाम की न सोचना, नास्तिकता, दुश्चरित्रता, निर्विशेषता (अच्छे बुरे के विवेक का अभाव) हिंसा आदि में प्रवृतता, अकार्य को कार्य समझना, अज्ञान को ज्ञान मानना, शत्रुता, कार्य में मन न लगना, अश्रद्धा मूर्खतापूर्ण विचार, कुटिलता, नासमझी, पाप करना, अज्ञान, आलस्य के कारण शरीर का भारी होना, अजितेन्द्रियता और नीच कार्यों में अनुराग, ये समस्त दुर्गुण तमोगुणी व्यक्ति में होते हैं। इसके अतिरिक्त और जो भी बातें निषिद्ध बताई गई हैं, वे सभी तमोगुण प्रवृत्तियां हैं। तम (अविधा), मोह (अस्मिता), महामोह (राग), क्रोध (सामिस्त्र) तथा अंधतामिस्त्र ये पाँच तरह की तामसिक प्रवृत्तियां हैं।

रजोगुणी व्यक्ति में संताप, मन का प्रसन्न न रहना, बल, शूरता, मद, रोष, व्यायाम, कलह, ईर्ष्या चुगली करना, छेछन भेदन तथा विदारण का प्रयत्न, उग्रता, दूसरों में छिद्र निकालना (दोषदर्शन), निष्ठुरता, निन्दा, स्तुति, स्वार्थ के लिये सेवा, तृष्णा, प्रमा (अपव्यय), परिग्रह ये समस्त रजोगुण के कार्य हैं। द्रोह, ामया, शठता, मान, चोरी, हिंसा, घृणा, दम्भ, दर्प, राग, विषय प्रेम, प्रमोद, धूतक्रीड़ा, वाद-विवाद, स्त्रियों से सम्बन्ध बढ़ाना, नाचगान में आसक्ता ये राजस गुण हैं। मनमाना बर्ताव करना, भोगों की समृद्धि को आनन्द मानना, वर्तमान, भूत और भविष्य पदार्थों की चिन्ता, धर्म, अर्थ एवं काम त्रिवर्ण में लगे रहने वाले व्यक्ति रजोगुणी होते हैं। जिस भाव अथवा क्रिया में लोभ स्वार्थ और आसक्ति का सम्बन्ध हो तथा जिसका फल क्षणिक सुख की प्राप्ति और अन्तिम परिणाम दुःख हो उसे राजस समझना चाहिए।

सतोगुणी व्यक्ति आनन्द, प्रसन्नता, उन्नति, प्रकाश, सुख कृपणता की कमी, निर्भयता, सन्तोष श्रद्धा, क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, क्रोध का अभाव, किसी में दोषदर्शन न करना, पवित्रता, चतुरता, पराक्रम ये सत गुण के कार्य हैं। जिस भाव अथवा क्रिया का सम्बन्ध स्वार्थ से न हो, आसक्ति एवं ममता न हो तथा जिसका फल भगवत्प्राप्ति हो उसे सात्विक जानना चाहिए।

सत, रज तथा तमो गुण-युक्त व्यक्ति पृथक-पृथक नहीं होते। इनका मिश्रण होता है, जिसमें जो गुण अधिक होता है, वह उस गुण से प्रधान माना जाता है। अतः सत, रज, तम इन गुणों की न्यूनता और अधिकता व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करती है।

गुणातीत-गुणातीत व्यक्ति वह होता है, जिसमें सत, रज एवं तम आदि गुणावगुणों से परे होता है। श्रीमदगीता में गुणातीत व्यक्ति के लक्षणों का वर्णन किया गया है।

समदुःख सुखः स्वस्थः समलोश्टाष्मकाज्वनः।
तुल्य प्रयाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्म संस्तुति।।14/24
मानाप्मानयोस्तुल्यस्तुल्यों मित्रारितप क्षयोः।
सवोरम्भ परित्यागी गुणातीतः स उच्चने।।14/25

अर्थात् जो निरन्तर आत्मभाव में स्थित, दुःख-सुख को समान समझने वाला, मिट्‌टी, पत्थर एवं स्वर्ण में समान भाव वाला, ज्ञानी, प्रिय तथा अप्रिय को

एक–सा मानने वाला और निन्दा स्तुति में भी समान भाव रखने वाला होता है। (14/24) जो मान और अपमान में सम है, मित्र और बैरी के पक्ष में भी सम है। सम्पूर्ण आरम्भ में कर्तापन के अभिमान से रहित है, वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है। (14/25) कहने का अभिप्राय यह है जिस व्यक्ति में राग, द्वेष, हर्ष, शोक, अविद्या एवं अभिमान थोड़ा भी शेष हो वह गुणातीत नहीं हो सकता। सतत् अभ्यास से व्यक्ति सत, रज और तम आदि से विमुक्त होकर गुणातीत के पद को हासिल कर सकता हैं अतः मानव का चरम लक्ष्य गुणातीत होना है।

भारतीय साहित्य में व्यक्ति के बाह्य रूपाकृति के वर्णन तो मिलते हैं किन्तु उसे व्यक्तित्व के साथ युक्तिकृत नहीं किया गया है अर्थात् बह्याकृति को व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लेशमात्र भी महत्व नहीं दिया गया है, जिसका उदाहरण ऋषि अष्टावक्र ने पिता की राज्य सभा में हुए प्रथम वार्तालाप से स्पष्ट है। आगे हम पश्चिमी विद्वानों द्वारा व्यक्तित्व की दी गई परिभाषाओं को प्रस्तुत कर वर्तमान काल में व्यक्तित्व के अर्थ से परिचित होने का प्रयास करेंगे।

व्यक्तित्व की परिभाषाएँ (Definitions of Personality)

पश्चिमी मनोवैज्ञानिक द्वारा व्यक्तित्व की परिभाषाओं में से कुछ निम्न प्रकार हैं–

आ.एस. वुडवर्थ के अनुसार– "व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार की समग्र गुणात्मकता है।"

"Personality is the entire qualitativeness of person." – Woodworth

जी. डबलू. आलोर्ट के अनुसार– "व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोदैहिक तंत्र का गतिशील संगठन है जिसे उसके पर्यावरण से सामंजस्य स्थापित के लिए जरूरी शीलगुणों के एक संकलित नमूने के रूप में परिभाषित कर सकते हैं।"

"Personality is the dynamic organization within the individual of those Psycho-Physical systems that determine his unique adjustment to his environment." – Allport

गिल्फोर्ड के अनुसार– "हम व्यक्तित्व को शीलगुणों के एक संकलित नमूने के रूप में परिभाषित कर सकते हैं।"

"We may define personality as sum inter grated pattern of traits." – Guilford

ड्रेवर के अनुसार- "व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग व्यक्ति के शारीरिक मानसिक, नैतिक एवं सामाजिक गुणों के सुसंगठित तथा गत्यात्मक संगठन के लिये किया जाता है, जिसे वह अन्य व्यक्तियों के साथ अपने सामाजिक जीवन का आदान-प्रदान करता है।"

"Personality is the term used for the integrated and dynamic organization of the physical, mental and social qualities of the individual as that manifest itself to other people, in the give and take of social life." – Drever

शिक्षा परिभाषा कोश-केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के शब्दावली आयोग की परिभाषा-

1. "व्यक्ति के ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक तथा शारीरिक विशेषकों (Traits) का एकीकृत संगठन जैसा कि वह अन्य व्यक्तियों को दिखाई देता है।"
2. "व्यक्ति के वे शारीरिक एवं प्रभावशाली गुण जो संलिष्ट रूप से अन्य व्यक्तियों को आकर्षित करते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाएं जो अर्थ प्रकट करती है, उन्हें निम्नलिखित बिन्दुओं के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है-

1. व्यक्ति के व्यवहार की समग्रता,
2. जन्मजात तथा अर्जित स्वभावों का योग,
3. व्यक्ति की संरचना, व्यवहार के रूप अभिरुचियों, अभिक्षमताओं (Aptitude) योग्यताओं, क्षमताओं (Capacity) का विशिष्ट संगठन,
4. पर्यावरण से सामंजस्य
5. शीलगुणों (Traits) के समग्र रूप
6. व्यक्ति के गुणों (सामाजिक, शारीरिक, मानसिक, नैतिक) का समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ आदान-प्रदान।

NOTES

उपर्युक्त समस्त बिन्दुओं को गैरीसन (Garrison) ने इस प्रकार व्यक्त किया है-

"व्यक्तित्व सम्पूर्ण व्यक्ति है, जिसमें उसकी अभिक्षमताएं, क्षमताएं एवं सभी भूतकालीन अधिगम सम्मिलित हैं और इन समस्त कारकों तथा संगठन तथा संश्लेषण उसके व्यवहारगत प्रतिमाओं, विचारों, आदर्शों, मूल्यों तथा अपेक्षाओं में अभिव्यक्त होता है।"

व्यक्तित्व का सम्प्रयय (Concept of Personality)

जैसा कि गैसीसन का मत है कि "व्यक्तित्व सम्पूर्ण व्यक्ति है। जिसमें उसकी अभिक्षमताएं, क्षमताएं एवं सभी भूतकालीन अधिगम सम्मिलित हैं और इन सभी कारकों तथा संगठन का संश्लेषण उसके व्यवहारगत प्रतिमानों, विचाों, आदर्शों, मूल्यों एवं अपेक्षाओं में अभिव्यक्त होता है।" इन सबका विकास बाल्यकाल से प्रारम्भ होकर व्यक्ति की अन्तिम अवस्था तक क्रियात्मक पहलू, सामाजिक पहलू एवं कारण सम्बन्धी पहलू। ये पहलू मानव की भावुकता, शान्ति, विनोद प्रियता, मानसिक योग्यता, दूसरों के द्वारा डाले जाने वाले असर, व्यक्ति के द्वारा किये जाने वाले कार्यों के प्रति लोगों की प्रतिक्रियाओं, व्यक्तियों द्वारा डाले जाने वाले प्रभावों, व्यक्ति के स्वयं के द्वारा स्वीकार विचार, भावनाएं तथा अभिवृत्तियों आदि। यद्यपि ये पहलू व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं किंतु ये सभी अथवा कोई एक व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करे यह सम्भव नहीं है।

बीसेन्ज तथा बीसेन्ज के शब्दों में- "व्यक्तित्व मनुष्य की आदतों, अभिवृत्त्यिों एवं विशेषताओं का संगठन है। यह जैविक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारणों के द्वारा संयुक्त प्रभावों से निर्मित होता है।" व्यक्तित्व के निर्माण में कई तथ्य तथा परिस्थितियां प्रभावकारी होती है। प्रतुख परिस्थितियां इस प्रकार हैं।

आत्मचेतना, सामाजिकता, सामन्जस्य स्थापन, लक्ष्य प्राप्ति, इच्छाशक्ति, शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, गुणों में समरसता तथा विकास लगातार होना।

यहाँ आत्म चेतना का अर्थ है कि लोग मेरे बारे में क्या सोचते हैं तथा उसकी सोच को मैं किस प्रकार लेता हूँ। यदि लोग मेरे बारे में अच्छा सोचते हैं तो मुझे और अधिक अच्छा बनने की प्रेरणा मिलती है यदि कुछ सुधारने के

लिए प्रेरणा लेता हूँ अथवा अपने अन्दर हीनभाव का विकास करता हूँ इसी प्रकार सामाजिकता का होना व्यक्तित्व विकास के लिए बहुत आवश्यक है। समाज से कट कर रहने का अर्थ है- व्यक्तित्व के विकास में अवरोध आना सामन्जस्य स्थापन का अर्थ है अपने से सम्बंधित व्यक्तियों की भावनाओं को समझना उनके अनुकूल कार्य करना। व्यक्ति अपने लक्ष्यों के प्रति कितना सजग है यह व्यक्तित्व निर्माण का एक महत्वपूर्ण पहलू है। जिस मनुष्य की इच्छा शक्ति कुण्ठित हो गई है वह व्यक्ति न तो अपने आपके लिए उपयोगी हो सकता है न वह समाज के लिए उपयोगी होगा। व्यक्तित्व के विकास में व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है हमारी मानसिक, शारीरिक, नैतिक, आध्यात्मिक संवेगात्मक शक्तियों में समरसता तथा एकीकरण होना व्यक्ति विकास के लिए जरूरी है। क्योंकि व्यक्ति का सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक तथा संवेगात्मक विकास उसकी उम्र के साथ-साथ वृद्धिमान होना रहता है। अतः व्यक्तित्व में परिवर्तन भी होना आवश्य सम्भावी है।

उपर्युक्त के आधार पर हम कह सकते हैं कि व्यक्तित्व का संगठन व्यक्ति की परिस्थितियों, सुविधाओं तथा स्वयं की इच्छा के अनुसार परिवर्तनशील रहता है।

व्यक्तित्व का प्रकारानुसार वर्गीकरण
(Classification of Personality - Type Approach)

प्रकारों के आधार पर व्यक्तित्व का अध्ययन, व्यक्तित्व के अध्ययन के आरम्भिक काल में किया गया। आजकल प्रकारात्मक वर्गीकरण के स्थान पर शीलगुणों के आधार पर किये गये वर्गीकरण को अधिक माना जा रहा हैं फिर भी इनकी ऐतिहासिकता एवं महत्व को हम नजरअन्दाज नहीं कर सकते। आगे प्रकार के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. हिपोक्रेट्स (Hippocrates)

हिपोक्रेट्स को पश्चिमी जगत में चिकित्सा जगत का पिता कहा जाता है। ये यूनानी चिकित्सक थे। हिप्पोक्रेट्स ने (460-370 वर्ष ईस्वी पूर्व) शरीर-द्रव्यों के आधार पर व्यक्तित्व को चार श्रेणियों में विभाजित किया। ये चार प्रकार के द्रव्य हैं- पीला पित्त (Yello Bile), काला पित्त (Black Bile), रक्त

NOTES

(Blood) तथा कफ (Phlegm)। प्रत्येक व्यक्ति में इन चार द्रव्यों में से किसी एक द्रव्य की प्रमुखता रहती है। इस अधिक द्रव्य के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व निर्धारित होता है। इन द्रव्यों के आधार पर व्यक्ति का संक्षिप्त विवरण सारणी रूप में प्रस्तुत है।

सारणी - हिपोक्रेट्स का वर्गीकरण

प्रकार	मुख्य गुण	अन्य विशेषताएँ
रक्त	आशावादी (Sanguine)	आशावादी, उत्साही, प्रसन्नचित, सक्रिय
काला पित्त	विशादी (Melancholic)	उदास, कुंठित, निराशावादी
पीला पित्त	क्रोधी (Choleric)	आक्रामक, चिड़चिड़ा कोपशील शीत प्रकृति
कफ	श्लेष्मिक (Phelegmatic)	प्रकृति, निष्क्रिय, दुर्बल, उत्तेजनाविहीन

2. **आयुर्वेद** - आयुर्वेद में व्यक्ति की प्रकृति को तीन प्रकार में वर्गीकृत किया गया है ये भेद हैं-

   i. वात-प्रकृति,

   ii. पित्त-प्रकृति, तथा

   iii. कफ-प्रकृति

वात-प्रकृति के व्यक्ति रुक्ष, कृश और पतले शरीर वाले होते हैं, उनका स्वर फटा हुआ तथा मन्द होता है। उन्हें नींद कम आती है। शरीर चंचल होता है। वह व्यक्ति अधिक बोलता है। कार्य को जल्दी से बिना सोचे-समझे करता है। इन्हें क्रोध तथा प्रेम शीघ्रता से हो जाता है। शीत सहन करने में असमर्थ रहता है। हाथ पैर ठण्डे रहते हैं। केश, नख, रोम, दन्त आदि कठोर रहते हैं। सोते समय आंखें अधखुली रहती है। सोते हुए दांत किटकिटाते हैं। इन्हें

आकाश में उड़ने के, वृक्षों को लांघने के स्वप्न आते हैं ये कलह प्रिय, गीत वाद्य, नृत्य, हास्य एवं विलासप्रिय होते हैं।

पित्त प्रकृति के व्यक्तित्व के अंगों में सुकुमारता होती है। शरीर का रंग पाण्डु, शरीर पर तिल और मस्ते अधिक होते हैं। भूख-प्यास अधिक लगती है, बाल शीघ्र ही सफेद हो जाते हैं तथा उड़ जाते हैं, ये क्लेश को सहन नहीं कर पाते, पराक्रमी, मेधावी, प्रतिभा-सम्पन्न होते हैं कम उम्र में शरीर पर झुरियां पड़ जाती है। पसीना अधिक आता है, मुख, कांख, केश आदि दुर्गन्ध आती है, दांत पीले होते हैं, इन्हें आग लगने, तड़ित गिरने के एवं अमलताश तथा फ्लाश आदि रक्त वर्ण के पुष्पों वाले स्वप्न आते हैं। ये मध्य आयु मध्य बल, मध्य ज्ञान, मध्य धन एवं साधन वाले होते हैं।

कफ प्रकृति वाले व्यक्ति चिकने शरीर वाले, मधुरभाषी, सुडौल शरीर तथा इनका स्वभाव गम्भीर, सहनशील और धैर्ययुक्त होता है, पसीना कम आता है, गर्मी कम लगती है, प्यास कम लगती है। वाणी में मधुरता तथा स्पष्टता होती है। ये शान्त, सौम्य, धनवान विद्वान, ओजस्वी और दीर्घायु होते हैं।

वात, पित्त, कफादि प्रकृति के कारण व्यक्ति का व्यवहार निर्धारित होता है। इसी के आधार पर चिकित्सा की जानी चाहिए। कुछ व्यक्तियों में द्विदोषज प्रकृति होती है। व्यक्तित्व की प्रकृति में बदलाव नहीं होता है, यदि प्रकृति में अचानक परिवर्तन आ जाये तो उसे अरिष्ट सूचक माना जाता है। मनस प्रकृति अथवा महा प्रकृति अर्थात् सत, रज तथा तम गुणों में परिवर्तन यज्ञ, ज्ञान, तप के द्वारा सत, रज, तम गुणों में परिवर्तन सम्भव है। परन्तु वात, पित्त और कफ में परिवर्तन नहीं होता।

3. क्रेशमर (Kretchmers) वर्गीकरण

क्रेशमर ने व्यक्तित्व को चार प्रकारों में विभाजित किया। ये मानसिक रोग चिकित्सक थे। इनका अध्ययन मनोविदलता (Schizophrenia) उत्साह विषाद (Manic Depressive) मनोविक्षिप्ता (Psychosis) के रोगियों के लक्षणों पर आधारित था। शरीर रचना के आधार पर चित्तवृत्ति का वर्गीकरण सारणी में प्रस्तुत है-

NOTES

सारणी : क्रेश्मर का वर्गीकरण

क्रम	प्रकार	स्वभाव	विशेषताएँ
1.	स्थूलकाय	सइक्लोआइड	छोटे, मोटे, गोलाकार, गर्दन मोटी, टांग भुजाएं मोटी, प्रसन्नचित, मिलनसार, आराम पसन्द, मित्र संख्या अधिक, दुःख-सुख से शीघ्र प्रभावित।
2.	कृशकाय	सिजोइड	कमजोर, पतले, हाथ-पैर पतले लम्बे, दुर्बल, आत्मकेन्द्रित, एकान्तप्रिय, चिड़चिड़ापन, कल्पनाशील, भावना प्रधान, शरीर भार कम, महत्वाकांक्षी भावुक, समाज के नियमों का पालन करने वाले, अन्तर्मुखी।
3.	पुष्टकाय	–	सुन्दर, वक्षचौड़ा, पतली कमर, कंधा चौड़ा, सीना उभरा, निर्भीक, जोश, साहस, उत्साह, सुखदुःख का प्रभाव कम, सामंजस्यवादी प्रसन्नचित समाज में प्रतिष्ठित।
4.	मिश्रितकाय	–	मिश्रित लक्षण

क्रेश्मर का वर्गीकरण मनोरोगियों की दृष्टि से तो उचित माना जाता है किन्तु सामान्य व्यक्तियों की व्याख्या के लिए यह सिद्धान्त ज्यादा उपयोगी नहीं माना जाता।

4. शेल्डन का वर्गीकरण (Sheldon's Classification)

शेल्डन का व्यक्तित्व वर्गीकरण शरीर रचना पर आधारित है। इसका संक्षिप्त विवरण सारणी में प्रस्तुत है–

सारणी : शेल्डन का व्यक्तित्व वर्गीकरण

क्रम	प्रकार	स्वभाव	विशेषताएँ
1.	गोलाकार	Viserotonic Edomorphy	मोटे, भारी गोलाकार, आराम, पसन्द, सामाजिक, सक्रियता मिलनसार, सरल, स्वभाव, निद्रा अधिक, सहिष्णु, खाने के शौकीन, शिष्टाचार प्रेमी, चिन्ताकम, रंजिश न मानने वाले, हमदर्द।

2.	आयताकार	Sometotonic	स्वस्थ, गठीला शरीर, साहसी, परिश्रमी, लक्ष्योन्मुख, समर्पित, कर्मठ, महत्वाकांक्षी, स्वास्थ्य के प्रति सतर्क, दमदार आवाज, संवेगात्मक रूप से स्थिर, व्यवहार परिपक्व
3.	लम्बाकार	Cerebratonic Extomorphic	दुबले, लम्बे, शीघ्र थकान, बाहरी में जगत् कम रुचिशील, संयमी, मानसिक कार्यों में रुचि, आत्मकेन्द्रित, शीघ्र घबराना, अन्तर्मुखी, कलात्मक गोपनीयता रखने वाले, शीघ्र उत्तेजित, शर्मीलापन, संकोची।

शैल्डन का मानना है कि सन्तुलित व्यक्तित्व वह है, जिसमें तीनों वर्गों के कम से कम चार-चार गुण पाये जायें।

5. युंगका वर्गीकरण (Jung's Classifican)

कार्ल युंग (1875-1961) ने 1921 में व्यक्तित्व का वर्गीकरण अन्तर्मुखी (Introvert) तथा बहिर्मुखी (Extrovert) के रूप में किया। इनके वर्गीकरण को मनोवैज्ञानिक प्रकार भी कहा जाता है, क्योंकि इनका वर्गीकरण व्यवहार की प्रवृत्तियों पर आधारित है।

सारणी : युंग का व्यक्तित्व वर्गीकरण

क्रम	प्रकार	विशेषताएँ
1.	अन्तर्मुखी	आत्मकेन्द्रित, लज्जालु, संकोची, दब्बू, विचार प्रधान, निर्णय में विलम्ब, भविष्य के प्रति चिन्तित, सामाजिक कामों के प्रति कम दिलचस्पी, कल्पनाशील, आलोचना से घबराना, एकाकी (isolatted), शान्त प्रकृति।
2.	बहिर्मुखी	बाह्यकेन्द्रित िमिलनसार, असंकोची, दबंग, वाक्पटु, व्यवहार कुशल, तुरन्त निर्णय, वर्तमान जीवी, सामाजिक, वास्तविक जगत में रहने वाले, आलोचनाओं की परवाह नहीं करते, समूह में रहने वाले, क्रियाशील।

NOTES

3.	उभयमुखी	कुछ व्यक्ति न तो अन्तर्मुखी होते हैं न ही बहिर्मुखी होते हैं। Neyman & Yacorzynki (1942) ने एक नया वग्र बनाया, जिसे उभयमुखी कहा। इनमें दोनों वर्गों की विशेषताएँ पाई जाती हैं।

6. अडानो का लोकतांखिक बनाम निरंकुश व्यक्तित्व (Adano's Democratic versus Authoritarian Personality)

अडानो (1950) तथा साथियों ने व्यक्तित्व को लोकतांत्रिक एवं निरंकुश दो प्रकारों में विभक्त किया। इनकी विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. **लोकतांत्रिक** - मन (1967) के अनुसार लोकतांत्रिक व्यक्तित्व वाले व्यक्ति में सामूहिकता, भाईचारा, पारस्परिक सहयोग, अधिकारों का विकेन्द्रीयकरण जैसे गुण पाये जाते हैं।
2. **निरंकुश** - निरंकुश व्यक्ति में यौन के चिन्तक, धर्मभीरुता विध्वंसक, कटुता, कठोर, अंधविश्वास एवं सनकी होते हैं।

व्यक्तित्व का शीलगुण सिद्धान्त (Trait Approach of Personality)

कुछ मनोवैज्ञानिक का मानना है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को कुछ शीलगुण निर्धारित एवं नियंत्रित करते हैं शीलगुण सिद्धान्त का अध्ययन करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि शीलगुण क्या है? शीलगुण की कुछ परिभाषाएं निम्न प्रकार हैं-

क्रेच तथा क्रचफील्ड (Krech & Crutchfield)- शीलगुण, व्यक्ति की स्थायी विशेषता है। जिसके द्वारा व्यक्ति का व्यवहार विभिन्न परिस्थितियों में लगभग समान रहता है।

डी. एन. श्रीवास्तव- शीलगुण किसी परिस्थिति विशेष में सामान्यीकृत व्यवहार करने का तरीका है, जो अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं। इनके द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में लगभग एक जैसा व्यवहार होता है। शीलगुण अपूर्व (Unique) तथा सार्वभौमिक होते हैं, ये व्यक्तित्व के सम्पूर्ण व्यवहार का प्रमुख आधार हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि शीलगुण-

1. व्यवहार करने का तरीका है।
2. अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं।
3. परिस्थितियां बदलने पर भी शीलगुण पहले जैसे होते हैं।
4. ये व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार का प्रमुख आधार होते हैं।

शीलगुणों के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्त इस प्रकार हैं-

आलपोर्ट का शीलगुण सिद्धान्त (Allport's Trait Approach)

आलपोर्ट ने शीलगुणों को दो प्रकारों से विभक्त किया है-

1. **सामान्य शीलगुण** – एक समाज या संस्कृति में समग्र रूप से पाये जाते हैं तथा उस संस्कृति या समाज की पहचान होते हैं। इसके लिये हम न्यू गुयाना के आरापेश पर्वतों पर रहने वाली जनजाति के व्यवहार का उदाहरण दे सकते हैं, जिनका अध्ययन महान् समाजशास्त्री मार्गरेट मीड ने 1935 में किया था। उन्होंने बताया था कि आरापेश जनजाति के स्त्री-पुरुष में शिष्टता, नम्रता, शान्तचित्तता के गुण होते हैं। इनमें सहयोग, सद्भावना, सहानुभूति और प्रेम जैसे गुण पाये जाते हैं, जबकि न्यू गुयान की ही एक अन्य जनजाति जिसे मुन्डगमार जनजाति कहते हैं कि स्त्री और पुरुष अहंकारी, ईर्ष्यालु, शंकालु, प्रतिद्वन्द्वी होते हैं। इनका स्वभाव आक्रामक होता है।

   भारत के लोगों का सामान्य गुण सर्वधर्म सद्भाव है। यहाँ के निवासियों में समस्त धर्मों के प्रति श्रद्धा भाव पाया जाता है।

2. **वैयक्तिक शीलगुण** – व्यक्तिक शीलगुणों को आलपोर्ट ने तीन भागों में विभक्त है-

   i. **मूल शीलगुण** – इन वैयक्तिक शीलगुणों के कारण व्यक्ति चर्चा में आ जाता है। यह शीलगुण बहुत कम संख्या में होते हैं फिर भी इनका असर विशिष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिए महात्मा गांधीजी ने व्यवहार के दो शीलगुणों ने उन्हें विश्व स्तर पर सम्मानीय बना दिया। ये शीलगुण थे- सत्य और अहिंसा।

NOTES

ii. **केन्द्रीय शीलगुण** – आलपोर्ट ने इस तरह के शीलगुणों को व्यक्ति के व्यवहार की निर्माण सामग्री (ईंट) माना है एवं व्यक्ति में इनकी संख्या 5 से 10 मानी है। समय पालन, सामाजिकता तथा आत्मविश्वास आदि शीलगुण केन्द्रीय शीलगुण हैं।

iii. **द्वितीयक शीलगुण** – इन शीलगुणों को व्यक्ति बहुत ज्यादा महत्व नहीं देकर सामान्य महत्व देता है। कुछ व्यक्तियों में जो केन्द्रीयशील गुण होते हैं, दूसरों के लिये वे द्वितीयक शीलगुण हो सकते हैं।

कैटेल का शीलगुण सिद्धान्त (Cattell's Trait Approach)

आर. वी. कैटेल ने शीलगुणों के आधार पर व्यक्तित्व सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इन्होंने स्रोत के आधार पर शीलगुणों को दो श्रेणियों में विभक्त किया–

1. **पर्यावरण प्रभावित शीलगुण** – ये शीलगुण पर्यावरण से प्रभावित होते हैं। अर्थात् जैसे पर्यावरण में मनुष्य रहेगा उसी के अनुकूल शीलगुणों को ग्रहण करेगा।

2. **स्वाभाविक शीलगुण** – वे शीलगुण जो पर्यावरण में प्रभावित नहीं होते हैं। बल्कि व्यक्ति की आनुवंशिकता से प्रभावित होते हैं।

कैटेल ने ही शीलगुणों के अन्य तरह से वर्गीकृत करते हुए दो प्रकार के शीलगुण बताये–सतही और मूल शीलगुण।

1. **सतही शीलगुण (Surface Trait)** – वे शीलगुण जो कि व्यक्ति दैनिक क्रियाओं से परिलक्षित होते हैं, जैसे–सत्यनिष्ठा (Integrity), प्रसन्नचिन्ता एवं परोपकारिता।

2. **मूल शीलगुण (Source Trait)** – व्यक्ति की संरचना में कैटेल ने मूल शीलगुणों को महत्वपूर्ण माना ये शीलगुण सतही शीलगुणों की अपेक्षा संख्या में कम होते हैं। इनका अवलोकन प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिये मित्रता शीलगुण अनेक एक सतही शीलगुणें के मेल से बनता है जैसे सामुदायिकता, निस्वार्थता और हास्य आदि।

कैटेल ने 16 मूल शीलगुणों का चुनाव व्यक्तित्व मापन के लिया किया, जिसे 16 व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली (16 Personality Factor Questionnaire)

कहा जाता है इसमें प्रयुक्त शीलगुण आगे प्रस्तुत सारणी में प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

सारणी : कैटल का शीलगुण वर्गीकरण

क्रम	कारक	शीलगुणों के नाम	
		निम्न	उच्च
1	A	आत्मकेन्द्रित	उदार
2	B	कम बुद्धि	अधिक बुद्धि
3	C	संवेगी	स्थिर
4	E	विनम्र	प्रभुत्ववादी
5	F	गम्भीर	प्रसन्नचित्त
6	G	स्वार्थ साधक	सद्विवेकी
7	H	लज्जालु	साहसी
8	I	कठोर	संवेदनशील
9	L	विश्वास करने वाला	शंकालु
10	M	व्यावहारिक	काल्पनिक
11	N	स्पष्टवादी	चालाक
12	O	आत्मविश्वस्त	आशंकित
13	Q1	रूढ़िवादी	प्रगतिशील
14	Q2	समूहाश्रित	आत्माश्रित
15	Q3	अनियंत्रित	नियंत्रित
16	Q4	विश्रांत	तनावयुक्त

नीओ- पी.आई.आर. वर्गीकरण (Neo- P.I.R. Classification)

शीलगुणों की पांच विमाओं के आधार पर कोस्टामैक्क्रे ने एक नवव्यक्तित्व अनुसूची-संशोधित (neo-Personality Inventory Revised) का निर्माण किया। इसकी 5 विमाओं में (1) बहिर्मुखता, (2) सहमतिजन्यता, (3) कर्त्तव्यनिष्ठता, (4) मनस्तापी और (5) अनुभूतियों का खुलापन, में वर्गीकृत किया।

आइजेनक वर्गीकरण (Eysenck's Classivication)

आइजेनक ने व्यक्तित्व की तीन विमाओं का वर्णन किया है। इनका यह अध्ययन 10,000 व्यक्तियों पर आधारित है। इनके अध्ययन में सामान्य और मनस्तापी सम्मिलित थे। इनके वर्गीकरण में व्यक्तित्व प्रकार निम्न हैं–

1. **अन्तर्मुखता बहिर्मुखी–** इन्होंने इन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी को भिन्न–भिन्न न मानकर एक ही प्रकार के दो छोर माना है। उदाहरण के रूप में अन्तर्मुखी दण्ड प्रभावित होते हैं, जबकि बहिर्मुखी पुरस्कार से प्रभावित होते हैं अन्तर्मुखी किसी सामाजिक निषेध को सरलता से स्वीकार कर लेते हैं, जबकि बहिर्मुखी देर से स्वीकार करते हैं।

2. **स्नायु विकृति एवं स्नायुविक स्थिरता–** स्नायु विकृत व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में संवेगात्मक नियंत्रण कम होता है, जबकि स्नायुविक स्थिर व्यक्तियों में संवेगात्मक नियंत्रण ज्यादा होता है। इनमें से कुछ व्यक्ति स्नायु विकृति के चरम छोर पर होते हैं, जबकि कुछ व्यक्ति स्नायु स्थिरता के दूसरे छोर पर होते हैं जैसे– विकृति कम होती चली जाती है, स्थिरता बढ़ती जाती है।

3. मनोविकृतता, परअहम् की क्रियाएं– मनोविकृतता एवं पराहम् ये दो छोर हैं तथा इनका एक छोर–मनोविकृतता के छोर पर मनोविक्षिप्तता के लक्षण पाये जाते हैं, जैसे– क्षीणएकाग्रता क्षीणस्मृति, असंवेदनशीलता तथा क्रूरता आदि, जबकि दूसरे छोर पर उच्च एकाग्रता, उच्चस्मृति संवेदनशीलता और अक्रूरता होते हैं।

शीलगुण उपागम की समालोचना

शीलगुणों का व्यक्तित्व के मापन में अपना महत्वपूर्ण स्थान है, किन्तु शीलगुणों के आधार पर व्यक्तित्व की व्याख्या असरकारी रूप में नहीं की जा सकती। इस सम्बन्ध में जो आलोचनाएं की जा सकती हैं। उन्हें संक्षेप में निम्नलिखित बिन्दुओं में प्रस्तुत किया जा सकता हैं–

1. शीलगुणों की संख्या के बारे में एकमतता नहीं है।

2. समस्त शीलगुणों के विरोधी शीलगुण स्पष्ट नहीं हैं।

3. शीलगुणों में परिस्थितिजन्य कारकों को महत्व नहीं दिया गया है।
4. व्यक्तित्व सम्बन्धी शीलगुणों के विकास के बारे में जानकारी नहीं दी गई हैं।

व्यक्तित्व के अध्ययन के प्रमुख उपागम

व्यक्तित्व के अध्ययन में अभिरुचि रखने वाले मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व में व्यक्तिगत भिन्नताओं की प्रकृति एवं उत्पत्ति के बारे में कुछ प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया हैं आपने देखा होगा कि एक ही परिवार में दो बच्चों के व्यक्तित्व का विकास आश्चर्यजनक रूप से अलग प्रकार का होता है। न केवल वे बच्चे शारीरिक दृष्टि से भिन्न होते हैं बल्कि विभिन्न स्थितियों में वे भिन्न प्रकार का व्यवहार भी प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार के प्रेक्षण प्रायः कुतूहल या जिज्ञासा उत्पन्न कर हमें यह प्रश्न पूछने पर बाध्य करते हैं कि "क्यों ऐसा होता है कि कुछ लोग किसी स्थिति विशेष में अन्य दूसरे लोगों से भिन्न प्रतिक्रिया करते हैं? क्यों ऐसा होता है कि कुछ लोग साहसिक कार्यों में आनंद का अनुभव करते हैं जबकि कुछ दूसरे लोग पढ़ना, टेलीविजन देखना तथा ताश खेलना पसंद करते हैं? क्या इस प्रकार की भिन्नताएँ जीवन भर स्थिर रूप से बनी रहती हैं अथवा ये मात्र अल्पकालिक एवं स्थिति-विशिष्ट होती हैं?

व्यक्तियों के व्यवहारों में पाई जाने वाली भिन्नता तथा संगति को समझने के लिए एवं उसकी व्याख्या करने के लिए अनेक उपागम एवं सिद्धांत विकसित किए गए हैं। ये सिद्धांत विकसित किए गए हैं। ये सिद्धांत मानव व्यवहार के विभिन्न मॉडलों पर आधारित हैं। प्रत्येक सिद्धांत व्यक्तित्व के कुछ पक्षों पर ही प्रकाश डालता है, सभी पक्षों पर नहीं।

मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के प्ररूप और विशेषांक (शीलगुण) उपागमों के बीच विभेद किया है। प्ररूप उपागम (type approach) व्यक्ति के प्रेक्षित व्यवहारपरक विशेषताओं के कुछ व्यापक स्वरूपों का परीक्षण कर मानव व्यक्तित्व को समझने का प्रयास करता है। प्रत्येक व्यवहारपरक स्वरूप व्यक्तित्व के किसी एक प्रकार को इंगित करता है जिसमें उस स्वरूप की व्यवहारपरक विशेषता की समानता के आधार पर व्यक्तियों को रखा जाता है। इसके विपरीत, विशेषक उपागम (trait approach) विशिष्ट मनोवैज्ञानिक गुणों पर बल देता है जिसके आधार पर व्यक्ति संगत तथा स्थिर रूपों में भिन्न होते

हैं। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति कम शर्मीला हो सकता है जबकि दूसरा अधिक; एक व्यक्ति अधिक मैत्रीपूर्ण व्यवहार कर सकता है और दूसरा कम। यहाँ "शर्मीलापन" और "मैत्रीपूर्ण व्यवहार" विशेषकों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसके आधार पर व्यक्तियों में संबंधित व्यवहारपरक गुणों या विशेषकों की उपस्थिति या अनुपस्थिति की मात्रा का मूल्यांकन किया जा सकता है। अंत:क्रियात्मक उपागम के अनुसार स्थितिपरक विशेषताएँ हमारे व्यवहारों को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। लोग स्वतंत्र एवं आश्रित प्रकार का व्यवहार करेंगे यह उनके आंतरिक व्यक्तित्व विशेषक पर निर्भर करता नहीं करता है बल्कि इस पर निर्भर करता है कि किसी विशिष्ट स्थिति में बाह्य पुरस्कार अथवा खतरा उपलब्ध है कि नहीं। भिन्न-भिन्न स्थितियों में विशेषकों को लेकर संगति अत्यंत निम्न पाई जाती है। बाज़ार में, न्यायालय में अथवा पूजास्थलों पर लोगों के व्यवहारों का प्रेक्षण पर स्थितियों के अप्रतिरोध्य प्रभाव को देखा जा सकता है।

प्रारूप उपागम

जैसा कि हमने ऊपर स्पष्ट किया है कि व्यक्तित्व के प्ररूप (टाइप) समानताओं पर आधारित प्रत्याशित व्यवहारों के एक समूच्चय का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्राचीन काल से ही लोगों को व्यक्तित्व के प्ररूपों में विभाजित करने का प्रयास किया गया है। ग्रीक चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स (Hippocrates) ने एक व्यक्तित्व का प्ररूपविज्ञान प्रस्तावित किया जो फ्लूइड अथवा ह्यूमर पर आधारित है। उन्होंने लोगों को चार प्रारूपों में बाँटा है (जैसे- उत्साही, श्लैष्मिक, विवादी तथा कोपशील)। प्रत्येक प्रारूप विशिष्ट व्यवहारपरक विशेषताओं वाला होता है।

भारत में भी एक प्रसिद्ध आयुर्वेदिक ग्रन्थ चरक संहिता ने लोगों को वात, पित्त एवं कफ इन तीन वर्गों में तीन ह्यूमरल तत्वों, जिन्हें त्रिदोष कहते हैं, के आधार पर बाँटा है। इनमें से प्रत्येक प्ररूप मनुष्य के स्वभाव अथवा उसकी प्रकृति को बताता है। इसके अतिरिक्त त्रिगुण (अर्थात सत्व, रजस तथा तमस) के आधार पर भी एक व्यक्तित्व प्ररूपविज्ञान प्रतिपादित किया गया है। सत्व गुण के अंतर्गत स्वच्छता, सत्यवादिता, कर्तव्यनिष्ठा, अनासक्ति, अनुशासन आदि गुण आते हैं। रजस गुण के अंतर्गत तीव्र क्रिया, इंद्रिय-तुष्टि की इच्छा, असंतोष, दूसरों के प्रति असूया (ईर्ष्या) तथा भौतिकवादी

मानसिकता आदि गुण आते हैं। तमस गुण के अंतर्गत क्रोध, घमंड, अवसाद, आलस्य, असहायता की भावना आदि गुण आते हैं। ये तीनों ही गुण प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न मात्रा में विद्यमान रहते हैं। इनमें से किसी एक तथा दूसरे गुण की प्रभाविता एक विशिष्ट प्रकार के व्यवहार को प्रेरित करती है।

NOTES

मनोविज्ञान के शेल्डन (Sheldon) द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के प्ररूप सर्वविदित हैं। शारीरिक बनावट स्वभाव को आधार बनाते हुए शेल्डन ने गोलाकृतिक आयताकृतिक और लंबाकृतिक जैसे व्यक्तित्व के प्ररूप को प्रस्तावित किया है। गोलाकृतिक प्ररूप वाले व्यक्ति मोटे मृदुल एवं गोल होते हैं। स्वभाव से वे लोग शिथिल और सामाजिक या मिलनसार होते हैं। आयताकृतिक प्ररूप वाले लोग मज़बूत पेशीसमूह एवं सुगठित शरीर वाले होते हैं जो देखने में आयताकार होते हैं, ऐसे व्यक्ति ऊर्जस्वी एवं साहसी होते हैं। लंबाकृतिक प्ररूप वाले पतले, लंबे एवं सुकुमार होते हैं। ऐसे व्यक्ति कुशाग्रबुद्धि वाले, कलात्मक और अंतर्मुखी होते हैं।

यहाॅ ध्यातव्य है कि व्यक्तित्व के ये शारीरिक प्ररूप सरल लेकिन व्यक्तियों के व्यवहारों की भविष्यणाणी करने में सीमित उपयोगिता वाले हैं। वस्तुतः व्यक्तित्व के ये प्ररूप रूढ़धारणाअें की तरह हैं जो लोग उपयोग करते हैं।

युंग (Jung) ने व्यक्तित्व का एक अन्य प्ररूपविज्ञान प्रस्तावित किया है जिसमें लोगों को उन्होंने अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी दो वर्गों में बाँटा है। यह प्ररूप व्यापक रूप से स्वीकार किए गए हैं। इसके अनुसार अंतर्मुखी वह लोग होते हैं जो अकेले रहना पसंद करते हैं, दूसरे से बचते हैं, सांवेगिक द्वंद्वों से पलायन करते हैं तथा शर्मीले होते हैं। दूसरी ओर, बहिर्मुखी वह लोग होते हैं जो सामाजिक तथा बहिर्गामी होते हैं और ऐसे व्यवसायों का चयन करते हैं जिसमें लोगों से वे प्रत्यक्ष रूप से संपर्क बनाए रख सकें। लोगों में मध्य रहते हुए तथा सामाजिक कार्यों को करते हुए वे दबावों के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं।

हाल के वर्षों में फ्रीडमैन एवं रोजेनमैन ने टाइप 'ए' तथा टाइप 'बी', इन दो प्रकार के व्यक्तित्वों में लोगों का वर्गीकरण किया है। इन दोनों शोधकर्ताओं ने मनोसामाजिक जोखिम वाले कारकों का अध्ययन करते हुए इन प्ररूपों की खोज की। टाइप 'ए' (Type-A) व्यक्तित्व वाले लोगों में उच्चस्तरीय

अभिप्रेरणा, धैर्य की कमी, समय की कमी का अनुभव करना, उतावलापन तथा कार्य के बोझ से हमेशा लदे रहने का अनुभव करना पाया जाता है। ऐसे लोग निश्चिंत होकर मंदगति से कार्य करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। टाइप 'ए' व्यक्तित्व वाले लोग अतिरक्तदान तथा कॉरोनरी हृदय रोग (coronary heart disease, CHD) के प्रति ज्यादा संवेदनशील होते हैं। इस प्रकार के लोगों में कभी-कभी सी.एच.डी. के विकसित होने का खतरा, उच्च रक्तदाब, उच्च कोलेस्ट्रॉल स्तर एवं धूम्रपान से उत्पन्न होने वाले खतरों की अपेक्षा अधिक होता है। इसके विपरीत, टाइप 'बी' (Type-B) व्यक्तित्व को टाइप 'ए' व्यक्तित्व की विशेषताओं के अभाव के रूप में समझा जा सकता है। व्यक्तित्व के इस प्ररूपविज्ञान को आगे भी विस्तार प्राप्त हुआ है। मॉरिस (Morris) ने एक टाइप 'सी' (Type-C) व्यक्तित्व को सुझाया है जो कैंसर जैसे रोग के प्रति संवेदनशील होता है। इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले लोग सहयोगशील, विनीत तथा धैर्यवान होते हैं। ऐसे व्यक्ति अपने निषेधात्मक संवेगों (जैसे-क्रोध) का दमन करने वाले और आप्य व्यक्तियों के प्रति आज्ञापालन का प्रदर्शन करने वाले होते हैं। हाल ही में एक टाइप 'डी' (Type-D) व्यक्तित्व का सुझाव भी दिया गया है तथा इस व्यक्तित्व वाले लोगों में अवसाद के प्रति प्रवणता पाई जाती है।

उपर्युक्त व्यक्तित्व के प्ररूप सामान्यतया आकर्षित करने वाले हैं लेकिन वे अत्यंत सरलीकृत हैं। मानव व्यवहार अत्यधिक जटिल और परिवर्तनशील होता है। लोगों को किसी एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्ररूप में बाँटना करना कठिन होता है। उपर्युक्त सरल वर्गीकरण योजना में स्पष्टता के साथ लोगों को वर्गीकृत करना पूरी तरह संभव नहीं है।

विशेषक उपागम

ये सिद्धांत मुख्यतः व्यक्तित्व के आधारभूत घटकों के वर्णन अथवा विशेषीकरण से संबंधित होते हैं। ये सिद्धांत व्यक्तित्व का निर्माण करने वाले मूल तत्वों की खोज करते हैं। मनुष्य व्यापक रूप से मनोवैज्ञानिक गुणों में भिन्नताओं का प्रदर्शन करते हैं, फिर भी उनको व्यक्तिगत विशेषकों के लघु समूह में शामिल किया जा सकता है। विशेषक उपागम हमारे दैनिक जीवन के सामान्य अनुभव के बहुत समान है। उदाहरण के लिए, जब हम यह जान लेते हैं कि कोई व्यक्ति सामाजिक है तब हम यह मान लेते हैं कि वह व्यक्ति न केवल

सहयोग, मित्रता तथा सहायता करने वाला होगा बल्कि वह अन्य सामाजिक घटकों से युक्त व्यवहार प्रदर्शित करने में भी प्रवृत्त होता। इस प्रकार, विशेषक उपागम लोगों की प्राथमिक विशेषताओं की पहचान करने का प्रयास करता है। एक विशेषक अपेक्षाकृत एक स्थायी गुण माना जाता है जिस पर एक व्यक्ति दूसरों से अलग होता है। इसमें संभव व्यवहारों की एक शृंखला अंतर्निहित होती है जिसको स्थिति की माँगों के द्वारा सक्रियता प्राप्त होती है।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि- (अ) विशेषक समय की विमा पर अपेक्षाकृत स्थिर होते हैं, (ब) विभिन्न स्थितियों में उनमें सामान्यतया संगति होती है तथा (स) उनकी शक्ति और उनका संयोजन एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न पाया जाता है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्तित्व में व्यक्तिगत भिन्नताएँ पाई जाती हैं।

अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन करने के लिए अनेक मनोवैज्ञानिकों ने विशेषकों का उपयोग किया है। हम कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांतों का उल्लेख करेंगे।

ऑलपोर्ट का विशेषक सिद्धांत

गॉर्डन ऑलपोर्ट (Gordon Allport) को विशेषक उपागम का अग्रणी माना जाता है। उन्होंने प्रस्ताविक किया है कि व्यक्ति में अनेक विशेषक पाये जाते हैं जिनकी प्रकृति गत्यात्मक होती है। ये विशेषक व्यवहारों का निर्धारण इस रूप में करते हैं कि व्यक्ति विभिन्न स्थितियों में समान योजनाओं के साथ क्रियाशील होता है। विशेषक उद्दीपकों तथा अनुक्रियाओं को समाकलित करते हैं अन्यथा वे असमान दिखाई देते हैं। ऑलपोर्ट ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि लोग स्वयं का तथा दूसरों का वर्णन करने के लिए जिन शब्दों का उपयोग करते हैं वे शब्द मानव व्यक्तित्व को समझने का आधार प्रदान करते हैं। उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा के शब्दों का विश्लेषण विशेषकों का पता लगाने के लिए किया है जो किसी व्यक्ति का वर्णन है। इसके आधार पर ऑलपोर्ट ने विशेषको को तीन वर्गों में बाँटा है- प्रमुख विशेषक, केंद्रीय विशेषक तथा गौण विशेषक। प्रमुख विशेषक (cardinal traits) अत्यंत सामान्यीकृत प्रवृत्तियाँ होती हैं। ये उस लक्ष्य को इंगित करती हैं जिसके चतुर्दिक व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन व्यतीत होता है। महात्मा गांधी की अहिंसा और हिटलर का नाज़ीवाद प्रमुख विशेषक के उदाहरण हैं। ये विशेषक व्यक्ति के नाम के साथ इस तरह

घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं कि उनका पहचान ही व्यक्ति के नाम के साथ हो जाती है, जैसे- 'गांधीवादी' अथवा 'हिटलरवादी' विशेषक। प्रभाव में कम व्यापक लेकिन फिर भी सामान्यीकृत प्रवृत्तियाँ ही केंद्रीय विशेषक (central traits) के रूप में जानी जाती हैं। ये विशेषक (उदाहरणार्थ, स्फूर्त, निष्कपट, मेहनती आदि) प्रायः लोगों के शंसापत्रों में अथवा नौकरी की संस्तुतियों में किसी व्यक्ति के लिए लिखे जाते हैं। व्यक्ति की सबसे कम सामान्यीकृत विशिष्टताओं के रूप में गौण विशेषक (secondary traits) जाने जाते हैं।

यद्यपि ऑलपोर्ट ने व्यवहार पर स्थितियों के प्रभाव को स्वीकार किया है फिर भी उनका मानना है कि स्थिति विशेष में व्यक्ति जिस प्रकार प्रतिक्रिया करता है वह उसके विशेषकों पर निर्भर करता है। लोग समान विशेषकों को रखते हुए भी उनको भिन्न तरीकों से व्यक्त कर सकते हैं। ऑलपोर्ट ने विशेषकों को मध्यवर्ती परिवर्त्यों की भाँति अधिक माना है जो उद्दीपक स्थिति एवं व्यक्ति की अनुक्रिया के मध्य घटित होते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि विशेषकों में किसी भी प्रकार की भिन्नता के कारण समान दशा में अथवा समान परिस्थिति के प्रति भिन्न प्रकार की अनुक्रिया उत्पन्न होती है।

कैटेल - व्यक्तित्व कारक

रेमंड कैटेल (Raymond Cattell) का यह विश्वास था कि एक सामान्य संरचना होती है जिसे लेकर व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। यह संरचना इंद्रियानुभविक रीति से निर्धारित की जा सकती है। इन्होंने भाषा में उपलब्ध वर्णनात्मक विशेषणों के बड़े समुच्चय में से प्राथमिक विशेषकों की पहचान करने का प्रयास किया है। सामान्य संरचनाओं का पता लगाने के लिए उन्होंने कारक विश्लेषण नामक सांख्यिकीय तकनीक का प्रयोग किया है। इसके आधार पर उन्होंने 16 प्राथमिक अथवा मूल विशेषकों की जानकारी प्राप्त की है। मूल विशेषक (source traits) स्थित होते हैं एवं व्यक्तित्व का निर्माण करने वाले मूल तत्वों के रूप में जाने जाते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक सतही या पृष्ठ विशेषक (surface traits) भी होते हैं जो मूल विशेषकों की अंतःक्रिया के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न होते हैं। कैटेल ने मूल विशेषकों का वर्णन विपरीतार्थी अथवा विलोमी प्रवृत्तियों के रूप में किया है। उन्होंने व्यक्तित्व के मूल्यांकन के लिए एक परीक्षण विकसित किया जिसे सोलह व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली (Sixteen Personality Factor Questionnaire,

16PF) के नाम से जाना जाता है। इस परीक्षण का मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यापक रूप से प्रयोग किया गया है।

आइजेंक का सिद्धांत

एच. जे. आइजेंक (H.J. Eyesenck) ने व्यक्तित्व को दो व्यापक आयामों के रूप में प्रस्तावित किया है। इन आयामों का आधार जैविक तथा आनुवंशिक है। प्रत्येक आयाम में अभिव्यक्ति के कुछ सामाजिक रूप से स्वीकार्य तरीकों को खोजने के लिए हैं अथवा उन आवेगों को अभिव्यक्त होने से बचाने के लिए निरंतर संघर्ष करते रहते हैं। द्वंद्वों के संदर्भ में असफल निर्णय लेने के कारण अपसामान्य व्यवहार उत्पन्न होते हैं। विस्मरण, अशुद्ध उच्चारण, मजाक तथा स्वप्नों के विश्लेषण हमें अचेतन तक पहुँचने के लिए साधन प्रदान करते हैं। फ्रायड ने एक चिकित्सा प्रक्रिया विकसित की जिसे मनोविश्लेषण (psychoanalysis) के रूप में जाना जाता हैं। मनोविश्लेषण-चिकित्सा का आधारभूत लक्ष्य दमित अचेतन सामग्रियों को चेतना के स्तर पर ले जाना है जिससे कि लोग और अधिक आत्म-जागरूक तथा समाकलित तरीके से अपना जीवनयापन कर सकें।

व्यक्तित्व की संरचना

फ्रायड के सिद्धांत के अनुसार व्यक्तित्व के प्राथमिक संरचात्मक तत्व तीन हैं- इदम या इड (id), अहं (ego) और पराहम् (superego)। ये तत्व अचेतन में ऊर्जा के रूप में होते हैं और इनके सम्बन्ध में लोगों द्वारा किए गए व्यवहार के तरीकों से अनुमान लगाया जा सकता है। यहाँमरणीय है कि इड, अहं तथा पराहम् संप्रत्यय हैं न कि वास्तविक भौतिक संरचनाएँ। हम इनकी थोड़े विस्तार के साथ विवेचना करेंगे।

इड - यह व्यक्ति की मूलप्रवृत्तिक ऊर्जा का स्रोत है। इसका संबंध व्यक्ति की आदिम आवश्यकताओं, कामेच्छाओं और आक्रामक आवेगों की तात्कालिक तुष्टि से होता है। यह सुखेप्सा-सिद्धांत (pleasure principle) पर कार्य करता है जिसका यह अभिग्रह होता है कि लोग सुख की खोज करते हैं और कष्ट का परिहार करते हैं। फ्रायड के अनुसार मनुष्य की अधिकांश मूलप्रवृत्तिक ऊर्जा कामुक होती है तथा शेष ऊर्जा आक्रामक होती है। इड को नैकित मूल्यों, समाज और दूसरे लोगों की कोई परवाह नहीं होती हैं।

NOTES

अहं - इसका विकास इड से होता है एवं यह व्यक्ति की मूलप्रवृत्तिक आवश्यकताओं की संतुष्टि वास्तविकता के धरातल पर करता है। व्यक्तित्व की यह संरचना वास्तविकता सिद्धांत (reality principle) से संचालित होती है और प्रायः इड को व्यवहार करने के उपयुक्त तरीकों की तरफ निर्दिष्ट करता है। जैसे एक बालक इड जो आइसक्रीम खाना चाहता है उससे कहता है कि आइसक्रम झटक कर खा ले। उसका अहं उससे कहता है कि दुकानदान से पूछे बिना यदि आइसक्रीम लेकर वह खा लेता है तो वह दंड का भागी बन सकता है। वास्तविकता-सिद्धांत पर कार्य करते हुए बालक जानता है कि अनुमति लेने के पश्चात् ही आइसक्रीम खाने की इच्छा को संतुष्ट करना सर्वाधिक उपयुक्त होगा। इस प्रकार इड की माँग अवास्तविक तथा सुखेप्सा-सिद्धांत से संचालित होती है, अहं धैर्यवान, तर्कसंगत तथा वास्तविकता-सिद्धांत से संचालित होता है।

पराहम् - पराहम् को समझने का और इसकी विशेषता बताने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि इसको मानसिक प्रकार्यों की नैतिक शाखा के रूप में समझा जाए। पराहम् इड और अहं को बताता है कि किसी विशिष्ट अवसर पर इच्छा विशेष की संतुष्टि नैतिक है अथवा नहीं। समाजीकरण की प्रक्रिया में पैतृक प्राधिकार के आंतरिकीकरण द्वारा पराहम् इड को नियंत्रित करने में मदद प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई बालक आइसक्रीम देखकर उसे खाना चाहता है, तो वइ इसके लिए अपनी माँ से पूछता है। उसका पराहम् संकेत देता है कि उसका यह व्यवहार नैतिक दृष्टि से सही है। इस प्रकार के व्यवहार के माध्यम से आइसक्रीम को प्राप्त करने पर बालक में कोई अपराध-बोध, भय अथवा दुश्िंचता नहीं होगी।

इस प्रकार व्यक्ति के प्रकार्यों के रूप में फ्रायड का विचार था कि मानव का अचेतन तीन प्रतिस्पधी शक्तियों अथवा ऊर्जाओं से निर्मित हुआ है। कुछ लोगों में इड पराहम् से अधिक प्रबल होता है तो कुछ अन्य लोगों में पराहम् इड से अधिक प्रबल होता है। इड, अहं तथा पराहम् की सापेक्ष शक्ति प्रत्येक व्यक्ति की स्थिरता का निर्धारण करती है। फ्रायड के अनुसार इड का दो प्रकार की मूलप्रवृत्तिक शक्तियों से ऊर्जा प्राप्त होती है जिन्हें जीवन-प्रवृत्ति (life-instinct) एवं मुमूर्षा या मृत्यु-प्रवृत्ति कहा जाता है। उन्होंने मृत्यु-प्रवृत्ति के स्थान पर जीवन-प्रवृत्ति (अथवा, काम) को केंद्र में रखते हुए अधिक

महत्व दिया है। मूलप्रवृत्तिक जीवन-शक्ति जो इड को ऊर्जा प्रदान करती है कामशक्ति या लिबिडो (libido) कहलाती है। लिबिडो सुखेप्सा-सिद्धांत के आधार पर कार्य करता है तथा तात्कालिक संतुष्टि चाहता है।

अहं रक्षा युक्तियाँ

फ्रायड के अनुसार मनुष्य के अधिकांश व्यवहार दुश्चिंता के प्रति उपयुक्त समायोजन एवं पलायन को प्रतिबिंबित करते हैं। अतः किसी दुश्चिताजनक स्थिति का अहं किस तरीके से सामना करता है, यही व्यापक रूप से निधरित करता है कि लोग किस प्रकार से व्यवहार करेंगे। फ्रायड का विश्वास था कि लोग दुश्चिंता का परिहार मुख्यतः रक्षा युक्तियाँ विकसित करके करते हैं। ये रक्षा युक्तियाँ अहं को मूलप्रवृत्तिक आवश्यकताओं के प्रति जागरूकता से रक्षा करती हैं। इस प्रकार रक्षा युक्तियाँ (defence mechanisms) वास्तविकता को विकृत कर दुश्चिंता को कम करने का एक साधन है। यद्यपि दुश्चिंता के प्रति की जाने वाली कुछ रक्षा युक्तियाँ सामान्य एवं अनुकूली होती हैं तथापि ऐसे लोग जो इन युक्तियों का उपयोग इस सीमा तक करते हैं कि वास्तविकता विकृत हो जाती है तो वे विभिन्न प्रकार के कुसमायोजन व्यवहार विकसित कर लेते हैं।

फ्रायड ने विभिन्न प्रकार की रक्षा युक्तियों का उल्लेख किया है। इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण दमन (repression) है जिसमें दुश्चिंता उत्पन्न करने वाले व्यवहार तथा विचार पूरी तरह चेतना के स्तर से लुप्त कर दिए जाते हैं। जब लोग किसी भावना अथवा इच्छा का दमन करते हैं तो वह उस भावना अथवा इच्छा के प्रति बिल्कुल ही जागरू नहीं होते हैं। इस प्रकार जब कोई व्यक्ति कहता है, "मैं नहीं जानता हूँ कि मैंने यह क्यों किया है", तो उसका यह कथन किसी दमित भावना तथा इच्छा को अभिव्यक्त करता है।

अन्य प्रमुख रक्षा युक्तियों में प्रक्षेपण, अस्वीकरण, प्रतिक्रिया निर्माण एवं युक्तिकरण आते हैं। प्रक्षेपण (projection) में लोग अपने विशेषकों को दूसरों पर आरोपित करते हैं। एक व्यक्ति जिसमें प्रबंल आक्रामक प्रवृत्तियाँ हैं वह दूसरे लोगों में अत्यधिक रूप से अपने प्रति होने वाले व्यवहारों को आक्रामक देखता है। अस्वीकरण (denial) में एक व्यक्ति पूरी तरह से वास्तविकता को स्वीकार नहीं करता है। उदाहरण के लिए एच.आई.वी. / एड्स से ग्रस्त रोगी पूरी तरह से अपने रोग को नकार करता है। प्रतिक्रिया निर्माण (reaction

NOTES

formation) में व्यक्ति अपनी वास्तविक भावनाओं एवं इच्छाओं को ठीक विपरीत प्रकार का व्यवहार अपना कर अपनी दुश्चिंता से रक्षा करने का प्रयास करता है। उदारहण के लिए प्रबल कामेच्छा से ग्रस्त कोई व्यक्ति यदि अपनी ऊर्जा को धार्मिक क्रियाकलापों में लगाते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करता है तो ऐसा व्यवहार प्रतिक्रिया निर्माण का उदाहरण होगा। युक्तिकरण (relationalisation) में एक व्यक्ति अपनी तर्कहीन भावनाओं तथा व्यवहारों को तर्कयुक्त और स्वीकार्य बनाने का प्रयास करता है। उदाहरण के लिए यदि कोई विद्यार्थी परीक्षा में निम्नस्तरीय निष्पादन के पश्चात् कुछ नए कलम खरीदता है तो इस युक्तिकरण का उपयोग करता है कि "वह आगे की परीक्षा में नए कलम के साथ उच्च स्तर का निष्पादन प्रदर्शित करेगा।"

जो लोग रक्षा युक्तियों का उपयोग करते हैं वे प्राय: इसके प्रति जागरूक नहीं होते हैं अथवा इससे अनभिज्ञ होते हैं। प्रत्येक रक्षा युक्ति दुश्चिंता के माध्यम से उत्पन्न असुविधाजनक भावनाओं से अहं के बरताव करने का एक तरीका है। रक्षा युक्तियों की भूमिका के सम्बन्ध में फ्रायड के विचारों के समझा अपने प्रश्न उत्पन्न किए गए हैं। उदाहरण के लिए फ्रायड का यह दावा कि प्रक्षेपण के उपयोग से दुश्चिंता और दबाव कम होता है अनेक अध्ययनों के परिणामों द्वारा समर्थित नहीं है।

व्यक्तित्व-विकास की अवस्थाएँ

फ्रायड का यह दावा है कि व्यक्तित्व के आंतरिक पक्ष आरंभ में ही स्थापित हो जाते हैं तथा जीवन-पर्यंत स्थिर बने रहते हैं। इनमें परिवर्तन लाना अत्यंत कठिन होता है। उन्होंने व्यक्तित्व-विकास का एक पंच अवस्था सिद्धांत (five-stage theory) प्रस्तावित किया जिसे मनोलैंगिक विकास के नाम से भी जाना जाता है। विकास की इन पाँच अवस्थाओं में से किसी भी अवस्था पर समस्याओं के आने से विकास बाधित हो जाता है तथा जिसका मनुष्य के जीवन पर दीर्घकालिक प्रभाव हो सकता है। इन विभिन्न पाँच अवस्थाओं का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

मौखिक अवस्था

एक नवजात शिशु की मूल प्रवृत्तियाँ मुख पर केंद्रित होती है। यह शिशु का प्राथमिक सुख प्राप्ति का केन्द्र बिन्दु होता है। यह मुख ही होता है जिसके

द्वारा ही शिशु भोजन ग्रहण करता है और अपनी भूख को शांत करता है। शिशु मौखिक संतुष्टि भोजन ग्रहण, अँगूठा चूसने, काटने और बलबलाने के द्वारा प्राप्त करता है। जन्म में बाद आरंभिक कुछ महीनों की अवधि में शिशुओं में अपने चतुर्दिक जगत के सम्बन्ध में आधारभूत अनुभव और भावनाएँ विकसित हो जाती हैं। अतः फ्रायड के अनुसार एक वयस्क जो इस संसार को कटु स्थान मानता है। संभवतः उसके विकास की मौखिक अवस्था में कठिनाई रही होगी।

गुदीय अवस्था

ऐसा पाया गया है कि दो-तीन वर्ष की आयु में बच्चा समाज की कुछ माँगों के प्रति अनुक्रिया करना सीख जाता है। इनमें से एक प्रमुख माँग माात-पिता की यह होती है कि बालक मूत्रत्याग तथा मलत्याग जैसे शारीरिक प्रकार्यों को सीखें। अधिकांश बच्चे इस आयु में इन क्रियाओं को करने में आनंद का अनुभव करते हैं शरीर का गुदीय क्षेत्र कुछ सुखदायक भावनाओं का केंद्र हो जाता है। इस अवस्था में इड एवं अहं के बीच द्वंद्व का आधार स्थापित हो जाता है। साथ ही शैशवावस्था की सुख की इच्छा एवं वयस्क रूप में नियंत्रित व्यवहार की माँग के मध्य भी द्वंद्व का आधार स्थापित हो जाता है।

लैंगिक अवस्था

यह अवस्था जननांगों पर बल देती है। चार-पाँच वर्ष की आयु में बच्चे पुरुषों एवं महिलाओं के बीच का अन्तर अनुभव करने लगते हैं। बच्चे कामुकता के प्रति एवं अपने माता-पिता के बीच काम संबंधों के प्रति जागरूक हो जाते हैं। इसी अवस्था में बालक इडिपस मनोग्रंथि (oedipus conplex) का अनुभव करता है जिसमें अपनी माता के प्रति प्रेम तथा पिता के प्रति आक्रामकता सन्निहित होती है तथा इसके फलस्वरूप पिता द्वारा दंडित या शिश्नलोप किए जाने का भय भी बालक में कार्य करता है (इडिपस एक ग्रीक राजा था जिसने अनजान में अपने पिता की हत्या कर अपनी माता से विवाह कर लिया था)। इस अवस्था की एक प्रमुख विकासात्मक उपलब्धि यह है कि बालक अपनी इस मनोग्रंथि का समाधान कर लेता है। ऐसा वह अपनी माता के प्रति पिता के संबंधों को स्वीकार करके उन्हीं की भाँति व्यवहार करता है।

NOTES

बालिकाओं में यह इडिपस ग्रंथि थोड़े भिन्न रूप में घटित होती है। बालिकाओं में इसे इलेक्ट्रा मनोग्रंथि (Electra Complex) कहते हैं। इलेक्ट्रा एक ग्रीक चरित्र थी जिसने अपने भाई द्वारा अपनी माता की हत्या कारवाई। इस मनोग्रंटि में बालिका अपने पिता को प्रेम करती है तथा प्रतीकात्मक रूप में उससे विवाह करना चाहती है। जब उसके यह अनुभव होता है कि यह संभव नहीं है तो वह अपनी माता का अनुकरण कर उसके व्यवहारों को अपनाती है। ऐसा वह अपने पिता का स्नेह प्राप्त करने के उद्देश्य से करती है। उपर्युक्त दोनों मनोग्रंथियों के समाधान में क्रांतिक घटक समान लिंग के माता-पिता के साथ तदात्मीकरण स्थापित करना है। दूसरे शब्दों में, बालक अपनी माता के प्रति लैंगिक भावनाओं का त्याग कर देते हैं और अपने पिता को प्रतिद्वंद्वी की बजाय भूमिका-प्रतिरूप मानने लगते हैं; बालिकाएँ अपने पिता के प्रति लैंगिक इच्छाओं का त्याग कर देती हैं तथा अपनी माता से तादात्मय स्थापित करती हैं।

कामप्रसुप्ति अवस्था

यह अवस्था सात वर्ष की आयु से आरंभ होकर यौवनारंभ तक बनी रहती है। इस अवधि में बालक का विकास शारीरिक दृष्टि से होता रहता है लेकिन उसकी कामेच्छाएँ सापेक्ष रूप से निष्क्रिय होती हैं। बालक की अधिकांश ऊर्जा सामाज़िक अथवा उपलब्धि-संबंधी क्रियाओं में खर्च होती है।

जननांगीय अवस्था

इस अवस्था में व्यक्ति मनोलैंगिक विकास में परिपक्वता प्राप्त करता हैं पूर्व की अवस्थाओं की कामेच्छाएँ, भय तथा दमित भावनाएँ पुनः अभिव्यक्त होने लगती हैं। लोग इस अवस्था में विपरीत लिंग के सदस्यों से परिपक्व तरीके से सामाजिक ओर काम संबंधी आचरण करना सीख लेते हैं। यदि इस अवस्था की विकास यात्रा में व्यक्ति को अत्यधिक दबाव का अनुभव होता है तो इसके कारण विकास की किसी आरंभिक अवस्था पर उसका स्थिरण हो सकता है।

फ्रायड के सिद्धांत का एक यह अभिग्रह भी है कि बालक जब विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था की तरफ बढ़ता है तो वह जगत के प्रति अपने दृष्टिकोण को समायोजित कर लेता है। किसी एक अवस्था में असफल

विकास के कारण उस अवस्था पर बालक का स्थिरण (fixation) हो जाता है। इस अवस्था में बच्चे का विकास एक आरंभिक अवस्था तक ही सीमित रह जाता है। उदाहरण के लिए एक बच्चा अपने विकास में लैंगिक अवस्था को सफलतापूर्वक पूरा नहीं कर पाता है तो वह इडिपस मनोग्रंथि का समाधान करने में निष्फल हो जाता है तथा उसके बाद भी समान लिंग के माता-पिता के प्रति आक्रामकता का अनुभव करता रहता है। इस प्रकार की असफलता के गंभीर परिणाम बच्चे को अपने जीवन में भोगने पड़ते हैं। ऐसा बालक यह विचार बना सकता है कि पुरुष सामान्यतया आक्रामक होते हैं तथा वह निर्भरता के रूप में महिलाओं से संबंध होने की इच्छा को विकसित कर सकता है। इस प्रकार की स्थितियों में प्रतिगमन (regression) भी एक संभावित परिणाम हो सकता है जिसमें व्यक्ति पहले की किसी अवस्था में वापस चला जाता है। प्रतिगमन उस स्थिति में घटित होता है जब विकास की किसी अवस्था में व्यक्ति द्वारा किया गया समस्याओं का समाधान पर्याप्त नहीं होता है। इस प्रकार की स्थिति में व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित व्यवहार उस कम परिपक्व विकास की अवस्था का कोई विशिष्ट व्यवहार होता है।

पश्च-फ्रायडवादी उपागम

फ्रायड का अनुसरण करते हुए बाद में कई सिद्धांतकारों ने अपने विचार प्रस्तुत किए। इनमें से कुछ सिद्धांतकारों ने आरंभ में फ्रायड के साथ मिलकर काम किया लेकिन आगे चलकर उन्होंने मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत की अपनी व्याख्या प्रस्तुत की। इन सिद्धांतकारों को नव-विश्लेषणवादी अथवा पश्च-फ्रायडवादी कहा गया जिससे कि इन्हें फ्रायड से अलग समझा जा सके। इन सिद्धांतों की विशेषता यह है कि इनमें इड की लैंगिक और आक्रामक प्रवृत्तियों की भूमिकाओं और अहं के संप्रत्यय के विस्तार को कम महत्व दिया गया है। इनके स्थान पर सर्जनात्मकता, क्षमता तथा समस्या-समाधान योग्यता जैसे मानवीय गुणों पर बल दिया गया है। इसमें से कुछ सिद्धांतों का संक्षेप में नीचे उल्लेख किया गया है।

कार्ल युंग - उद्देश्य एवं आकांक्षाएँ

आरंभ में युंग (Jung) ने फ्रायड के साथ मिलकर काम किया लेकिन बाद में फ्रायड से वह अलग हो गए। युंग ने यह देखा कि मनुष्य काम-भावना

तथा आक्रामकता के स्थान पर उद्देश्यों और आकांक्षाओं से अधिक निर्देशित होते हैं। उन्होंने व्यक्तित्व का अपना एक सिद्धांत प्रतिपादित किया जिसे विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान (analytical psychology) कहते हैं। इन सिद्धांतों का आधारभूत अभिग्रह यह है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व में प्रतिस्पर्धी शक्तियाँ तथा संरचनाएँ (जिनका संतुलित होना आवश्यक है) कार्य करती है; न कि व्यक्ति और समाज की माँगों अथवा वास्तविकता के बीच कोई द्वंद्व होता है।

युंग ने ये दावा किया है कि एक प्रकार का सामूहिक अचेतन (collective unconscious) होता है जिसमें आद्य प्ररूप (archetype) अथवा आद्य प्रतिमाएँ विद्यमान होती हैं। ये व्यक्तिगत स्तर पर अर्जित नहीं की जाती है, बल्कि वंशागत होती हैं। ईश्वर अथवा धरती माता आद्य प्रारूप के अच्छे उदाहरण हैं। आद्य प्ररूप मिथकों, स्वप्नों और मानव जाति की सभी कलाओं में पाए जाते हैं। युंग का यह विचार था कि आत्म एकता तथा एकात्मकता के लिए प्रयास करता है। यह एक आद्य प्ररूप है जिसे विभिन्न तरीकों से अभिव्यक्त किया गया है। विभिन्न परंपराओं में ऐसी अभिव्यक्तियों का अध्ययन करने के लिए युंग ने काफी प्रयत्न किया। उनके अनुसार, एकत्व और संपूर्णता को प्राप्त करने के लिए एक व्यक्ति को उत्तरोत्तर अपने व्यक्तिगत एवं सामूहिक अचेतन में उपलब्ध प्रज्ञान के प्रति जागरूक होना चाहिए और इसके साथ संगत भाव से रहना सीखना चाहिए।

कैरेन हार्नी - आशावाद

हार्नी (Horney) फ्रायड की एक अन्य अनुयायी थीं जिन्होंने फ्रायड के आधारभूत सिद्धांतों से अलग एक सिद्धांत विकसित किया। उन्होंने मानव संवृद्धि और आत्मसिद्धि पर बल देते हुए मानव जीवन के एक आशावादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया।

हार्नी का प्रमुख योगदान इस बात में है कि उन्होंने फ्रायड के इस विचार को कि महिलाएँ हीन होती हैं, चुनौती दी हैं उनके अनुसार, प्रत्येक लिंग के व्यक्तियों में गुण होते हैं जिसकी प्रशंसा विपरीत लिंग के व्यक्तियों को करनी चाहिए तथा किसी भी लिंग के व्यक्तियों को श्रेष्ठ अथवा हीन नहीं समझा जाना चाहिए। प्रतिरोध स्वरूप उनका यह विचार था कि महिलाएँ जैविक कारकों की अपेक्षा सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों से अधिक प्रभावित होती हैं। उन्होंने हय तर्क प्रस्तुत किया कि मनोवैज्ञानिक विकास बाल्यावस्था

की अवधि में विक्षुब्ध अंतर्वैयक्तिक संबंधों (disturbed interpersonal relationship) के कारण उत्पन्न होते हैं। यदि माता-पिता का अपने बच्चे के प्रति व्यवहार उदासीन, हतोत्साहित करने वाला होता है तो बच्चा असुरक्षित महसूस करता है जिसके परिणामस्वरूप एक ऐसी भावना जिसे मूल दुश्चिंता (basic anxiety) कहते हैं, उत्पन्न होती है। इस दुश्चिंता के कारण माता-पिता के प्रति बच्चे में एक गहन अमर्ष और मूल आक्रामकता घटित होती है। अत्यधिक प्रभुत्व अथवा उदासीनता का प्रदर्शन कर एवं अत्यधिक अथवा अत्यंत कम अनुमोदन प्रदान कर माता-पिता बच्चों में एकाकीपन की भावनाएँ उत्पन्न करते हैं जो उनके स्वस्थ विकास में बाधक होते हैं।

अल्फ्रेड एडलर - जीवन शैली एवं सामाजिक अभिरुचि

एडलर (Adler) के सिद्धांत को व्यष्टि या वैयक्तिक मनोविज्ञान (individual psychology) के रूप में जाना जाता है। उनका आधारभूत अभिग्रह यह है कि व्यक्ति का व्यवहार उद्देश्यपूर्ण तथा लक्ष्योन्मुख होता है। हममें से प्रत्येक का चयन करने एवं सर्जन करने की क्षमता होती है। हमारे व्यक्तिगत लक्ष्य ही हमारी अभिप्रेरणा के स्रोत होते हैं। जो लक्ष्य हमें सुरक्षा प्रदान करते हैं एवं हमारी अपर्याप्तता की भावना पर विजय प्राप्त करने में हमारी मदद करते हैं, वे हमारे व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एडलर के विचार से प्रत्येक व्यक्ति अपर्याप्तता और अपराध की भावनाओं से ग्रसित होता है। इसे हम हीनता मनोग्रंथि (inferiority complex) के नाम से जानते हैं जो बाल्यावस्था में उत्पन्न होती है। इस मनोग्रंथि पर विजय प्राप्त करना इष्टतम व्यक्तित्व-विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

एरिक फ्रॉम - मानवीय महत्त्व

फ्रायड के सिद्धांत की जैविक उन्मुखता की तुलना में फ्रॉम (fromm) ने अपना सिद्धांत सामाजिक उन्मुखता के संदर्भ में प्रतिपादित किया। उन्होंने मनुष्य को मूल रूप से सामाजिक प्राणी (social being) माना है जिसको दूसरे लोगों से उसके संबंधों के आधार पर समझा जा सकता है। उन्होंने यह तर्क दिया कि संवृद्धि तथा क्षमताओं की उपलब्धि जैसे मनोवैज्ञानिक गुण स्वतंत्रता की इच्छा (desire for freedom) और न्याय तथा सत्य के लिए संघर्ष (striving for justice and truth) के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

फ्रॉम का विचार है कि चरित्र विशेषक (व्यक्तित्व) दूसरों के साथ हमारे होने वाले अनुभवों से विकसित होते हैं। एक समाज विशेष में जिस प्रकार की रीतियाँ तथा प्रथाएँ अस्तित्व में होती हैं, वही समाज की संस्कृति को स्वरूप प्रदान करती हैं। किसी समाज विशेष में लोगों के प्रभावी चरित्र विशेषक सामाजिक प्रक्रमों एवं संस्कृति को स्वरूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। फ्रॉम ने व्यक्तित्व के विकास में कोमलता एवं प्रेम जैसे विध्यात्मक गुणों को महत्व दिया है।

एरिक एरिक्सन - अनन्यता की खोज

एरिक्सन (Erikson) का सिद्धांत व्यक्तित्व-विकास में तर्कयुक्त, सचेतन अहं की प्रक्रियाओं पर बल देता है। उनके सिद्धांत में विकास को एक जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया तथा अहं अनन्यता का इस प्रक्रिया में केन्द्रीय स्थान माता गया है। किशोरावस्था के अनन्यता संकट (identity crisis) के उनके संप्रत्यय ने व्यापक रूप से ध्यान आकृष्ट किया है। एरिक्सन का कथन है कि युवकों को अपने लिए एक केंद्रीय परिप्रेक्ष्य और एक दिशा निर्धारित करनी चाहिए जो उन्हें एकत्व एवं उद्देश्य का सार्थक अनुभव करा सके।

मनोगतिक सिद्धांतों की अनेक दृष्टिकोणों से आलोचना की गई है। प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं–

1. ये सिद्धांत अधिकांशतः व्यक्ति अध्ययनों (case studies) पर आधारित हैं जिसमें परिशुद्ध, वैज्ञानिक आधार की कमी है।
2. इनमें कम संख्या में विशिष्ट व्यक्तियों का सामान्यीकरण के लिए प्रतिदर्श के रूप में उपयोग किया गया है।
3. संप्रत्यय उचित ढंग से परिभाषित नहीं किए गए हैं तथा वैज्ञानिक परीक्षण के लिए उनको प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।
4. फ्रायड ने मात्र पुरुषों का मानव व्यकितत्व के विकास के आदि प्ररूप (prototype) के रूप में प्रयोग किया है। उन्होंने महिलाओं के अनुभवों एवं परिप्रेक्ष्यों पर ध्यान नहीं दिया है।

व्यवहारवादी उपागम

यह उपागम व्यवहार की आंतरिक गतिकी को महत्त्व नहीं देता है। व्यवहारवादी परिभाष्य, प्रेक्षणीय तथा मापन योग्य प्रदत्तों में ही विश्वास करते हैं या उनको महत्व देते हैं। इस प्रकार वे उद्दीपक-अनुक्रिया संयोजनों के अधिगम और उनके प्रबलन पर ही जोर देते हैं। उनके अनुसार पर्यावरण के प्रति की गई व्यक्ति की अनुक्रिया के रूप में ही व्यक्तित्व की सर्वोत्तम प्रकार से समझा जा सकता है। अनुक्रिया की विशेषताओं में बदलाव के रूप में ही प्रायः वे विकास को समझते हैं अर्थात कोई व्यक्ति नए पर्यावरण तथा उद्दीपकों के प्रति की गई अनुक्रियाओं द्वारा ही नया व्यवहार सीखता है।

अधिकांश व्यवहारवादियों के लिए व्यक्तित्व की संरचनात्मक इकाई अनुक्रिया है। प्रत्येक अनुक्रिया एक व्यवहार है जो किसी विशिष्ट आवश्यकता को संतुष्ट करने के लिए प्रकट की जाती है। जैसा कि आप जानते हैं कि हम भोजन इसलिए करते हैं क्योंकि हमें भूख लगी रहती है, लेकिन भोजन के संदर्भ में हम बहुत चयनात्मक भी होते हैं। उदाहरण के लिए, बच्चे अनेक प्रकार की सब्जियाँ खाना पसंद नहीं करते हैं (जैसे- पालक, लौकी, करेला इत्यादि) किंतु धीरे-धीरे वे इनको खाना सीख लेते हैं। ऐसा व्यवहार वे क्यों करते हैं? व्यवहारवादी उपागम के अनुसार बालक आरंभ में इन सब्जियों को अपने माता-पिता से प्रशंसा (प्रबलन) पाने के लिए बाद में वे अंततः इन सब्जियों को खाना सीख लेते हैं, केवल इस कारण से ही नहीं कि उनके माता-पिता इस व्यवहार से प्रसन्न हैं बल्कि इस कारण से भी कि उन्हें इन सब्जियों का स्वाद लग गया है तथा वे इन सब्जियों को अच्छा समझते हैं। अतः व्यवहार को संगठित करने वाली केंद्रीय प्रवृत्ति जैविक अथवा सामाजिक आवश्यकताओं में कमी है जो व्यवहार को ऊर्जित या उत्प्रेरित करती है। यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब अनुक्रियाएँ (व्यवहार) प्रबलित होती है।

विभिन्न अधिगम सिद्धांत उद्दीपक, अनुक्रिया तथा प्रबलन के विभिन्न तरीकों से उपयोग को सन्निहित। प्राचीन अनुबंधन (पावलव), नैमित्तिक अनुबंधन (स्किनर) और प्रेक्षणात्मक अधिगम (बंदूरा) के सिद्धांतों से आप भली-भाँति परिचित हैं। इन सिद्धांतों में अधिगम और व्यवहार के संपोषण का विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया गया है। इन सिद्धांतों के नियमों का व्यक्तित्व-सिद्धांतों के विकास में व्यापक रूप से प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए

NOTES

प्रेक्षणात्मक अधिगम सिद्धांत अधिगम में चिंतन प्रक्रियाओं को अत्यधिक महत्व देता है लेकिन प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधन सिद्धांतों में चिंतन प्रक्रियाओं को प्राय: कोई स्थान नहीं दिया गया है। इसी प्रकार प्रेक्षणात्मक अधिगम सिद्धांत सामाजिक अधिगम (प्रेक्षण एवं दूसरों के अनुकरण पर आधारित) तथा आत्म-नियमन पर बल देता है जो अन्य सिद्धांतों में अनुपस्थित हैं।

सांस्कृतिक उपागम

यह उपागम पारिस्थितिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण की विशेषताओं के संदर्भ में व्यक्तित्व को समझने का प्रयोग करता है। इसमें यह प्रस्तावित किया गया है कि किसी समूह की 'आर्थिक अनुरक्षण प्रणाली' सांस्कृतिक और व्यवहारपरक भिन्नताओं की उत्पत्ति में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जलवायु-संबंधी दशाएँ, वसस्थान के भू-भाग की प्रकृति और इसमें भोजन (वनस्पति और जीवजंतु) की उपलब्धता न केवल लोगों की आर्थिक गतिविधियों को निर्धारित करती है बल्कि उनके व्यवस्थान के संरूपों, सामाजिक संरचनाओं, श्रम विभाजन तथा अन्य पक्षों, जैसे- बाल-पोषण रीतियों को भी निर्धारित करती है। सम्मिलित रूप से ये सारे तत्व किसी बच्चे के समग्र अधिगम वातावरण का निर्माण करते हैं। लोगों के कौशल, योग्यताएँ, व्यवहार-शैलियाँ तथा मूल्य प्राथमिकताएँ इन विशेषताओं से घनिष्ठ रूप से संबंधित होते हैं। अनुष्ठान, उत्सव, धार्मिक क्रियाकलाप, कला, मनोरंजन और खेल-कूद वे साधन हैं जिनके द्वारा लोगों का व्यक्तित्व किसी संस्कृति में प्रक्षेपित होता है। लोग विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व (व्यवहारपरक) गुणों का विका किसी समूह के जीवन की पारिस्थितिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं के प्रति अनुकूलन करने के प्रयास में करते हैं। इस प्रकार सांस्कृतिक उपागम पारिस्थितिकी और संस्कृति की माँगों के प्रति समूहों के अनुकूलन के रूप में व्यक्तित्व को स्वीकार करता है।

सांस्कृतिक उपागम के इन पक्षों को एक मूर्त उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। जैसा कि आप जानते हैं कि विश्व की जनसंख्या का एक बड़ा भाग आज भी वन और पर्वतीय क्षेत्रों में निवास करता है। जिनकी जीविका आधारभूत साधन शिकार और संग्रहण (आर्थिक गतिविधियाँ) होते हैं। झारखंड के बिरहोर (एक जनजाति समूह) इसी प्रकार की जनसंख्या का

प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें से अधिकांश खानाबदोश का जीवन व्यतीत करते हैं। छोटी टोलियों में ये एक वन से दूसरे वन तक निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं और फलों, कंदों, कुकुरमुत्तों एवं शहद आदि वन उत्पादों का संग्रह और उपयोग करते हैं। बिरहोर समाज में बच्चों को आरंभिक वर्षों से ही वनों में घूमने तथा शिकार करने तथा वन-उत्पादों का संग्रह करने के कौशलों को सीखने की पर्याप्त स्वतंत्रता दे दी जाती है। उनकी बाल-समाजीकरण रीतियों में बच्चों को स्वतंत्र (बड़ों की सहायता के बिना भी अनेक कार्यों को करना), स्वायत्त (अपने लिए अनेक निर्णयों को लेना) उपलब्धि-उन्मुख (शिकार जैसे कार्यों में अंतर्निहित जोखिमों एवं चुनौतियों को स्वीकार करना) बनाना जीवन के आरंभिक वर्षों से ही शुरू हो जाता है।

कृषक समाजों में बच्चों का समाजीकरण बड़ों के प्रति आज्ञापालन, छोटों के प्रति पोषण का भाव और अपने कर्तव्यों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने के लिए होता है। चूँकि व्यवहार के ये गुण कृषक समाजों में लोगों को अधिक उपयोगी बनाते हैं इसलिए ये गुण लोगों के व्यक्तित्व की प्रभावी विशेषताएँ हो जाते हैं। ये विशेषताएँ शिकार-संग्रह करने वाले समाजों में अधिक उपयोगी (और इसलिए अत्यधिक सम्मानित समझे जाने वाले) स्वतंत्रता, स्वायत्तता एवं उपलब्धि जैसे गुणों से अलग होती हैं। विभिन्न आर्थिक अनुसरणों और सांस्कृतिक माँगों के कारण शिकार-संग्रह करने वाले तथा कृषक समाजों के बालक भिन्न प्रकार के व्यक्तित्व-प्रतिरूप विकसित एवं प्रदर्शित करते हैं।

मानवतावादी उपागम

मानवतावादी सिद्धांत मुख्यतः फ्रायड के सिद्धांत क प्रत्युत्तर में विकसित हुए। व्यक्तित्व के संदर्भ में मानवतावादी परिप्रेक्ष्य के विकास में कार्ल रोजर्स (Carl Rogers) तथा अब्राहम मैस्लो (Abraham Maslow) ने विशेष रूप से योगदान दिया है। हम उनके सिद्धांतों का संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

रोजर्स द्वारा प्रस्तावित सर्वाधिक महत्वपूर्ण विचार एक पूर्णतः प्रकार्यशील व्यक्ति (fully functioning person) का है। उनका विश्वास है कि व्यक्तित्व के विकास के लिए संतुष्टि अभिप्रेरक शक्ति है। लोग अपनी क्षमताओं, संभाव्यताओं तथा प्रतिभाओं को संभव सर्वोत्कृष्ट तरीके से अभिव्यक्त करने

NOTES

का प्रयास करते हैं। व्यक्तियों में एक सहज प्रवृत्ति होती है जो उन्हें अपने वंशागत प्रकृति की प्राप्ति के लिए निर्दिष्ट करती है।

मानव व्यवहार के सम्बन्ध में रोजर्स ने दो आधारभूत अभिग्रह निर्मित किए हैं। एक यह कि व्यवहार लक्ष्योन्मुख एवं सार्थक होता है और दूसरा यह कि लोग (जो सहज रूप से अच्छे होते हैं) सदैव अनुकूली तथा आत्मसिद्धि वाले व्यवहार का चुनाव करेंगे।

रोजर्स का सिद्धांत उनके निदानशाला में रोगियों को सुनने से प्राप्त अनुभवों से विकसित हुआ है। उन्होंने यह ध्यान दिया कि उनके सेवार्थियों के अनुभव में आत्म एक महत्वपूर्ण तत्व था। इस प्रकार, उनका सिद्धांत आत्म के संप्रत्यय के चतुर्दिक संरचित है। उनके सिद्धांत का अभिग्रह है कि लोग निरन्तर अपने वास्तविक आत्म की प्राप्ति की प्रक्रिया में लगे रहते हैं।

रोजर्स ने सुझाव दिया है कि प्रत्येक व्यक्ति के पास आदर्श अहं या आत्म का एक संप्रत्यय होता है। एक आदर्श आत्म वह आत्म होता है जो कि एक व्यक्ति बनना अथवा होना चाहता है। जब वास्तविक आत्म तथा आदर्श आत्म के मध्य समरूपता होती है तो व्यक्ति सामान्यतया प्रसन्न रहता है। किंतु दोनों प्रकार के आत्म के बीच विसंगति के कारण प्रायः अप्रसन्नता और असंतोष की भावनाएँ पैदा होती हैं। रोजर्स का एक आधारभूत सिद्धांत है कि लोगों में आत्मसिद्धि के माध्यम से आत्म-संप्रत्यय को अधिकतम सीमा तक विकसित करने की प्रवृत्ति होती है। इस प्रक्रिया में आत्म विकसित, विस्तारित तथा अधिक सामाजिक हो जाता है।

रोजर्स व्यक्तित्व-विकास को एक सतत प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। इसमें अपने आपका मूल्यांकन करने का अधिगम और आत्मसिद्धि की प्रक्रिया में प्रवीणता सन्निहित होती है। उन्होंने आत्म-संप्रत्यय के विकास में सामाजिक प्रभावों की भूमिका को स्वीकार किया है। जब सामाजिक स्थितियाँ अनुकूल होती हैं, तब आत्म-संप्रत्यय एवं आत्म-सम्मान उच्च होता है। इसके विपरीत, जब सामाजिक दशाएँ प्रतिकूल होती हैं, तब आत्म-संप्रत्यय और आत्म-सम्मान निम्न होता है। उच्च आत्म-संप्रत्यय और उच्च आत्म-सम्मान निम्न होता है। उच्च आत्म-संप्रत्यय और उच्च आत्म-सम्मान रखने वाले लोग सामान्यतया नए अनुभवों के प्रति मुक्त भाव से ग्रहणशील होते हैं ताकि वे अपने सतत विकास और आत्मसिद्धि में संलग्न रह सकें।

यह स्थिति अपेक्षा रखती है कि अशर्त सकारात्मक आदर का वातावरण अवश्य निर्मित किया जाए ताकि लोगों के आत्म-संप्रत्यय की वृद्धि को सुनिश्चित किया जा सके। सेवार्थी-केंद्रित चिकित्सा, जिसे रोजर्स ने विकसित किया, मूल रूप से इस प्रकार की स्थिति को उत्पन्न करने का प्रयत्न करती है।

मैस्लो ने आत्मसिद्धि (self-actualisation) की लब्धि या प्राप्ति के रूप में मनोवैज्ञानिक रूप से स्वस्थ लोगों की एक विस्तृत व्याख्या की है। आत्मसिद्धि वह अवस्था होती है जिसमें लोग अपनी संपूर्ण संभाव्यताओं को विकसित कर चुके होते हैं। मैस्लो ने मनुष्यों का एक आशावादी तथा सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया है जिसके अंतर्गत मानव में प्रेम, हर्ष और सर्जनात्मक कार्यों को करने की संभाव्यता होती हैं मनुष्य अपने जीवन को स्वरूप देने में और आत्मसिद्धि को प्राप्त करने में स्वतंत्र माने गए हैं। अभिप्रेणाओं, जो हमारे जीवन को नियमित करती हैं, के विश्लेषण के द्वारा आत्मसिद्धि को संभव बनाया जा सकता है। हम जानते हैं कि जैविक, सुरक्षा एवं आत्मीयता की आवश्यकताएँ (उत्तरजीविता आवश्यकताएँ) पशुओं और मनुष्यों दोनों में पाई जाती हैं। अतः किसी व्यक्ति का मात्र इन आवश्यकताओं की संतुष्टि में संलग्न होना उसे पशुओं के स्तर पर ले आता है। मानव जीवन की वास्तविक यात्रा आत्म-सम्मान और आत्मसिद्धि जैसी आवश्यकताओं के अनुसण से शुरू होती है। मानवतावादी उपागम जीवन के सकारात्मक पक्षों के महत्व पर बल देता है।

व्यक्तित्व का मूल्यांकन

लोगों को जानने, समझने तथा उनका वर्णन करने का कार्य ऐसा है जिससे दैनंदिन जीवन में प्रत्येक व्यक्ति संबंद्ध होता है। जब हम नए लोगों से मिलते हैं तो हम उनको समझने का प्रयास करते हैं और साथ ही उनसे अंतःक्रिया करने के पूर्व ही हम ये भविष्यकथन भी करते हैं कि वे क्या कर सकते हैं। हम अपने व्यक्तिगत जीवन में अपने पूर्वानुभवों, प्रेक्षणों, वार्तालापों एवं दूसरे लोगों से प्राप्त सूचनाओं पर विश्वास करते हैं। इस उपागम के आधार पर दूसरों को समझना अनेक कारकों से प्रभावित हो सकता है जो हमारे निर्णयों को अतिरंजित कर वस्तुनिष्ठता को कम कर सकते हैं। इसलिए व्यक्तित्वों का विश्लेषण करने के लिए हमें अपने प्रयासों को अधिक औपचारिक रूप से संगठित करने की आवश्यकता है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की समझ के लिए सोद्देश्य औपचारिक प्रयास को व्यक्तित्व-मूल्यांकन कहते हैं।

मूल्यांकन का तात्पर्य उन प्रक्रियाओं से है जिनका उपयोग कुछ विशेषताओं के आधार पर लोगों के मूल्यांकन या उनके बीच विभेदन के लिए किया जाता है। मूल्यांकन का लक्ष्य लोगों के व्यवहारों को न्यूनतम त्रुटि और अधिकतम परिशुद्धता के साथ समझना तथा उनकी भविष्यवाणी करना होता है। मूल्यांकन में किसी स्थिति विशेष में व्यक्ति सामान्यतया कौन-सा व्यवहार करता है और कैसे करता है हम यह समझने का प्रयत्न करते हैं। हमारी समझ को उन्नत करने के अतिरिक्त, मूल्यांकन निदान, प्रशिक्षण, स्थाना, परामर्श और अन्य उद्देश्यों के लिए भी बहुत उपयोगी है।

मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न तरीकों से व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने का प्रयास किया हैं सामान्यतः सबसे अधिक उपयोग की जाने वाली तकनीकों के अंतर्गत मनोमितिक परीक्षण, आत्म-प्रतिवेदन माप, प्रक्षेपी तकनीकें और व्यवहारपरक विश्लेषण आते हैं। इन तकनीकों के मूल विभिन्न सैद्धांतिक उन्मुखताओं में हैं इसलिए ये तकनीक व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालती हैं।

आत्म-प्रतिवेदन माप

ऑलपोर्ट ने सुझाव दिया है कि किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में मूल्यांकन करने की सर्वोत्तम विधि है उससे उसके बारे में पूछना। उनका यह दृष्टिकोण आत्म-प्रतिवेदन मापों के उपयोग का कारण बना। ये माप उचित रूप से संरचित होते हैं तथा प्रायः ऐसे सिद्धांतों पर आधारित होते हैं जिसमें प्रयोज्यों को किसी प्रकार की निर्धारण मापनी पर शाब्दिक अनुक्रियाएँ देनी होती हैं। इस विधि में प्रयोज्य को विभिन्न कथनों के संदर्भ में अपनी भावनाओं के सम्बन्ध में वस्तुनिष्ठ रूप से प्रतिवेदन देना अपेक्षित होता है। इन अनुक्रियाओं को उनके मूल रूप (अंकित मूल्य) में स्वीकार कर लिया जाता है। इन अनुक्रियाओं को मात्रात्मक रूप में अंक दिए जाते हैं और परीक्षण के लिए विकसित माकों के आधार पर उनकी व्याख्या की जाती है। कुछ प्रसिद्ध आत्म-प्रतिवेदन मापों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

मिनेसोटा बहुपक्षीय व्यक्तित्व सूची (एम.एम.पी.आई.)

यह सूची एक परीक्षण के रूप में व्यक्तित्व-मूल्यांकन में व्यापक रूप से प्रयोग की गई है। हाथवे (Hathaway) एवं मैकिन्ले (Mckinley) ने

मनोरोग-निदान के लिए इस परीक्षण का एक सहायक उपकरण के रूप में विकास किया था लेकिन यह परीक्षण विभिन्न मनोविकारों की पहचान करने के लिए अत्यंत प्रभावी पाया गया है। इसका परिशोधित एम.एम.पी.आई.-2 के रूप में उपलब्ध है। इसमें 567 कथन हैं। प्रयोज्य को अपने लिए प्रत्येक कथन के 'सही' एवं 'गलत' होने के सम्बन्ध में निर्णय लेना होता है। यह परीक्षण 10 उपमापनियों में विभाजित है जो स्वकायदुश्ंचित रोग, अवसाद, हिस्टीरिया, मनोविकृत विसामान्य, पुरुषत्व-स्त्रीत्व, व्यामोह, मनोदौर्बल्य, मनोविदलता, उन्माद और सामाजिक अंतर्मुखता के निदान करने का प्रयास करता है। भारत में मल्लिक (Mallick) एवं जोशी (Joshi) ने जोधपुर बहुपक्षीय व्यक्तित्व सूची (जे.एम.पी.आई.) एम.एम.पी.आई की की भाँति ही विकसित की है।

आइजेंक व्यक्तित्व प्रश्नावली (ई.पी.क्यू.)

आइजेंक द्वारा विकसित इस परीक्षण ने आरंभ में व्यक्तित्व के दो आयामों अंतर्मुखता-बहिर्मुखता (introverted-extraverted) और सांवेगिक स्थिरता-अस्थिरता का मूल्यांकन किया। 32 व्यक्तित्व विशेषक इन आयामों की विशेषता के रूप में बताए गए हैं। बाद में चलकर आइजेंक ने एक तीसरा आयाम मनस्तापिता (psychoticism) इस परीक्षण में शामिल किया। यह मनोविकारों से संबंधित है जो दूसरों के लिए भावनाओं में कमी, लोगों के साथ अंत:क्रिया करने का एक कठोर तरीका तथा सामाजिक परंपराओं की अवज्ञा करने की प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। इस आयाम पर उच्च अंक प्राप्त करने वाले व्यक्ति आक्रामक, अहंकेंद्रिक एवं समाजविरोधी होते हैं। इस परीक्षण का भी व्यापक रूप से प्रयोग किया गया है।

सोलह व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली (16 पी.एफ)

यह परीक्षण कैटेल के द्वारा विकसित किया गया है। अपने अध्ययनों के आध ार पर उन्होंने व्यक्तित्व का वर्णन करने वाले कारकों के एक बृहत् समुच्चय की पहचान की तथा बाद में मूल व्यक्तित्व संरचना की पहचान के लिए कारक विश्लेषण का उपयोग किया। आप इस सांख्यिकीय तकनीक के सम्बन्ध में बाद में सीखेंगे। इस परीक्षण में घोषणात्मक कथन दिए गए हैं और प्रयोज्य इसके विशिष्ट स्थिति के प्रति दिए गए विकल्पों के समुच्चय से

किसी एक विकल्प का चयन कर अनुक्रिया देता है। इस परीक्षण का उपयोग उच्च विद्यालय स्तर के विद्यार्थियों तथा वयस्कों के लिए किया जा सकता है। यह परीक्षण व्यावसायिक निर्देशन, व्यावसायिक अन्वेषण एवं व्यावसायिक परीक्षण में अत्यंत उपयोगी पाया गया है।

कुछ लोकप्रिय परीक्षणों के अतिरिक्त जो आत्म-प्रतिवेदन तकनीक का उपयोग करते हैं, जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, कुछ दूसरे परीक्षण भी हैं जो व्यक्तित्व के विशिष्ट आयामों (जैसे - सत्तावाद, नियंत्रण-स्थान, आशावाद इत्यादि) का मूल्यांकन करने का प्रयत्न करते हैं।

आत्म-प्रतिवेदन मापों में अनेक समस्याएँ या न्यूनताएँ पाई जाती हैं। सामाजिक वांछनीयता उनमें से एक है। उत्तरदाता में सामाजिक दृष्टि से वांछनीय तरीके से ही एकांशों के प्रति अनुक्रिया करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। दूसरी समस्या अनुमनन प्रयोज्य में एक प्रवृत्ति यह भी पाई जाती है कि वह एकांशों अथवा प्रश्नों की विषयवस्तु से निरपेक्ष होकर उससे सहमत हो जाता है। यह प्रायः देखा जा सकता है जब प्रयोज्य, एकांशों के प्रति 'हाँ' की अनुक्रिया प्रदान करता है। इन प्रवृत्त्यिों से व्यक्तित्व के मूल्यांकन की विश्वसनीयता कम हो जाती है।

यहाँ इस चरण पर आवश्यक है कि एक सावधानी के प्रति आपका ध्यान आकर्षित किया जाए। यह याद रखें कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण तथा व्यक्तित्व की समझ के लिए उच्चस्तरीय कौशल और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। जब तक आप किसी विशेषज्ञ के सचेत पर्यवेक्षण में इष्टतम स्तर तक इन कौशलों को अर्जित न कर लें तब तक आपको अपने उन मित्रों जो मनोविज्ञान का अध्ययन नहीं करते हैं के व्यक्तित्व का परीक्षण तथा उसकी व्याख्या करने का जोखिम नहीं उठाना चाहिए।

प्रक्षेपी तकनीक

अब तक व्यक्तित्व के मूल्यांकन की जिन तकनीकों का उल्लेख किया गया है वे सब प्रत्यक्ष तकनीकें हैं जिनमें व्यक्ति से सीधे उसके सम्बन्ध में सूचनाएँ प्राप्त करके उसके व्यक्तित्व के बारे में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है और वह व्यक्ति स्पष्ट रूप से जानता है कि उसके

व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जा रहा है। इन स्थितियों में लोग प्रायः आत्मचेतन का अनुभव करते हैं तथा अपनी निजी या अंतरंग भावनाओं, विचारों और अभिप्रेरणाओं को व्यक्त करने में हिचकिचाते हैं। वे जब भी ऐसा करते हैं तो प्रायः सामाजिक दृष्टि से वांछनीय तरीके के अनुरूप व्यवहार करने का प्रयत्न करते हैं।

मनोविश्लेषनात्मक सिद्धांत के अनुसार मानव व्यवहार का एक बड़ा भाग अचेतन अभिप्रेरणाओं द्वारा नियमित होता है। व्यक्तित्व-मूल्यांकन की प्रत्यक्ष विधियों द्वारा हमारे व्यवहार के अचेतन पक्ष को उद्घाटित नहीं किया जा सकता है।

इसलिए ये विधियाँ किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का वास्तविक उल्लेख करने में असफल हो जाती हैं। मूल्यांकन की अप्रत्यक्ष विधियों का उपयोग करके इन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। प्रक्षेपी तकनीकें इसी वर्ग की विधियों के अंतर्गत आती हैं।

प्रक्षेपी तकनीकों का विकास अचेतन अभिप्रेरणाओं एवं भावनाओं का मूल्यांकन करने के लिए किया गया है। ये तकनीकें इस अभिग्रह पर आधारित हैं कि कम संरचित अथवा असंरचित उद्दीपक अथवा स्थिति व्यक्तियों को उस स्थिति पर अपनी भावनाओं, इच्छाओं तथा आवश्यकताओं को प्रक्षेपन करने का अवसर प्रदान करता है। विशेषज्ञों द्वारा इन प्रक्षेपणों की व्याख्या की जाती है। विभिन्न प्रकार की प्रक्षेपी तकनीकें विकसित की गई हैं जिनमें व्यक्तित्व के मूल्यांकन के लिए विभिन्न प्रकार की उद्दीपक सामग्रियों और स्थितियों का प्रयोग किया जाता है। इनमें से कुछ तकनीकों में उद्दीपकों (जैसे- शब्द, मसिलक्ष्म या स्याही-धब्बा) के साथ प्रयोज्य को अपने साहचर्यों को बताने की आवश्यकता होती है, कुछ में चित्रों को देखकर कहानी लिखनी होती है, कुछ में वाक्यों को पूरा करने की आवश्यकता होती है, कुछ में आरेखों द्वारा अभिव्यक्ति अपेक्षित होती है तथा कुछ में उद्दीपकों के एक बृहत् समुच्चय में से उद्दीपकों का वरण करने के लिए कहा जाता है।

यद्यपि इन तकनीकों में प्रयुक्त उद्दीपकों और अनुक्रियाओं की प्रकृति में पर्याप्त भिन्नताएँ पाई जाती हैं फिर भी इन सभी में निम्नलिखित विशेषताएँ समान रूप से पाई जाती हैं-

NOTES

1. उद्दीपक सापेक्ष रूप से अथवा पूर्णतः असंरचित तथा अनुपयुक्त ढंग से परिभाषित होते हैं।
2. जिस व्यक्ति का मूल्यांकन किया जाता है उसे साधारणतया मूल्यांकन के उद्देश्य, अंक प्रदान करने की विधि और व्याख्या के सम्बन्ध में नहीं बताया जाता है।
3. व्यक्ति को यह सूचना दे दी जाती है कि कोई भी अनुक्रिया सही या गलत नहीं होती है।
4. प्रत्येक अनुक्रिया व्यक्तित्व के एक महत्वपूर्ण पक्ष को प्रकट करने वाली समझी जाती है।
5. अंक प्रदान करना एवं व्याख्या करना लंबा (अधिक समय लेने वाला) और कभी-कभी आत्मनिष्ठ होता है।

प्रक्षेपी तकनीकें मनोमितिक परीक्षणों से अनेक प्रकार से भिन्न होती है। वस्तुनिष्ठ ढंग से प्रक्षेपी तकनीकों में अंक प्रदान नहीं किये जा सकते हैं। इनमें प्रायः गुणात्मक विश्लेषणों की आवश्यकता होती है जिसके लिए कठिन प्रशिक्षण अपेक्षित है। आगे कुछ प्रसिद्ध प्रक्षेपी तकनीकों का संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है।

रोर्शा मसिलक्ष्म परीक्षण

यह परीक्षण हर्मन रोर्शा (Hermann Rarschach) द्वारा विकसित किया गया है। इस परीक्षण में 10 मसिलक्ष्म या स्याही-धब्बे होते हैं। उनमें से पाँच काली तथा सफेद रंगों के हैं, दो कुछ लाल स्याही के साथ हैं एवं बाकी तीन पेस्टल रंगों के हैं। धब्बे एक विशिष्ट आकृति या आकार के साथ सममितीय रूप में दिए गए हैं। प्रत्येक धब्बा 1"×10" के आकार के एक सफेद कार्ड बोर्ड के केंद्र में मुद्रित (छपा हुआ) है। ये धब्बे मूलतः एक कागज के पन्ने पर स्याही गिराकर फिर उसे आधे पर से मोड़कर बनाए गए थे (इसलिए इन्हें मसिलक्ष्म परीक्षण कहते हैं)। इन कार्डों को व्यक्तिगत रूप से प्रयोज्यों को दो चरणों में दिखाया जाता है। पहले चरण को निष्पादन मुख्य अथवा उपयुक्त कहते हैं जिसमें प्रयोज्यों को कार्ड दिखाए जाते हैं और उनसे पूछा जाता है कि प्रत्येक कार्ड में वे क्या देख रहे हैं। दूसरे चरण को पूछताछ कहा जाता

है जिसमें प्रयोज्य से यह पूछकर कि कहाँ, कैसे एवं किस आधार पर कोई विशिष्ट अनुक्रिया उनके द्वारा की गई है, इस आधार पर उनकी अनुक्रियाओं का एक विस्तृत विवरण तैयार किया जाता है। प्रयोज्य की अनुक्रियाओं को एक सार्थक संदर्भ में रखने के लिए बिल्कुल ठीक या सटीक निर्णय आवश्यक है। इस परीक्षण के उपयोग एवं व्याख्या के लिए विस्तृत प्रशिक्षण आवश्यक होती है। प्रदत्तों की व्याख्या के लिए कंप्यूटर तकनीकों को भी विकसित किया गया है।

कथानक संप्रत्यक्षण परीक्षण (टी.ए.टी.)

यह परीक्षण मॉर्गन (morgan) एवं मरे (murray) द्वारा प्रतिपादित किया गया है। मसिलक्ष्म परीक्षण की तुलना में यह थोड़ा अधिक संरचित परीक्षण है। इस परीक्षण में 30 काली और सफेद रंगों के सचित्र कार्ड एवं एक कार्ड खाली (सादा) होते हैं। प्रत्येक सचित्र कार्ड एक या अधिक लोगों को विभिन्न स्थितियों में चित्रित करता है। प्रत्येक चित्र को एक कार्ड पर मुद्रित किया गया है। कुछ कार्डों का उपयोग वयस्क पुरुषों या महिलाओं पर होता है। अन्य कार्डों का उपयोग बालकों या बालिकाओं पर तथा कुछ का संयुक्त रूप से प्रयोग होता है। एक प्रयोज्य के लिए 20 कार्ड उपयुक्त होते हैं, हालाँकि इससे कम संख्या में भी कार्ड का उपयोग सफलतापूर्वक किया गया है।

कार्डों को एक-एक करके प्रयोज्य के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और प्रयोज्य को चित्र में प्रस्तुत स्थिति का एक कहानी द्वारा वर्णन करने के लिए कहा जाता है- किस कारण से यह स्थिति उत्पन्न हुई, इस क्षण क्या घटित हो रहा है, भविष्य में क्या घटित होगा तथा चित्र में प्रस्तुत विभिन्न पात्र क्या अनुभव ओर चिंतन कर रहे हैं? टी.ए.टी. पर प्राप्त अनुक्रियाओं को अंक प्रदान करने की एक मानक प्रक्रिया होती है। बच्चों के लिए और वृद्धों के लिए इस परीक्षण को रूपांतरित किया गया है। उमा चौधरी (Uma Chaudhary) द्वारा किया गया टी.ए.टी. का भारतीय अनुकूलन भी उपलब्ध है।

रोजेनज्विग का चित्रगत कुंठा अध्ययन (पी.-एफ. अध्ययन)

यह परीक्षण रोजेनज्विग (Rosenzweig) द्वारा यह जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रतिपादित किया गया कि कुंठा उत्पन्न करने वाली स्थिति में लोग कैसे आक्रामक व्यवहार अभिव्यक्त करते हैं। यह परीक्षण व्यंग्य चित्रों की सहायता

से विभिन्न स्थितियों को प्रदर्शित करता है जिसमें एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को कुंठित करते हुए अथवा किसी कुंठात्मक स्थिति के प्रति दूसरे व्यक्ति का ध्यान आकर्षित करते हुए दिखाया जाता है। प्रयोज्य से यह पूछा जाता है कि दूसरा व्यक्ति (कुंठित) क्या कहेगा अथवा क्या करेगा। अनुक्रियाओं का विश्लेषण आक्रामकता के प्रकार तथा दिशा के आधार पर किया जाता है। इस बात की जाँच करने का प्रयास किया जाता है कि क्या बल कुंठा उत्पन्न करने वाली वस्तु अथवा कुंठित व्यक्ति के संरक्षण अथवा समस्या के रचनात्मक समाधान पर दिया गया है। आक्रामकता की दिशा पर्यावरण के प्रति अथवा स्वयं के प्रति हो सकती है। यह भी संभव है कि स्थिति को टाल देने तथा उसके महत्व को घटा देने के प्रयास में आक्रामकता की स्थिति समाप्त भी हो सकती है। पारीक ने भारतीय जनसंख्या पर प्रयोग के लिए इस परीक्षण को रूपांतरित किया है।

वाक्य-समापन परीक्षण

इस परीक्षण में अनेक अपूर्ण वाक्यों का उपयोग किया जाता है। वाक्य का आरंभिक भाग पहले प्रयोज्य के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तथा उसके बाद प्रयोज्य को वाक्य के अंतिम भाग को समाप्त करना होता है। ऐसा अभिगृहीत है कि वाक्य के अंतिम भाग को प्रयोज्य जिस प्रकार समाप्त करता है, वह उसकी अभिवृत्तियों, अभिप्रेरणाओं और द्वंद्वों को प्रतिबिंबित करता है। यह परीक्षण प्रयोज्यों को अनेक ऐसे अवसर प्रदान करता है कि वे अपनी अंतर्निहित अचेतन अभिप्रेरणाओं को अभिव्यक्त कर सकें।

वाक्य-समापन परीक्षण के कुछ प्रतिदर्श एकांशों को नीचे दिया गया है-

1. मेरे पिता ....।
2. मुझे सबसे अधिक भय ....।
3. मेरी माँ के बारे में सबसे अच्छी बात है कि ....।
4. मुझे इस बात पर गर्व है कि ....।

व्यक्तांकन परीक्षण

यह एक सरल परीक्षण है जिसमें प्रयोज्य को एक कागज के पन्ने पर किसी

व्यक्ति का चित्रांकन करने के लिए कहा जाता है। चित्रण को सुकर बनाने के लिए प्रयोज्य को एक पेन्सिल तथा रबड़ (मिटाने का) दिया जाता है। चित्रांकन के समापन के बाद प्रयोज्य से एक विपरीत लिंग के व्यक्ति का चित्रांकन करने के लिए कहा जाता है। अंततः प्रयोज्य से उस व्यक्ति के सम्बन्ध में एक कहानी लिखने को कहा जाता है मानो वह किसी उपन्यास या नाटक का एक पात्र हो। व्याख्याओं के कुछ उदाहरण निम्नलिखित प्रकार के होते हैं-

1. मुखाकृति का लोप यह संकेत करता है कि व्यक्ति किसी उच्चस्तरीय द्वंद्व से अभिभूत अंतवैयक्तिक संबंध को टालने का प्रयास कर रहा है।

2. गरदन पर आलेखीय जोर देना आवेगों के नियंत्रण के अभाव का संकेत करता है।

3. अनानुपातिक रूप से बड़ा सिर आंगिक रूप से मस्तिष्क रोग तथा सरदर्द के प्रति दुश्चिंता को सूचित करता है।

प्रक्षेपी तकनीकों की सहायता से व्यक्तित्व का विश्लेषण अत्यंत रोचक प्रतीत होता है। यह हमें किसी व्यक्ति की अचेतन अभिप्रेरणाओं, गहन द्वंद्वों एवं संवेगात्मक मनोग्रंथियों को समझने में सहायता करता हैं। यद्यपि इन तकनीकों में अनुक्रियाओं की व्याख्या के लिए परिष्कृत कौशलों तथा विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त अंक प्रदान करने की विश्वसनीयता और व्याख्याओं की वैधता से संबंधित कुछ समस्याएँ भी होती हैं लेकिन व्यावसायिक मनोवैज्ञानिकों ने इन तकनीकों को नितांत उपयोगी पाया है।

व्यवहारपरक विश्लेषण

विभिन्न स्थितियों में व्यक्ति का व्यवहार हमें उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में सार्थक सूचनाएँ प्रदान कर सकता है। व्यवहार का प्रेक्षण व्यवहारपरक विश्लेषण के आधार का काम करता है। एक प्रेक्षक की रिपोर्ट में जो प्रदत्त होते हैं, वे साक्षात्कार, प्रेक्षण, निर्धारण, नाम निर्देशन और स्थितिपरक परीक्षणों से प्राप्त होते हैं। हम इन विभिन्न प्रक्रियाओं की कुछ विस्तार से जाँच करेंगे।

NOTES

साक्षात्कार

व्यक्तित्व के मूल्यांकन के लिए साक्षात्कार एक सामान्यतः प्रयुक्त होने वाली विधि है। इसमें मूल्यांकन किए जाने वाले व्यक्ति से बातचीत की जाती है तथा उससे कुछ विशिष्ट प्रश्न पूछे जाते हैं। नैदानिक साक्षात्कारों में साध ारणतया गहन रूप से साक्षात्कार किए जाते हैं जिसमें प्रयोज्यों द्वारा दिए जाने वाले उत्तरों के परे भी दृष्टि रखी जाती है। मूल्यांकन के उद्देश्य के आधार पर साक्षात्कार संरचित अथवा असंरचित हो सकते हैं।

असंरचित साक्षात्कारों (unstructured interviews) में साक्षात्कारकर्ता अनेक प्रश्नों को किसी व्यक्ति से पूछ कर उसके बारे में एक छवि विकसित करने का प्रयत्न करता है। एक व्यक्ति जिस प्रकार अपने आपको प्रस्तुत करता है और प्रश्नों का उत्तर देता है उसमें उसके व्यक्तित्व को उद्घाटित करने के लिए पर्याप्त संभाव्यता होती है। संरचित साक्षात्कारों (structured interviews) में अत्यंत विशिष्ट प्रकार क प्रश्न पूछे जाते हैं और एक निश्चित या नियत प्रक्रिया का पालन किया जाता है। ऐसा प्रायः साक्षात्कार किए जाने वाले व्यक्तियों (साक्षात्कारदाताओं) की वस्तुनिष्ठ तुलना करने के लिए किया जाता है। निर्धारण मापनियों का उपयोग मूल्यांकनों की वस्तुनिष्ठता में और अधिक वृद्धि कर सकता है।

प्रेक्षण

व्यवहारपरक प्रेक्षण एक अन्य विधि है जिसका व्यक्तित्व के मूल्यांकन के लिए बहुत अधिक प्रयोग किया जाता है। यद्यपि हम लोगों को ध्यानपूर्वक देखते हैं और उनके व्यक्तित्व के प्रति छवि निर्माण करते हैं तथपि व्यक्तित्व मूल्यांकन के लिए प्रेक्षण विधि का उपयोग एक अत्यंत परिष्कृत प्रक्रिया है जिसको अप्रशिक्षित लोगों के प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है। इसमें प्रेक्षक का विशिष्ट प्रशिक्षण और किसी व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व के मूल्यांकन के लिए व्यवहारों के विश्लेषण के सम्बन्ध में विस्तृत मार्गदर्शी सिद्धांत भी अपेक्षित होते हैं। उदाहरण के लिए, एक नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपने सेवार्थी की उसके परिवार के सदस्यों तथा गृहवीक्षकों या अतिथियों के साथ होने वाली अंतःक्रियाओं का प्रेक्षण कर सकता है। सावधानी से अभिकल्पित प्रेक्षण के साथ एक नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपने सेवार्थी के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में पर्याप्त अंतर्दृष्टि विकसित कर सकता है।

बारंबार तथा व्यापक उपयोग के बावजूद भी प्रेक्षण और साक्षात्कार विधियों में निम्नलिखित सीमाएँ पाई जाती हैं-

1. इन विधियों द्वारा उपयोगी प्रदत्त के संग्रह के लिए अपेक्षित व्यावसायिक प्रशिक्षण कठिन तथा समयसाध्य होता है।
2. इन तकनीकों द्वारा वैध प्रदत्त प्राप्त करने के लिए मनोवैज्ञानिक में भी परिपक्वता आवश्यक होती है।
3. प्रेक्षक की उपस्थिति मात्र परिणामों को दूषित कर सकती है। एक अपरिचित के रूप में प्रेक्षक प्रेक्षण किए जाने वाले व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित कर सकता है जिसके कारण प्राप्त प्रदत्त अनुपयोगी हो सकते हैं।

व्यवहारपरक निर्धारण

शैक्षिक एवं औद्योगिक वातावरण में व्यक्तित्व के मूल्यांकन के लिए प्रायः व्यवहारपरक निर्धारण का उपयोग किया जाता है। व्यवहारपरक निर्धारण सामान्यतया उन लोगों से लिए जाते हैं जो निर्धारण किए जाने वाले व्यक्ति को घनिष्ठ रूप से जानते हैं तथा उनके साथ लंबी समयावधि तक अंतःक्रिया कर चुके होते हैं अथवा जिनको प्रेक्षण करने का अवसर उन्हें प्राप्त हो चुका होता है। इस विधि में योग्यता निर्धारक व्यक्तियों को उनके व्यवहारपरक गुणों के आधार पर कुछ भागों में रखने का प्रयास करते हैं। इन संवर्गों में विभिन्न संख्याएँ या वर्णनात्मक शब्द हो सकते हैं। यह पाया गया है कि संख्याओं अथवा सामान्य वर्णनात्मक विशेषणों का निर्धारण मापनियों में उपयोग प्रायः योग्यता निर्धारक लिए भ्रम उत्पन्न करता है। प्रभावी ढंग से निर्धारणों का प्रयोग करने के लिए आवश्यक है कि विशेषकों को सावधानीपूर्वक लिखे गए व्यवहारपरक स्थिरकों के आधार पर स्पष्ट रूप से परिभाषित होना चाहिए।

निर्धारण विधि की प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं-

1. योग्यता निर्धारक प्रायः कुछ अभिनतियों को प्रदर्शित करते हैं जो विभिन्न विशेषकों के सम्बन्ध में उनके निर्णय को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, हममें से अधिकांश लोग किसी एक अनुकूल तथा प्रतिकूल विशेषक से अत्यधिक प्रभावित हो जाते हैं। इसी के

आधार पर प्रायः योग्यता निर्धारक किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में अपना समग्र निर्णय दे देता है। इस प्रवृत्ति को परिवेश प्रभाव कहा जाता है।

NOTES

2. योग्यता निर्धारक में एक यह प्रवृत्ति भी पाई जाती है कि हस्तक्षेप करने का अनुदेश दिया गया होता है। इस परीक्षण में एक प्रकार का भूमिका-निर्वाह शामिल होता है जो उस व्यक्ति से करने के लिए कहा जाता है, उसके सम्बन्ध में एक वह व्यक्तियों को या तो छोर की स्थितियों का परिहार कर मापनी के मध्य में रखता है (मध्य संवर्ग अभिनति) या फिर मापनी के बीच संवर्गों का परिहार कर (आत्यंतिक अनुक्रिया अभिनति) छोर की स्थितियों में रखता है।

योग्यता निर्धारकों के उपयुक्त प्रशिक्षण तथा ऐसी मापनियों के विकास जिसमें अनुक्रिया अभिनतियों की संभावना कम हो, इनके द्वारा उपर्युक्त प्रवृत्तियों को समाप्त किया जा सकता है।

नाम निर्देशन

इस विधि का उपयोग प्रायः समकक्षी मूल्यांकन प्राप्त करने के लिए किया जाता है। इसका उपयोग उन व्यक्तियों के साथ किया जा सकता है जिनमें दीर्घकालिक अंतःक्रिया होती रही हो तथा जो एक-दूसरे को अच्छी तरह से जानते हों। नाम निर्देशन विधि के उपयोग में प्रत्येक व्यक्ति से समूह के एक अथवा एक से अधिक व्यक्तियों का वरण या चयन करने के लिए कहा जाता है जिसके अथवा जिनके साथ वह कार्य करना, पढ़ना, खेलना एवं किसी अन्य क्रिया में सहभागी होना पसंद करेगा/करेगी। व्यक्ति से चुने गए व्यक्तियों के वरण के विशिष्ट कारणों के सम्बन्ध में भी पूछा जा सकता है। इस प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व और व्यवहारपरक गुणों को समझने के लिए प्राप्त नाम निर्देशनों का विश्लेषण किया जा सकता है। यह तकनीक अत्यंत विश्वसनीय पाई गई है, यद्यपि यह व्यक्तिगत अभिनतियों से प्रभावित हो सकती है।

स्थितिपरक परीक्षण

व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने के लिए विभिन्न प्रकार के स्थितिपरक परीक्षण निर्मित किए गए हैं। सबसे अधिक प्रयोग किया जाने वाला इस प्रकार का एक परीक्षण स्थितिपरक दबाव परीक्षण हैं। कोई व्यक्ति दबावमय स्थितियों में

NOTES

किस प्रकार व्यवहार करता है, इसके सम्बन्ध में हमें सूचनाएँ प्रदान करता है। इस परीक्षण में एक व्यक्ति को एक दिए गए कृत्य पर निष्पादन कुछ ऐसे दूसरे लोगों के साथ करना होता है, जिनको उस व्यक्ति के साथ असहयोग करने तथा उसके निष्पादन में शाब्दिक प्रतिवेदन भी प्राप्त किया जाता है। स्थिति वास्तविक भी हो सकती है अथवा इसे एक वीडियो खेल के द्वारा उत्पन्न भी किया जा सकता है।

आत्म-सम्मान (Self-Esteem)

आत्म-सम्मान हमारे आत्म का एक महत्वपूर्ण अंग है। मानव के रूप में हम हमेशा ही अपने मूल्य अथवा मान तथा अपनी योग्यता के विषय में आकलन करते रहते हैं। मानव का अपने सम्बन्ध में यह मूल्य-निर्णय ही आत्म-सम्मान (Self-Esteem) कहलाता है।

कुछ लोगों में आत्म-सम्मान उच्चस्तरीय होता है, जबकि कुछ लोगों में आत्मसम्मान निम्नस्तरीय ही होता है, किसी भी व्यक्ति के आत्मसम्मान का मूल्यांकन करने के लिए व्यक्ति के सम्मुख विभिन्न प्रकार के कथन प्रस्तुत किये जाते हैं, तत्पश्चात् उस व्यक्ति से पूछा जाता है कि प्रस्तुत किये गए कथन उसके सन्दर्भ में सही हैं यह बतायें।

उदाहरणार्थ; किसी बालक/बालिका से यह पूछा जा सकता है कि, "मैं गृहकार्य करने में अच्छा हूँ" या "मुझे अलग-अलग प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए चुना जाता है" या "मेरे मित्रों द्वारा मुझे बहुत पसन्द किया जाता है" जैसे कथन उसके सन्दर्भ में कहीं तक सही हैं?

यदि बालक/बालिका यह बताता/बताती है, कि प्रस्तुत कथन उसके सन्दर्भ में सही हैं तो उसका आत्म-सम्मान उस दूसरे बालक/बालिका की अपेक्षा अत्यधिक होगा जो यह बताता/बताती है, कि यह कथन उस व्यक्ति के विषय में सही नहीं है।

उपरोक्त अध्ययनों से यह जानकारी प्राप्त होती है, कि छः से आठ वर्ष तक के बच्चों में आत्मसम्मान के चार क्षेत्रों में उत्पत्ति हो जाती है- सामाजिक क्षमता, शैक्षिक क्षमता, शारीरिक/खेलकूद सम्बन्धी क्षमता तथा शारीरिक रूप से जो आयु के बढ़ने के साथ-साथ और अधिक श्रेष्ठ होता जाता है।

अपनी स्थिर प्रवृत्तियों के अनुरूप अपने प्रति धारणा बनाने की क्षमता हमें भिन्न-भिन्न मूल्यांकनों को जोड़कर अपने सम्बन्ध में एक सामान्य मनोवैज्ञानिक प्रतिमा निर्मित करने का अवसर देती है। इसी तथ्य को हम आत्म-सम्मान की भावना के रूप में जानते हैं।

हमारे दैनिक जीवन के व्यवहारों द्वारा आत्म-सम्मान अपना घनिष्ठ सम्बन्ध दर्शाता है। उदाहरणार्थ; जिन बच्चों में आत्म-सम्मान उच्च होता है, उनका निष्पादन विद्यालयों में निम्न आत्म-सम्मान रखने वाले बच्चों की तुलना में अधिक होता है और जिन छात्रों में उच्च सामाजिक आत्म-सम्मान होता है, उनको निम्न सामाजिक आत्म-सम्मान रखने वाले छात्रों की तुलना में सहपाठियों द्वारा अधिक पसन्द किया जाता है।

दूसरी ओर जिनमें दुश्चिन्ता, अवसाद तथा समाजविरोधी व्यवहार पाया जाता है उन छात्रों में सभी क्षेत्रों में निम्न आत्म-सम्मान होता है। इन अध्ययनों से यह पता चलता है कि जो माता-पिता अपने बच्चों का पालन-पोषण अत्यधिक प्रेमपूर्वक करते हैं उन बालकों में आत्मसम्मान भी उच्च ही विकसित होता है क्योंकि ऐसा होने पर बालक अपने आपको अत्यधिक सक्षम तथा योग्य समझता है।

माता-पिता जिन बच्चों के सहायता न माँगने पर भी उनके निर्णय स्वयं लेते हैं उन बच्चों में आत्म-सम्मान का स्तर निम्न पाया जाता है।

बच्चे के आत्मसम्मान विकास में शिक्षक की भूमिका

लोग हमारे जैसे ही हमारे साथ व्यवहार करते हैं हम खुद का इलाज करते हैं इस कथन के साथ चर्चा करना मुश्किल है। कई जीवन उपलब्धियां सीधे खुद और उसके बलों में व्यक्ति के विश्वास से संबंधित हैं। और इस मामले में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका आत्मसम्मान द्वारा की जाती है। यह शिशु की उम्र से बनता है तथा उसका भविष्य, एक व्यक्ति के भविष्य के जीवन, उसके कार्यों, कुछ घटनाओं और आसपास के लोगों के प्रति रवैया पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। एक बच्चे के आत्मसम्मान एवं आत्मसम्मान का विकास सबसे महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है, जो कि एक पूर्ण व्यक्तित्व को लाने के लिए माता-पिता को उनके सामने रखना चाहिए।

ज्यादातर शिक्षकों की राय है कि उस व्यक्ति के चरित्र का निर्माण होता है जिसके कारण यह बढ़ता है। यदि किसी व्यक्ति की प्रारंभिक उम्र से अपने शौक में जोरदार प्रोत्साहन तथा समर्थन किया जाता है, तो वयस्क जीवन में, वह किसी भी मुश्किल मामले में और जीवन के किसी भी परिस्थिति में ताकते महसूस करेंगे। लेकिन अक्सर माता-पिता शिक्षा में एक बड़ी गलती करते हैं, यह देखते हुए कि उनके किसी भी वाक्यांश गंभीरता से तथा स्थायी रूप से बच्चे के मनोदशा को चोट पहुँचा सकते हैं।

इस तरह के वाक्यांशों के उदाहरणों में बहुत अधिक हैं :

1. "मुझे ऐसी दंड की आवश्यकता क्यों है? आप से कभी नहीं होगा।"
2. "लज्जित मत करो, तुममें से क्या बढ़ेगा?"
3. "बेवकूफ काम करना बंद करो, एक गंभीर मामला ले लो।"

एक बच्चे के आत्मसम्मान पर माता-पिता का प्रभाव बहुत बड़ा है। एक स्पंज की तरह एक बच्चा उसे प्रत्येक बात से बात करता है। अगर बच्चे को बताया जाता है कि वह कुछ नहीं कर सकता है और नहीं कर सकता, तो वह स्कूल, कैरियर और किसी भी गतिविधि में अपनी सफलता पर शायद ही कोई भरोसा कर सकता है। आइए एक कम आत्मसम्मान वाले व्यक्ति की एक संक्षिप्त विशेषता पर विचार करें-

1. गरिमा की भावना के साथ एक व्यक्ति लगातार अपमान, उपहास तथा अपमान के लिए इंतजार कर रहा है;
2. वह एक हारे हुए और परिस्थितियों का शिकार बन जाता है;
3. कई अवरुद्ध परिसर हैं, लोगों पर भरोसा नहीं करते, अकेले रहते हैं और लगातार पृथक होते हैं;
4. निर्णय लेने में लगातार कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है;
5. हर चीज और प्रत्येक किसी को डर लगता है, वह जीवन के हालात से डरता है और खुद को अपमानित और दबाने देता है;

NOTES

6. अंत में, एक व्यक्ति जीवन के प्रति उदासीन हो सकता है और अपनी विफलताओं से मारे जा सकता है, जो नशीले पदार्थों की नशे में बदल जाता है या शराब का दुरुपयोग आरम्भ करता है।

ये क्या कुछ उदाहरण है एक बच्चे में एक कम आत्मसम्मान विकसित करने के लिए इसलिए, प्रारंभिक आयु से स्थिति को सही करने तथा बच्चे को अपने आप में विश्वास करना महत्वपूर्ण है एवं अगर आपको संदेह है कि आपके संतानों को आत्मसम्मान के साथ समस्या है या नहीं, तो आपको इसे स्वयं या एक मनोवैज्ञानिक की सहायता से जांचना होगा।

एक नियम के रूप में, एक बच्चे के आत्मसम्मान का निदान उनके कार्यों के विश्लेषण के कारण है। बच्चे के पहले कार्यों के साथ, पहली गलती भी आती है। बच्चे के जीवन की शुरुआत में यह महत्वपूर्ण है कि वह उसे अपने कार्यों को पर्याप्त रूप से समझ सके तथा उनका विश्लेषण करने में सक्षम हो। दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता जिस पर ध्यान देना है, वह खुद को स्वयं का रवैया है। यदि आप ध्यान दें कि बच्चा उदासीन नहीं है, न मिलने योग्य है तथा कुछ स्थितियों में असुरक्षित व्यवहार करता है, तो उसके साथ बातचीत करना और इस व्यवहार के कारणों का पता करना महत्वपूर्ण है। शायद वे स्वयं माता-पिता के व्यवहार में झूठ बोलते हैं वैसे, बच्चे की गरिमा की भावना भी उसी तरह से प्रभावित होती है जिस तरह से माता-पिता खुद को खुद से पेश करते हैं यदि पिता या मां लगातार जीवन और उनकी असपुलताओं के सम्बन्ध में शिकायत कर रहे हैं तो बच्चे जीवन के प्रति इस दृष्टिकोण को अपना सकते हैं।

बच्चों में आत्मसम्मान को सुधारना एक उद्देश्यपूर्ण तथा सतत प्रक्रिया होनी चाहिए और बच्चे के लिए भी अशुभ होना चाहिए। इसके लिए कई तरीके हैं-

1. बच्चे की गतिविधियों को विविधता दीजिए ताकि उन्हें अपने तथा उसके बलों का मूल्यांकन करने का मौका मिले। उदाहरण के लिए -
   - परियों की कहानियों और संगीत को सुनना (जो सुना और देखा गया था की चर्चा के बाद);

- आसपास के विश्व एवं विभिन्न प्रयोगों के अध्ययन;
- बच्चे को उसके ब्याज, प्रश्नों के जवाब आदि पर चर्चा करने में सहायता करें।

2. बच्चे को चुनने का अधिकार दें यह किसी भी कार्रवाई में प्रकट हो सकता है, उस प्लेट से आरम्भ होता है या किस खिलौने को खेलना और एक विकल्प के साथ समाप्त होता है जहां चलने के लिए जाना और किस प्रकार की गतिविधि करना है बच्चे के किसी भी गतिविधि को प्रोत्साहित करें तथा विभिन्न वर्गों और शौकों में उनकी रुचि। इससे उसे अपनी जिंदगी का चुनाव करना होगा।

3. संगीत, परियों की कहानियों, गीतों या परिवेश ध्वनि को सुनने के बाद एक-दूसरे ध्वनि भेद, विश्लेषण और क्या सुना दिया गया है का वर्णन मिलान करने के लिए सीखने के लिए अनुमति देगा। बाद में, यह बच्चे में मदद मिलेगी पूरी तरह से उनके विचारों तथा भावनाओं को व्यक्त करने के।

4. बच्चे के साथ संयुक्त गतिविधियाँ केवल आराम तथा आत्मविश्वास प्रदान नहीं करेगा।

कोई भी उभरने वाला प्रश्न तुरंत आपसे संतुष्ट हो जाएगा, जिससे कि बच्चे को आसपास की दुनिया में इस्तेमाल करने की अनुमति मिलेगी तथा इसे यथासंभव व्यापक रूप से जानना होगा।

वृद्धि के उपरोक्त तरीकों के अलावा बच्चों में आत्मसम्मान, यह ध्यान देने योग्य है कि आप बाहर से कैसे देखते हैं और आप बच्चे के साथ और अन्य लोगों के साथ कैसे व्यवहार करते हैं। यह याद रखने योग्य है कि बच्चों को न केवल खेल के माध्यम से जीवन सीखना है, बल्कि अनुकरण के माध्यम से भी। आपका सकारात्मक उदाहरण तथा स्पष्टीकरण है कि अलग-अलग कार्य करने के लायक क्यों नहीं है या नहीं, आपके बच्चे को जीवन में सही चुनाव करने एवं आत्मविश्वास का निर्माण करने की अनुमति मिलेगी तथा फिर आपको कोई सवाल नहीं होगा, एक बच्चे के लिए आत्मसम्मान कैसे बढ़ाएँ।

परीक्षापयोगी प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

1. आत्म से आप क्या समझते हैं ? इसके अवयवों का वर्णन कीजिए।
2. आत्म के प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
3. चेतना की सविस्तार व्याख्या कीजिए।
4. सामाजिक चेतना के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
5. चेतना के विभिन्न प्रकारों को समझाइए।
6. स्वयत्तता की सविस्तार व्याख्या कीजिए।
7. व्यक्तित्व के अर्थ एवं परिभाषाओं को समझाइए।
8. व्यक्तित्व के प्रकारानुसार वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।
9. व्यक्तित्व अध्ययन के प्रमुख उपागमों का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. आत्म से आपका क्या तात्पर्य है ?
2. भावनाओं तथा परिवर्तन की समझ से आप क्या समझते हैं ?
3. परिवर्तन से आपका क्या अभिप्राय है ?
4. परिवर्तन के प्रबन्ध को समझाइए।
5. व्यक्तित्व से आप क्या समझते हैं ?
6. व्यक्तित्व के शीलगुण सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं ?
7. आत्म सम्मान से आप क्या समझते हैं ?
8. बच्चे के आत्म सम्मान को बढ़ाने में शिक्षक भूमिका स्पष्ट कीजिए।

NOTES

3 भारतीय विद्यालय

अध्याय में सम्मिलित विषय-सामग्री :

- उद्देश्य
- प्राक्कथन
- भारतीय विद्यालयों के सन्दर्भ में वर्तमान स्थिति।
- परामर्श के विविध प्रकार
- निदेशात्मक परामर्श
- अनिदेशात्मक परामर्श
- समन्वित परामर्श
- राज्य एवं केन्द्रीय स्तर पर निर्देशन सेवाएँ प्रदान करने वाले संगठनों की आवश्यकता एवं उनके उद्देश्य
- केन्द्रीय योजना/संगठन
- राज्य स्तर पर निर्देशन सेवाएँ
- गैर सरकारी संगठनों की निर्देशन सेवाएँ प्रदान करने में भूमिका
- व्यावसायिक निर्देशन का अर्थ
- व्यावसायिक निर्देशन की प्रकृति
- व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्य
- व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता
- विभिन्न स्तरों पर व्यावसायिक निर्देशन
- व्यावसायिक अभ्यर्थियों की गतिशीलता
- व्यावसायिक परिपक्वता
- कैरियर मनोविज्ञान
- कैरियर निर्देशन का महत्व
- व्यवसाय चयन करते समय महत्वपूर्ण तथ्य
- रोजगार सूचना का अर्थ
- रोजगार सूचना का महत्व एवं प्रकृति

NOTES

- रोजगार सूचना की आवश्यकता
- रोजगार सूचना के स्रोत
- समूह निर्देशन-अर्थ, परिभाषा
- समूह निर्देशन का उद्देश्य एवं महत्व
- समूह निर्देशन प्रक्रिया
- समूह निर्देशन की समस्याएं एवं लाभ
- समूह निर्देशन के सिद्धान्त
- समूह निर्देशन के आवश्यक तत्व
- समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन
- समूह निर्देशन की प्रविध (तकनीकि)
- नेतृत्व : अर्थ एवं प्रकृति
- नेतृत्व के सिद्धान्त
- नेतृत्व की शैलियाँ
- एकतंत्रीय अथवा अधिकारिक शैली
- प्रजातांत्रिक शैली
- लेसेज़ फेयर अथवा अहस्तक्षेपी शैली
- पितातुल्य शैली
- व्यवहार शैली
- रूपान्तर शैली
- सहभागी शैली
- क्रियाकलाप
- परीक्षापयोगी प्रश्न।

उद्देश्य-

इस अध्याय अध्ययन के पश्चात् आप निम्न तथ्यों को समझ सकेंगे-

- भारतीय विद्यालयों के सन्दर्भ में वर्तमान स्थिति।
- परामर्श के विविध प्रकार
- निदेशात्मक परामर्श
- अनिदेशात्मक परामर्श

- समन्वित परामर्श
- राज्य एवं केन्द्रीय स्तर पर निर्देशन सेवाएँ प्रदान करने वाले संगठनों की आवश्यकता एवं उनके उद्देश्य
- केन्द्रीय योजना/संगठन
- राज्य स्तर पर निर्देशन सेवाएँ
- गैर सरकारी संगठनों की निर्देशन सेवाएँ प्रदान करने में भूमिका
- व्यावसायिक निर्देशन का अर्थ
- व्यावसायिक निर्देशन की प्रकृति
- व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्य
- व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता
- विभिन्न स्तरों पर व्यावसायिक निर्देशन
- व्यावसायिक अभ्यर्थियों की गतिशीलता
- व्यावसायिक परिपक्वता
- कैरियर मनोविज्ञान
- कैरियर निर्देशन का महत्व
- व्यवसाय चयन करते समय महत्वपूर्ण तथ्य
- रोजगार सूचना का अर्थ
- रोजगार सूचना का महत्व एवं प्रकृति
- रोजगार सूचना की आवश्यकता
- रोजगार सूचना के स्रोत
- समूह निर्देशन-अर्थ, परिभाषा
- समूह निर्देशन का उद्देश्य एवं महत्व
- समूह निर्देशन प्रक्रिया
- समूह निर्देशन की समस्याएं एवं लाभ
- समूह निर्देशन के सिद्धान्त
- समूह निर्देशन के आवश्यक तत्व
- समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन
- समूह निर्देशन की प्रविध (तकनीकि)
- नेतृत्व : अर्थ एवं प्रकृति

NOTES

- नेतृत्व के सिद्धान्त
- नेतृत्व की शैलियाँ
- एकतंत्रीय अथवा अधिकारिक शैली
- प्रजातांत्रिक शैली
- लेसेज़ फेयर अथवा अहस्तक्षेपी शैली
- पितातुल्य शैली
- व्यवहार शैली
- रूपान्तर शैली
- सहभागी शैली
- क्रियाकलाप

प्राक्कथन

किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व, मानसिक विकार तथा उसके लिए उपयुक्त परामर्शन/मनोपचार पद्धति को उसके सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा आर्थिक संदर्भों से अलग रखकर उपयुक्त ढंग से नहीं समझा जा सकता है। व्यक्ति के संदर्भ का संज्ञानात्मक सृष्टि की रचना में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। व्यक्ति के संदर्भों के अनुरूप ही उसका जीवन दर्शन विकसित होता है। जीवन एवं परिवेश में घटित होने वाली घटनाओं को व्यक्ति अपने जीवन दर्शन एवं दृष्टिकोण के अनुरूप अर्थ प्रदान करता है। व्यक्ति की आशाओं, अभिलाषाओं एवं जीवन में व्याप्त द्वन्द्वों का व्यक्ति के जीवन दर्शन के साथ गहरा सम्बन्ध होता है। विभिन्न व्यक्तियों के लिए जीवन में घटित होने वाली घटनाओं के निजी अर्थ होते हैं जो कि उसके संदर्भों द्वारा प्रभावित रहते हैं। परामर्शन की विविध प्रणालियाँ व्यक्ति के संज्ञान को पुनर्गठित करना लक्ष्य करती हैं। स्वाभाविक रूप में संज्ञानात्मक संगठन को समझने एवं पुनर्गठित करने के लिए उसके संदर्भ को ध्यान में रखा जाना चाहिए। भारत एक विस्तृत रूप में फैला हुआ भूक्षेत्र होने के अलावा प्राचीन संस्कृति, धर्मपरायण, ध ार्मिक विश्वासों की विविधता, लम्बे इतिहास; विकास की झलक के साथ सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक पिछड़ेपन के प्रभाव का चित्र प्रस्तुत करता है। परामर्शन कार्यक्रम के गठन और परामर्शन प्रविधि के चयन में इन कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

NOTES

भारतीय संदर्भ में परामर्शन के बारे में अलग अध्याय के तीन उद्देश्य हो सकते हैं। **प्रथम**, यह विचार करना कि भारत में लोगों की समस्याओं के प्रमुख रूप, उनकी आवृत्ति तथा परामर्शन सम्बन्धी आवश्यकताओं का रूप कैसा है। यह भी विचारणीय है कि लोगों की परामर्शन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपलब्ध सेवाओं का स्वरूप कैसा है। दूसरा विचारणीय विषय यह है कि भारतीय जीवन दर्शन, जीवन शैली, परिवेशीय संदर्भ में पाश्चात्य, आधुनिक, वैज्ञानिक चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में विकसित परामर्शन उपागम एवं उनकी प्रविधियाँ किस सीमा तक उपयोगी हैं। परामर्शन मनोविज्ञान की आधुनिक प्रविधियाँ जिनका विकास पाश्चात्य सभ्यता के संदर्भों में किया गया है, जिनकी वैधता और उपयोगिता के संबंध में अमेरिका एवं यूरोपीय देशों में संपन्न किये गये शोध अध्ययनों द्वारा साक्ष्य प्राप्त हुए हैं, भारतीय संदर्भ में यथावत उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकते हैं। भारतीय सन्दर्भ में उक्त उपागमों एवं उनकी प्रविधियों को सतर्कतापूर्वक प्रयोग किया जाना चाहिए। इस अध्याय का तीसरा और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न भारतीय संदर्भों में विकसित वैकल्पिक प्रणालियों के बारे में विचार करना है। भारतीय चिंतन और कष्ट निवारण की पद्धतियों का प्राचीन इतिहास है। सभी पद्धतियों की उपयोगिता निर्विवाद नहीं हो सकती परन्तु अनेक पद्धतियों के महत्त्व और उपयोगिता को आज सम्पूर्ण विश्व में स्वीकार किया जा रहा है।

- **भारतीय विद्यालयों के संदर्भ में वर्तमान स्थिति**

भारत में निर्देशन आन्दोलन जितनी त्वरित गति से प्रारम्भ हुआ उस अनुपात में बाद के दशकों में निर्देशन सेवाओं का विस्तार नहीं हुआ। इस दशा के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :-

(1) निर्देशन कार्यक्रमों हेतु आवश्यक धन की व्यवस्था नहीं की जाती है। भारतवर्ष के आर्थिक पिछड़ेपन एवं शिक्षा क्षेत्र की उपेक्षा को देखकर यह कहा जा सकता है कि ऐसा स्वाभाविक ही है;

(2) भारत में विद्यालय मूलतः व्यावसायिक हो गये हैं, जहाँ छात्र के हित की तुलना में विद्यालय की आय तथा बचत पर अधिक ध्यान दिया जाता है;

(3) भारत के शिक्षित लोग, अध्यापकगण, नेतृत्व वर्ग निर्देशन एवं परामर्शन के संप्रत्ययों अच्छी तरह से परिचित ही नहीं है। अधिकतर लोग इसे विदेशों में प्रदान किया जाने वाला विदेशी संप्रत्यय और सेवा मानते हैं;

NOTES

(4) निर्देशन और परामर्शन सेवा देने के लिए प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव है;

(5) विद्यार्थियों के समुचित हित के प्रति सभी वर्गों में समर्पण की कमी है;

(6) विद्यालयों में जहाँ अत्यधिक भीड़ है और अधिकतर विद्यालय अध्ययन अध्यापन संस्थानों के बदले मात्र परीक्षा संस्थाओं में बदल गये हैं वहीं सामाजिक/सामुदायिक स्तर पर भी समर्पणएवं प्रयत्न का अभाव है।

(7) व्यापक स्तर पर निर्देशन कार्यक्रमों के संचालन और निर्देशन कार्मिकों के प्रशिक्षण हेतु उपयुक्त नीति एवं योजना का अभाव है।

(8) शिक्षा को व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास का साधन बनाने का दर्शन वास्तव में स्वीकार नहीं किया गया है।

उच्च शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा से जुड़े संस्थान भी, जहाँ पर इस कार्यक्रम की व्यवस्था है, मुख्य रूप से व्यावसायिक स्थापन सेवा (Job placement service) देने में भी व्यस्त रहते हैं। प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर व्यापक रूप में निर्देशन एवं परामर्शन सेवाएँ उपलब्ध नहीं करायी जा रही है। विद्यार्थियों को आवश्यक समायोजनात्मक एवं सांवेगिक परामर्शन देने में वहाँ संचालित हो रहे कार्यक्रमों की विफलता के कारण ही विद्यार्थियों में आत्महत्या की प्रवृत्ति और स्वास्थ्य विरोधी व्यवहार की रोकथाम नहीं हो पा रही है।

आज इक्कीसवीं शताब्दी में प्रविष्ट भारत तथा विश्व के समस्त लोगों की समायोजन, संवेगात्मक सुरक्षा, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य, शिक्षा और व्यवहार से सम्बन्धित अनेक चुनौतियों की शिक्षा और निर्देशन कार्यक्रम से अनेक अपेक्षाएँ हैं। जनसंख्या वृद्धि नगरीकरण, औद्योगीकरण, कम्प्यूटरीकरण, पारस्परिक व्यवसाय एवं पारिवारिक संरचना का विघटन, आर्थिक उदारीकरण, भूमण्डलीकरण जैसे परिवर्तनों के बीच बच्चों, युवकों, वृद्धों सभी को विभिन्न रूपों में निर्देशन सेवाओं की आवश्यकता है। निर्देशन एवं परामर्शन के स्वरूप और दिशा का निर्धारण वर्तमान सामाजिक-औद्योगिक-आर्थिक परिदृश्य के आधार पर करने की आवश्यकता है। आज संयुक्त परिवारों का स्थान एकाकी परिवारों ने ग्रहण कर लिया है। माता-पिता कामकाजी हो गए है तथा जीवन की भाग दौड़ में इस प्रकार व्यस्त है कि अपने बच्चों के पालन-पोषण हेतु उनके पास पर्याप्त समय नहीं है। उद्योग जगह में अब मशीनों के पालन-पोषण

हेतु उनके पास पर्याप्त समय नहीं है। उद्योग जगत में अब मशीनों के पालन–पोषण हेतु उनके पास पर्याप्त समय नहीं है। उद्योग जगत में अब मशीनों की जगह स्वचालित मशीनें आ गई हैं, उत्पादन उद्योग की जगह सत्कार/सेवा उद्योग, ऑफिस में फाइलों के स्थान पर पेपरलेस ऑफिस; राष्ट्र की सीमाओं में संरक्षित उद्योग के स्थान पर अब अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा से जूझता उद्योग विकसित हो रहा है। कम्प्यूटर नेटवर्क से जुड़कर विश्व अब एक वैश्विक गाँव के रूप में सिमट गया है। शिक्षा के क्षेत्र में नयी विधाएँ और विशिष्टताएँ जैसे टेली मेडीसिन, माइक्रोसर्जरी, डिजिटल टेक्नोलॉजी, जेनेटिक इंजीनियरिंग, बायाटेक्नोलॉजी आदि विकसित हो गयी हैं तो विद्यार्थियों के सामने समस्या है कि वे शिक्षा का कौन–सा क्षेत्र चुनें। व्यवसाय क्षेत्र में रोजगार के लिए लोग देश से विदेश तक की दौड़ लगा रहे हैं। लाखों अल्पकुशल कारीगर अरब देशों की यात्रा कर रहे हैं। अपने देश में इंजीनियरों तथा डॉक्टरों के लिए भी रोजगार का अभाव है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में नयी चुनौतियाँ उत्पन्न डॉक्टरों के लिए भी रोजगार का अभाव है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में नयी चुनौतियाँ उत्पन्न हो रही है। आरामदेह जीवन शैली तथा मधुमेह, हृदयरोग में वृद्धि; फास्ट फूड संस्कृति; युवाओं के बीच सिगरेट, पान मसाला, अल्कोहल और औषधि के सेवन में वृद्धि; उन्मुक्त यौन जीवन शैली और एच० आई० वी० एवं एड्स का खतरा बढ़ता जा रहा है। स्वास्थ्य हितकारी व्यवहार विकसित करने की चुनौती प्रकट है। गीत, संगीत, पर्यटन, नाटक के स्थान पर केबल टी० वी० रात्रिकालीन डान्स क्लब, पॉप म्यूजिक, एनीमेशन फिल्में, ब्लू फिल्में आदि प्रचलन में आ गई है। पति–पत्नी के सम्बन्धों में तनाव और सम्बन्ध विच्छेद में वृद्धि की समस्या गम्भीर रूप में प्रकट हो रही है।

ऊपर दिये गए वर्णन का एक ही संकेत है– मानव जीवन में चतुर्दिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप जटिलता आ गयी है। उपयुक्त लक्ष्यों का चयन पहले की तुलना में कठिन हा गया है तथा शिक्षा, व्यवसाय, उपव्यवसाय (हॉबी/लेजर टाइम एक्टीवटी) और स्वास्थ्य के क्षेत्र में निर्देशन और परामर्शन की आवश्यकता बढ़ गयी है। भारतवर्ष में इस क्षेत्र में प्रयत्न नाम मात्र का है। यदि लोगों को वयस्क जीवन में प्रकट होने वाली समस्याओं से बचाना है अथवा संकट का सामना कर पाने की दिशा में समर्थ बनाना है तो प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय के स्तर पर निर्देशन कार्यक्रमों का व्यापक स्तर पर संचालन सुनिश्चित करना होगा। निर्देशन कार्यक्रम को सभी शिक्षण संस्थाओं तथा सामुदायिक स्थलों तक पहुँचाने की आवश्यकता है। यह भी सुनिश्चित

NOTES

किया जाना आवश्यक है कि निर्देशन कार्य व्यावसायिक स्थापन सेवा के क्षेत्र तक सीमित न रह जाये। विद्यालय एवं औद्योगिक परिवेश से बाहर पारिवारिक जीवन की समस्याओं पर भी निर्देशन एवं परामर्शन की आवश्यकता है।

व्यापक स्तर पर निर्देशन एवं परामर्शन सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए अन्य संसाधनों के अतिरिक्त प्रशिक्षित परामर्शदाताओं का भी अभाव है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (1994) ने विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में तैयार किये गए 77प्रतिवेदनों की छानबीन करने के बाद बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य के बारे में कुछ सुझाव दिये हैं (See-R. Hendren, R. Birvel Weisen and J. Orley : Mental Health Programmes in School, Division of Mental Health, WHO, Geneva, WHO/MVH/PSEF93.3, First Revision, 1994) जिसमें विद्यालय को बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानते हुए मानसिक स्वास्थ्य में विकास हेतु चार अवस्थाओं का एक मॉडल प्रस्तुत किया है (देखें चित्र)।

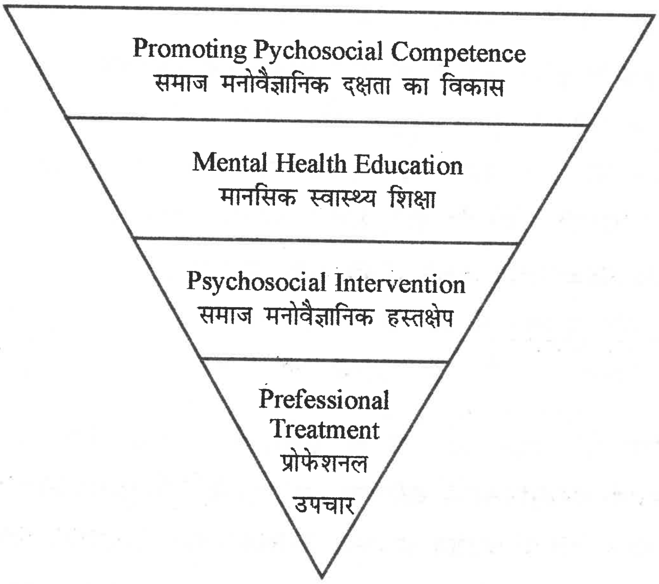

चित्र 12 : 1 : Comprehensive School Mental Health Programme
(व्यापक विद्यालय स्तरीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम)

हस्तक्षेप के स्तर (Level of Intervention)

(i) विद्यालय पाठ्यक्रम में समन्वित

(ii) सामान्य स्वास्थ्य पाठ्यक्रम का अंग

(iii) विद्यालय में विद्यार्थियों को अतिरिक्त सहायता की आवश्यकता

(iv) विद्यार्थी को अतिरिक्त मानसिक स्वास्थ्य हस्तक्षेप की आवश्यकता

उक्त संदर्भ में माता-पिता, परिवार, विद्यालय तथा अध्यापकों के मध्य सहयोग आवश्यक रूप से उपयोगी माना गया है यहाँ अध्यापक की परामर्शदाता के रूप में भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत में परामर्शदाताओं के अभाव को देखते हुए अध्यापकों को परामर्शदाता के रूप में अल्पकालिक प्रशिक्षण किया जा सकता है। ऐसी एक योजना के क्रियान्वयन के लिए मालविका कपूर (1997) ने लगभग दो सप्ताह के प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया। मनोविज्ञान विषय की पृष्ठभूमि वाले अध्यापकों की परामर्शदाता के रूप में भूमिका अत्यंत आवश्यक हो गयी है अन्यथा भारत में निर्देशन तथा परामर्शन कार्यक्रमों का संचाखलन संभव नहीं हो पायेगा।

परामर्श के प्रकार

हैम्प्रे, ट्रैक्सलर व मौर्य ने परामर्श के चार क्षेत्र बताये हैं –

1. शैक्षिक अनुस्थापन तथा निर्देशन
2. वैयक्तिक व सामाजिक समायोजन
3. व्यावसायिक अनुस्थापन एवं निर्देशन
4. स्वास्थ्य समायोजन

परामर्श चार प्रकार के होते हैं :

1. **शैक्षिक परामर्श–** विविध प्रकार की अभिवृत्तियों, क्षमताओं एवं आदतों के साथ विद्यालयी वातावरण में समायोजित होने में सहयोग देना शैक्षिक परामर्श का कार्य है।

2. **व्यावसायिक परामर्श–** इस परामर्श का कार्य व्यक्ति को उचित व्यवसाय चुनने, उसमें समायोजित हाने, विकास करने तथा उसके लिये तैयारी करने हेतु सहयोग देता है।

3. **व्यक्तित्व/मनोवैज्ञानिक परामर्श–** इस परामर्श के अन्तर्गत व्यक्तिगत एवं भावनात्मक समस्याओं के समाधान हेतु दिया जाने वाला सहयोग

NOTES

आता है। विद्यालीय जीवन में आत्मग्लानि, हताश, अकेलापन इत्यादि ऐसी मनोवैज्ञानिक समस्यायें हैं जिनके कारण विद्यालय उपलब्धि पर प्रभाव पड़ता है। इसीलिये इस परामर्श को माध्यमिक तथा उच्च शिक्षण संस्थाओं में चलाये जाने हेतु प्रयास किया जा रहा है।

4. **साइको थेरेपटिक/मनोपचारात्मक परामर्श–** वाई०वी० सीन्डर ने इस परामर्श के विशेषता को उदधृत करते हुये कहा कि यह परामर्श मुखाभिमुख मनोविज्ञान में प्रशिक्षित व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ मौखिक माध्यम से उसे भावात्मक दृष्टिकोण एवं सामाजिक कुसमायोजन एवं प्रार्थी द्वारा अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु किया जाने वाला प्रयास है।"

रूथ स्ट्रैंग के अनुसार मनोविश्लेषण एवं परामर्श दोनों अन्त: सम्बन्धित है। पर अब वो इस बात पर सहमत है कि परामर्श नैदानिक है। यह परामर्श सामाजिक कुसमायोजन के निदान में सहायक है।

- लघु क्रियाशील कुसमायोजन का निदान तथा उपचार।
- परामर्शदाता एवं प्रार्थी के मध्य मुखाभिमुख सम्बन्ध।

इस परामर्श में समस्या का विश्लेषण कर उसके निदान हेतु कोशिश की जाते हैं। यह मनोविज्ञान की मुख्य शाखा है। इसमें उस व्यक्ति का सहयोग किया जाता है जो कि कुसमायोजन एवं आत्मप्रदर्शन की समस्या से ग्रस्त हो।

वैवाहिक परामर्श– वर्तमान में समाज के बदलते ढाँचे, आर्थिक परिस्थिति तथा पाश्चात्यीकरण ने वैवाहिक सम्बन्धों को भी प्रभावित किया है। इस परामर्श में प्रार्थी को विवाह जीवन में हो रही समस्याओं के निराकरण हेतु सहयोग दिया जाता है।

अनुस्थापन परामर्श– इस परामर्श का मुख्य उद्देश्य प्रार्थी को मनचाहा रोजगार चुनने में सहयोग करना है जिससे उसे उसकी क्षमता, इच्छा एवं रूचि के अनुसार व्यवसाय मिले जिससे कि उसमें उसका बेहतर समायोजन हो सके।

इसके अतिरिक्त परामर्श के इन रूपों की चर्चा की जा सकती है–

1. **अनौपचारिक परामर्श–** यह एक आकस्मिक परामर्श है जो बिना किसी पूर्व तैयारी के दिया जाता है।

2. **सामान्य परामर्श–** इस प्रकार का परामर्श किसी ऐसे व्यक्ति से प्राप्त किया जा सकता है जो किसी न किसी पेशे में हो। इसमें भी परामर्शदाता कोई पूर्व तैयारी नहीं करता।

कुछ विद्वानों ने परामर्श के अन्य तीन प्रकारों का वर्णन किया गया है–

1. **निदेशात्मक परामर्श–** इस प्रकार के परामर्श में परामर्शक ही सम्पूर्ण प्रक्रिया का निर्णायक होता है। प्रत्याशी परामर्शदाता के आदेशों के अनुकूल अपने को ढालता है। इसे कभी–कभी आदेशात्मक परामर्श भी कहते हैं। इस क्रिया के मूल में परामर्शक ही रहता है।

2. **अनिदेशात्मक परामर्श–** इस प्रकार के परामर्श में परामर्शप्रार्थी का विशिष्ट महत्व होता है। इसमें वह अपनी समस्या प्रस्तुत करने एवं समस्या के समाधान की प्रक्रिया में बिना किसी शंका या संकोच के परामर्शक से राय माँगता है। इसे सेवार्थी–केन्द्रित परामर्श कहते हैं। इसकी विशद व्याख्या आगे की जाएगी।

3. **समन्वित परामर्श–** इसमें परामर्शक न अति सक्रिय रहता है एवं न अति उदासीन रहता है। उसकी भूमिका अत्यन्त मधुर एवं मुलायम होती है।

निदेशात्मक परामर्श

विलियम्सन (1950) नामक विद्वान इसका जनक माना जाता है। उसके अनुसार निदेशात्मक परामर्श में तार्किकता तथा प्रभाव दोनों को ध्यान में रखा जाता है। उसने परामर्श को एक प्रभावकारी सम्बन्ध माना है तथा बल दिया है कि इस में बहस, विश्लेषण, तर्क–वितर्क आदि सम्मिलित रहता है परन्तु यह परामर्श किसी भी प्रकार औपचारिक नहीं होने पाता। इस प्रकार के परामर्श का सिद्धान्त विलियम्सन ने व्यावसायिक परामर्श से लिया एवं बाद में इसका समन्वयन शैक्षिक तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी निर्देशन से लेकर दिया।

यह परामर्श साक्षात्कार एवं प्रश्नावली पद्धति से दिया जाता है विलि एव एण्ड्र ने अपनी पुस्तक "मॉडर्न मेथड्स एण्ड टेक्निकस इन गाइडेंस" में निदेशात्मक परामर्श की निम्न विशेषताओं का उल्लेख है –

- परामर्शदाता अधिक योग्य, प्रशिक्षित, अनुभवी तथा ज्ञानी होता है वह अच्छा समस्या समाधान दे सकता है।

NOTES

- परामर्श एक बौद्धिक प्रक्रिया है।
- परामर्श प्रार्थी पक्षपात व सूचनाओं के अभाव में समस्या निदान नहीं कर सकता।
- परामर्श का उद्देश्य समस्या समाधान अवस्था माध्यम से निर्धारित किये जाते हैं।

निदेशात्मक परामर्श की मूलभूत मान्यताएँ–

1. इस परामर्श का उद्देश्य सेवार्थी के व्यक्तित्व का अधिकतम विकास है।
2. प्रत्येक व्यक्ति की कुछ विशिष्टताएँ होती हैं। जिनका विकास समाज में रहकर ही हो सकता है।
3. परामर्श स्वैच्छिक होता है।
4. परामर्श की प्रकृति उपचारात्मक होती है। यह तभी उपलब्ध कराया जाता है, जब समस्या उत्पन्न होती है।
5. परामर्श में मूल्यांकन की व्यवस्था नहीं होती।
6. परामर्शदाता की दृष्टि प्रार्थी की समस्याओं एवं वैयक्तिक विकास पर केन्द्रीत रहता है।
7. परामर्श प्रार्थी को सम्मान दिया जाता है।

निदेशात्मक परामर्श प्रक्रिया में निहित सोपान–

1. **विश्लेषणात्मक–** इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम व्यक्ति के मूल्यांकन हेतु परामर्शदाता व्यक्ति से सम्बन्धित सूचनाएँ तथा आँकड़े एकत्र करता है। इसके अतिरिक्त वह संकलित अभिलेख, साक्षात्कार एवं अन्य लोगों की मदद भी लेता है। प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु चिकित्सीय मनोमित्तीय तथा पार्श्वचित्र का प्रयोग किया जाता है।
2. **संश्लेषण–** विलियम्स के अनुसार प्रार्थी से सम्बन्धित आँकड़ों और सूचनाओं को समझते हुए उसको सारांश रूप में प्रस्तुत करने की क्रिया पर बल दिया जाता है। इसके लिए प्रत्याशी से साक्षात्कार, वार्ता और संगोष्ठी करके तथ्यों को इकट्ठा किया जाता है।

4. **निदान–** परामर्शप्रार्थी की समस्याओं की पहचान इस स्तर पर की जाती है। समस्या के कारणों तक पहुँचने की भी कोशिश की जाती है।

5. **पूर्वानुमान–** इस सोपान में प्रत्याशी की समस्याओं के सम्बन्ध में पूर्व कथन किये जाते हैं। इसका स्वरूप मूलतः परिकल्पनात्मक होता है।

6. **परामर्श–** निदेशात्मक परामर्श में प्रयुक्त प्रायः यह अन्तिम सोपान है जिसमें प्रत्याशी से जानकारी प्राप्त करके समस्या का निराकरण किया जाता है।

7. **अनुगमन–** इस स्तर पर प्रत्याशी को दिये गये परामर्श का पुनर्व्यवस्थापन किया जाता है। विलियम्सन ने अनुगमन हेतु कई सोपानों की चर्चा की है, जैसे प्रत्याशी से सम्पर्क करना, प्रत्याशी में आत्म-विश्वास उत्पन्न करना, प्रत्याशी को निर्देशित करना कि वह अपना मार्ग स्वयं निर्धारित कर ले, उसकी समस्याओं की विस्तृत व्याख्या करना आदि। यदि आवश्यकता हो तो प्रत्याशी को अन्य सक्षम कार्यकर्त्ताओं के पास भी भेजा जा सकता है।

- विलियम्सन एवं डार्ले ने अपनी पुस्तक "स्टूडेन्ट्स परसनेल वर्क" में निम्न सोपानों का स्पष्ट उल्लेख किया है :
- विभिन्न विधियों एवं उपकरणों के माध्यम से आँकड़े, संग्रहित कर उनका विश्लेषण करना।
- आँकड़ों का यान्त्रिक तथा आकृतिक संगठन कर उनका संश्लेषण करना।
- छात्र की समस्या के कारणों को ज्ञात कर निदान ज्ञात करना।
- परामर्श अथवा उपचार।
- मूल्यांकन अथवा अनुगमन।

निदेशात्मक परामर्श के लाभ–

1. इस प्रकार के परामर्श से समय की बचत होती है।
2. इस में समस्याओं पर विशेष बल दिया जाता है।

NOTES

3. परामर्शदाता एवं प्रार्थी में आमने-सामने बात होती है।
4. परामर्शदाता का ध्यान प्रत्याशी की भावनाओं की अपेक्षा उसकी बुद्धि पर टिकता है।
5. परामर्शदाता सहज रूप में उपलब्ध रहता है।

निदेशात्मक परामर्श की कमियाँ–

1. प्रत्याशी पूर्णतया परामर्शक पर आश्रित रहता है।
2. प्रत्याशी के स्वतन्त्र न होने के कारण उस पर परामर्श का प्रभाव कम पड़ता है।
3. प्रत्याशी के दृष्टिकोण का विकास न होने के कारण वह अपनी समस्या का निराकरण स्वयं नहीं कर पाता।
4. परामर्शदाता के प्रधान होने से प्रार्थी में अपनी क्षमताओं को उत्पन्न करना कठिन हो जाता है।
5. प्रत्याशी के विषय में अपेक्षित सूचनाओं के कमी में उत्तम परामर्श नहीं मिल पाता।
6. परामर्शदाता के अधिक महत्व से मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं हो पाती।

अनिदेशात्मक परामर्श

निदेशात्मक परामर्श के प्रतिकूल यह प्रत्याशी केन्द्रित परामर्श है। इसमें प्रार्थी के आत्मज्ञान, आत्मसिद्धि एवं आत्मनिर्भरता पर विशेष दृष्टि रखी जाती है। इसे समस्या-केन्द्रित परामर्श भी कहा जाता है। इस प्रकार के परामर्श के प्रमुख प्रवर्तक कार्ल रोजर्स माने जाते हैं। यह परामर्श अपेक्षाकृत नवीन है तथा इसके अन्तर्गत व्यक्तित्व विकास, समूह-नेतृत्व, शिक्षा एवं अधिगम, सृजनात्मक आदि सम्मिलित है। परामर्श ऐसे वातावरण का सृजन करत है जिसमें सेवार्थी स्वतन्त्र रूप से इच्छानुसार अपना निर्माण कर सके।

यह परामर्श प्रार्थी के इधर-उधर घूमती है। इसमें प्रार्थी को आत्मप्रदर्शन, भावनाओं, विचारों एवं अभिवृत्तियों को रखने के लिये स्वतन्त्रता दी जाती है। परामर्शदाता निरपेक्ष रहता है। वह बीच में बाधक नहीं बनता एवं स्वयं दोनों के मध्य बेहतर समन्वयन का प्रयास करता है। इसमें खुले प्रश्न पूछे जाते हैं और ये प्रश्न हल्की संरचना के होते हैं। उत्तर परामर्श प्रार्थी स्वयं देता है।

परामर्शदाता प्राप्त जानकारी का विश्लेषण कर अर्थ निकालता है। प्रार्थी को बोलते समय सही विधा के लिये प्रोत्साहित किया जाता है एवं प्रार्थी को आभास होता है कि परामर्शदाता उसके विचारों को सम्मान दे रहा है। परामर्शदाता सत्य को जानने हेतु प्रश्न नहीं पूछता। इस प्रक्रिया में सभी को प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिक की तरह ही अधिकार होता है एवं प्रार्थी स्वयं विद्वान तथा समझदार की तरह ही प्रतिक्रिया करता है।

अनिदेशात्मक परामर्श की मान्यताएँ

1. **व्यक्ति के अस्तित्व में आस्था–** रोजर्स व्यक्ति के अस्तित्व को मानना एवं उसका यह विश्वास है कि व्यक्ति अपने विषय में निर्णय लेने में सक्षम है।

2. **आत्मसिद्धि की प्रवृत्ति–** प्रत्याशी में आत्मसिद्धि, आत्मविकास एवं आत्मनिर्भरता की प्रवृत्ति होती है। रोजर्स यह मानते हैं कि व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमता होती है।

3. **मानवता में विश्वास–** मनुष्य मूलतः सद्भावी एवं विश्वसनीय होता है। कभी-कभी व्यक्ति के जीवन मे ऐसी उत्तेजना उभरती है जो उसे सन्मार्ग से दूर हटाने का प्रयत्न करती है। ऐसी स्थिति में परामर्श के माध्यम से उनका शमन किया जाता है एवं व्यक्ति को सन्मार्गोन्मुख किया जाता है।

4. **मानव की बुद्धिमत्ता में विश्वास–** इस निमित्त रोजर्स व्यक्ति की बुद्धिमता में अधिक विश्वास रखता है। उसकी मान्यता है कि विषम परिस्थितियों में वह अपनी चैतन्यता का प्रयोग करता है एवं संगठन से ऊपर उठ कर अपनी कार्यसिद्धि करता है।

उपर्युक्त के अलावा विलियम स्नाइडर ने चार अन्य मान्यताओं को स्वीकृति दी है–

(अ) व्यक्ति अपने जीवन का लक्ष्य स्वयं निर्धारित कर सकता है।

(ब) अपने द्वारा निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति में उसे संतोष होता है।

(स) अनिदेशात्मक परामर्श में प्रत्याशी अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए स्वतन्त्र रहता है। अतः परामर्श के पश्चात् वह स्वयं निर्णय लेने में सक्षम हो जाता है।

(द) व्यक्ति के समायोजन में उसका सांवेगिक द्वन्द्व अवरोधक होता है।

(य) अपने द्वारा निर्धारितें लक्ष्य की प्राप्ति में उसे संतोष होता है।

अनिदेशात्मक परामर्श के प्रमुख सिद्धान्त

1. **प्रार्थी का समादर** – अनिदेशात्मक परामर्श में सेवार्थी की सत्यनिष्ठा एवं उसकी व्यक्तिगत स्वायतत्ता को समाहित किया जाता है। परामर्शक परामर्श देता है लेकिन निर्णय प्रत्याशी पर छोड़ देता है।

2. **समग्र व्यक्तित्व पर ध्यान** – प्रार्थी के व्यक्तित्व के सम्यक् विकास पर परामर्शक का ध्यान रहता है। अनिदेशात्मक परामर्श का यह दूसरा प्रमुख सिद्धान्त है। इसके अन्तर्गत प्रत्याशी की क्षमता का इस प्रकार विकास किया जाता है कि वह अपनी समस्या का समाधान स्वयं कर सके।

3. **सहिष्णुता का सिद्धान्त** – विचार-स्वातंत्र्य की स्थिति में परामर्शक को अपनी सहिष्णुता तथा स्वीकृति का परिचय देना पड़ता है। परामर्शदाता प्रत्याशी में यह भावना उत्पन्न करना चाहता है कि प्रत्याशी की बातें ध्यान से सुनी जा रही हैं एवं परामर्शक उसके विचारों से सहमत हैं।

4. **परामर्श प्रार्थी में अपनी क्षमताओं को जानने और समझने की शक्ति उत्पन्न करना–** परामर्शप्रार्थी के सम्मुख परामर्शदाता ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करता है कि वह अपने में निहित क्षमताओं को पहचान सके एवं परिस्थितियों से समायोजन करना सीख सके। परामर्श के माध्यम से ही ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की जाती है।

परामर्श प्रक्रिया में निहित सोपान–

1. **वार्तालाप–** परामर्शक एवं प्रार्थी के मध्य कुछ औपचारिक तथा कुछ अनौपचारिक बैठकें होती हैं। बैठकों का उद्देश्य परामर्शक तथा प्रार्थी के मध्य सौहार्दपूर्ण वातावरण का निर्माण करना है ताकि परामर्श प्रार्थी अपनी बात स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत कर सके। इसे मैत्री-उपचार भी कहते हैं।

2. **जाँच पड़ताल–** इस सोपान के अन्तर्गत परामर्शक अनेक विधियों का प्रयोग करता है। इनमें से कुछ प्रत्यक्ष विधियाँ होती हैं एवं कुछ परोक्ष विधियाँ होती हैं एवं कुछ परोक्ष विधियाँ होती हैं। इसका मुख्य लक्ष्य सेवार्थी के सम्बन्ध में हर प्रकार की जानकारी प्राप्त करना है।

3. **संवेग-विमोचन**– परामर्श प्रार्थी एक समस्यायुक्त व्यक्ति है जिसके अपने संवेग तथा तनाव होते हैं। वह अपनी समस्या को परामर्शक के सम्मुख तभी रख पाता है जब उसके मनोभावों को पूर्णतया विमोचित कर दिया जाये। इसलिए तृतीय सोपान में परामर्शक का यह कोशिश होती है कि प्रत्याशी सभी पूर्वाग्रहों तथा तनावों से मुक्त होकर अपनी समस्या प्रस्तुत करें।

4. **सुझावों पर चर्चा**– इसमें प्रत्याशी की भूमिका प्रमुख होती है। परामर्शक द्वारा दिये गये सुझावों पर वह आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाता है एवं उस पर टीका-टिप्पणी करता है।

5. **योजना का निर्माण**– समस्याओं के प्रस्तुतीकरण के लिए किसी योजना-निर्माण का अवसर प्रत्याशी को दिया जाता है। इस योजना निर्माण में परामर्शदाता तथा प्रार्थी दोनों का सहयोग होता है।

6. **योजना क्रियान्वयन एवं प्रार्थी**– बनाई गयी योजना का क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन इस सोपान के अन्तर्गत होता है।

निदेशात्मक एवं अनिदेशात्मक परामर्श में अन्तर

परामर्शप्रार्थी का हित दोनों का लक्ष्य लेकिन इस लक्ष्य की प्राप्ति के साधन भिन्न हैं। अन्तर साधन का है, प्रविधि का है, लक्ष्य का नहीं। फिर भी अन्तर के निम्नलिखित बिन्दु दृष्ट हैं–

1. निदेशात्मक परामर्श यह मानकर चलता है कि प्रत्याशी अपनी समस्या से इतना दबा रहता है कि वह अपनी क्षमता को न तो पहचान पाता है एवं न अपने पूर्वाग्रह से मुक्त हो पाता है। इसके विपरीत अनिदेशात्मक परामर्श यह मानता है कि सेवार्थी क्षमतायुक्त है तथा स्वतन्त्र वातावरण पाने पर वह अपनी समस्या का समाधान स्वयं कर सकता है।

2. व्यक्ति का चिन्तन बुद्धि एवं संवेग का सम्मिश्रण है। वह कभी एक का प्रयोग करता है कभी दूसरे का। निदेशात्मक परामर्श प्रत्याशी की बुद्धि पर अधिक बल देता है एवं उसी के अनुरूप परामर्श प्रदान करता है। अनिदेशात्मक परामर्श व्यक्ति के संवेग पर बल देता है तथा प्रयास करता है कि व्यक्ति अपने तनावग्रस्त मनोभावों से मुक्त होकर परामर्शित हो।

NOTES

3. निदेशात्मक परामर्श समस्या-केन्द्रित है एवं अनिदेशात्मक परामर्श व्यक्ति-केन्द्रित है। एक में समस्या को दृष्टिगत करके तथा दूसरे में प्रत्याशी को दृष्टि में रखकर परामर्श दिया जाता है।
4. निदेशात्मक परामर्श विश्लेषणात्मक है और अनिदेशात्मक परामर्श संश्लेषणात्मक है।
5. निदेशात्मक परामर्श समयबद्ध है जबकि अनिदेशात्मक परामर्श है। दूसरे प्रकार के परामर्श में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है।
6. निदेशात्मक परामर्श में प्रत्याशी के पिछले जीवन का कोई सहारा नहीं लिया जाता जबकि अनिदेशात्मक में उसके अतीत के विषय में जानना आवश्यक होता है।

अनिदेशात्मक परामर्श से लाभ

अनिदेशात्मक परामर्श से प्रमुख लाभ निम्न हैं–

1. अनिदेशात्मक परामर्श निश्चय रूप में स्वीकार करता है कि प्रत्याशी में विकास की क्षमता निहित है।
2. प्रत्याशी उन्मुख होने के कारण किसी अन्य प्रकार के परीक्षण की आवश्यकता नहीं होती।
3. इसमें व्यक्ति को तनाव रहित बनाने का प्रयत्न किया जाता है और अवचेतन मन की गुत्थियों को उभर कर चेतनमन में लाया जाता है।
4. इस प्रकार के परामर्श में जो प्रभाव मानव मस्तिष्क पर छोड़ जाते हैं, वे स्थायी होते हैं।

सीमाएँ

1. यह परामर्श मनोविश्लेषणात्मक तह तक नहीं पहुँच पाता।
2. इसमें समस्याओं की अभिव्यक्ति का अवसर दिया जाता है लेकिन समस्याओं की उत्पत्ति के कारणों का निदान नहीं होता।
3. कभी-कभी प्रत्याशी न तो अपनी समस्या को ठीक से समझ पाता है एवं न ठीक से प्रस्तुत ही कर पाता है।

4. कभी-कभी परामर्शक की उदासीनता के कारण प्रत्याशी अपनी समस्या को स्पष्ट करने में असफल रहता है।
5. कई बार अधिक लचीलेपन से उचित परिस्थितियाँ नहीं बन पाती।
6. परामर्शदाता प्रार्थी के संसाधन, निर्णय तथा विद्वता पर विश्वास नहीं कर सकता।
7. सभी समस्या मौखिक रूप से समाधान नहीं हो पाती।
8. परामर्शदाता के निरपेक्ष होने से प्रार्थी सही सूचना नहीं देता।

समन्वित परामर्श

वह एक मध्यम वर्गीय प्रविधि है। इसके प्रमुख प्रवर्तकों में एफ०सी० टोम का नाम उल्लेखनीय है। समन्वित परामर्श में निदेशात्मक से अनिदेशात्मक की ओर बढ़ते हैं। यह प्रविधि पूर्णतया व्यक्ति, परिस्थिति तथा समस्या पर आधारित होती है। इसके अन्तर्गत जिन तकनीकों का प्रयोग किया जाता है उनमें प्रत्याशी में विश्वास जगाना, उसे सूचनाएँ प्रदान करना, परीक्षण करना आदि है।

इस प्रविधि में परामर्शदाता व प्रार्थी दोनों सक्रिय तथा सहयोगी होते हैं तथा निदेशात्मक व अनिदेशात्मक दोनों ही प्रविधियों के प्रयोग के कारण दोनों बारी-बारी से वार्ता में प्रतिभाग करते हैं और समस्या का समाधान मिलकर निकालते हैं।

समन्वित परामर्श की प्रक्रिया

1. **प्रत्याशी के व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं तथा उसकी आवश्यकताओं का अध्ययन–** इसके अन्तर्गत परामर्शप्रार्थी की आवश्यकताओं, उसकी समस्याओं एवं उसके व्यक्तिगत विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है। परामर्श की प्रक्रिया में आगे बढ़ने के पहले परामर्शक प्रत्याशी के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त कर लेता है।
2. **उचित तकनीक का चयन–** परामर्शप्रार्थी की आवश्यकताओं, समस्याओं एवं अपेक्षाओं से पूर्णतया अवगत हो जाने के उपरान्त परामर्शक उचित प्रविधि अथवा तकनीक का चयन करता है।

NOTES

3. **तकनीकों का प्रयोग–** तकनीक का चयन परामर्शक किसी विशिष्ट परिस्थिति में ही करता है। परिस्थिति का चयन समस्या की प्रकृति तथा प्रत्याशी का स्वभाव देखकर किया जाता है।
4. **प्रयुक्त तकनीकों के प्रभावों का मूल्यांकन–** अनेक विधियों का प्रयोग करके यह देखा जाता है कि प्रत्याशी को परामर्शित करने में जो तकनीक प्रयोग में लाये गये उनका प्रत्याशी पर क्या प्रभाव पड़ा।
5. **परामर्श की तैयारी–** इस स्तर पर परामर्श एवं निर्देशन हेतु उचित तैयारी की जाती है।
6. **प्रत्याशी के विचारों से अवगत होना–** सम्पूर्ण प्रक्रिया के विषय में प्रत्याशी के विचार जानने के प्रयत्न किये जाते हैं।

समन्वित परामर्श की विशेषताएँ

एफ०सी० टोम के अनुसार समन्वित परामर्श की विशेषताएँ निम्न हैं–

1. इस प्रकार के परामर्श में समन्वयक विधि का प्रयोग किया जाता है।
2. मुख्य भूमिका परामर्शप्रार्थी की होती है एवं परामर्शक प्राय: उदासीन रहता है।
3. कार्य क्षमता पर अधिक बल दिया जाता है। सम्पूर्ण प्रक्रिया परामर्शक, परामर्शप्रार्थी की समस्या–समाधान की क्षमता के इधर–उधर घूमती है।
4. यह प्रक्रिया कम खर्चीली है। प्राय: सभी प्रविधियों का प्रयोग कर लिया जाता है।
5. प्रत्याशी, उसकी समस्या एवं उसकी स्थिति को देखते हुए परामर्शक के सम्मुख निदेशात्मक तथा अनिदेशात्मक के विकल्प खुले रहते हैं।
6. प्रत्याशी को समस्या का समाधान निकालने का पूर्ण अवसर प्रदान किया जाता है।

समन्वित परामर्श की सीमायें

1. अधिकांशत: लोग इस प्रक्रिया को ठीक से समझ नहीं पाते तथा इसे अवसर प्रधान कहते हैं।

2. दोनों अनिदेशात्मक व निदेशात्मक प्रविधि को जोड़ा नहीं जा सकता।
3. प्रार्थी को स्वतन्त्रता देने के आधार एवं उसकी सीमा पर कोई स्पष्ट संकेत नहीं है।
4. दोनों प्रविधियों के मिलाने से उचित मार्ग चयन एवं परिणाम प्राप्ति में भी दुविधा होती है।

राज्य एवं केन्द्रीय स्तर पर निर्देशन सेवाएँ प्रदान करने वाले संगठनों की आवश्यकता एवं उनके उद्देश्य

निर्देशन तथा परामर्श केन्द्रों की व्यक्ति के जीवन के काफी आवश्यकता एवं महत्व है तथा इन निर्देशन केन्द्रों के अपने कुछ प्रमुख उद्देश्य हैं।

निर्देशन एवं परामर्श केन्द्रों की आवश्यकता तथा महत्व

1. उद्योग सम्बन्धी कार्य प्रणाली के लिए प्रशिक्षण देकर ज्ञान एवं कौशल का विकास किया जाता है। जिससे तकनीकी विशेषज्ञों में गुणवत्ता लायी जाती है। मानवीय शक्ति का उत्पादन में समुचित उपयोग किया जाता है।
2. किशोरावस्था के आयुवर्ग के बालकों की विभिन्न प्रकार की समस्याएं होती हैं। उनकी समस्याओं के समाधान में उन केन्द्रों का विशेष महत्व है। यदि समुचित ढंग से इन्हें निर्देशन दिया जाए तो इनमें सृजनात्मकता एवं सामाजिकता जैसे गुणों को समुचित विकास हो सकता है।
3. विद्यालयों में छात्र विविध प्रकार की समस्याएँ लेकर आते हैं और विद्यालय सम्पत्ति तथा साज-सज्जा को नुकसान पहुँचाते हैं। इन निर्देशन केन्द्रों की सहायता से उनकी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है तथा उनमें अपेक्षित गुणों का विकास किया जा सकता है।
4. इन केन्द्रों की सेवाओं से छात्रों को विकास हेतु वास्तविक मदद की जाती है।
5. निर्देशन एवं परामर्श केन्द्रों द्वारा छात्रों के विकास एवं समस्याओं के समाधान में सहयोग तथा सहायता प्रदान किया जाना आवश्यक है क्योंकि इन केन्द्रों को विद्यालयी जीवन से अलग नहीं किया जा सकता है।

निर्देशन केन्द्रों के उद्देश्य – निर्देशन तथा परामर्श केन्द्रों की स्थापना के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

NOTES

1. शैक्षिक निर्देशन देना।
2. व्यावसायिक निर्देशन।
3. व्यक्तिगत और सामाजिक निर्देशन तथा परामर्श देना।

1. शैक्षिक निर्देशन देना – शैक्षिक निर्देशन उद्देश्य को 5 विशिष्ट रूपों में दिया गया है।

1. विशिष्ट बालकों, प्रतिभाशाली बालकों तथा सर्जनात्मक बालकों की पहचान करना एवं उनकी आवश्यकता के अनुरूप विकास करना।
2. अधिगम असमर्थी बालकों की समस्याओं का निराकरण करना और उपचारात्मक अनुदेशन देना तथा साधनों की व्यवस्था करना।
3. विद्यालय में अध्ययनरत छात्रों की शैक्षिक प्रगति की देख-रेख करना।
4. छात्रों की अधिगम कठिनाइयों तथा उनकी क्षमताओं के प्रति सूक्ष्मता का विकास करना।
5. छात्र को आगमी शिक्षा और प्रशिक्षण के सम्बन्ध में सूचना देना और सहायता प्रदान करना।

2. व्यावसायिक निर्देश देना – इस उद्देश्य के तीन विशिष्ट रूप दिये गये हैं–

1. रोजगार सम्बन्धी अवसरों तथा सूचनाओं को एकत्रित करना।
2. रोजगार सूचनाओं का विश्लेषण करना एवं विकास करना। समुचित रोजगार, व्यवसाय का चयन करने में सहायता करना।
3. स्वयं रोजगार प्राप्त करने हेतु छात्र को सूचनाओं में सहायता प्रदान करना।

3. व्यक्तिगत और सामाजिक निर्देशन तथा परामर्श प्रदान करना।

इसके विशिष्ट पाँच रूप दिए हैं–

1. छात्र की समायोजन सम्बन्धी समस्याओं को पहचानना एवं उसके समाध ान में सहायता प्रदान करना।
2. छात्रों में अच्छे मूल्यों, अभिवृतियों, आदतों, कार्य करने की आदतों का समुचित विकास करना।

NOTES

3. छात्रों में पारस्परिक अच्छे सम्बन्धों का विकास करना।
4. छात्रों में अवकाश अथवा खाली समय का सदुपयोग करने की प्रवृति का विकास करना।
5. छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने में सहायता प्रदान करना।

निर्देशन तथा परामर्श केन्द्रों के कार्य – निर्देशन और परामर्श केन्द्रों के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं –

1. भौतिक सुविधाओं का विकास करना।
2. निर्देशन व परामर्श की क्रियाओं की व्यवस्था करना।
3. निर्देशन तथा परामर्श केन्द्र का अन्य संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित करना।
4. निर्देशन एवं परामर्श केन्द्र के कार्यक्रमों के संचालन और प्रभाव का आकलन करना।

केन्द्रीय योजना/संगठन

केन्द्र सरकार द्वारा प्रशासित निर्देशन संस्थाएं/केन्द्र

1. राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली
2. केन्द्रीय प्रशासित विद्यालय
3. केन्द्रीय विद्यालय व सैनिक विद्यालय
4. नवोदय विद्यालय

राष्ट्रीय/केन्द्रीय स्तर पर निर्देशन सेवा केन्द्र तथा उनके कार्य

राष्ट्रीय तथा केन्द्रीय स्तर पर जो निर्देशन सेवा केन्द्र हैं वे निम्नलिखित हैं–

केन्द्रीय शैक्षिक एवं निर्देशन ब्यूरो – माध्यमिक शिक्षा आयोग जिसे मुदालियर आयोग भी कहते हैं। इस आयोग ने शैक्षिक तथा व्यवसायिक निर्देशन के विस्तार के लिए कुछ संस्तुतियाँ दीं जो निम्नलिखित हैं–

1. शिक्षा के अन्तर्गत शैक्षिक निर्देशन पर अधिक बल देना चाहिए।
2. सभी शिक्षा संस्थानों में कैरियर मास्टरों एवं अन्य निर्देशन अधिकारियों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

NOTES

3. सभी राज्यों में निर्देशन सम्बन्धी प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण केन्द्र खोलने का उत्तरदायित्व केन्द्र सरकार वहन करे।
4. छात्रों को विभिन्न उद्योगों के कार्य क्षेत्रों एवं महत्व आदि का ज्ञान कराने के लिए उद्योगों पर बनी लघु फिल्में दिखाकर उन्हें वास्तविक स्थितियों/परिस्थितियों से अवगत कराया जाना चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा आयोग की उपर्युक्त सिफारिशों के आधार पर केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय ने 1954 में केन्द्रीय शिक्षा और व्यावसायिक ब्यूरो की स्थापना की।

राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद तथा निर्देशन सेवायें

राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद की स्थापना 1 सितम्बर 1961 में स्वायत्तता व्यवस्था के रूप में नई दिल्ली में की गई थी। मानव संसाधन भारत मंत्रालय की शैक्षिक परामर्श संस्था के रूप में बनाई गई। यह भारत शिक्षा विभाग के विद्यालयों के लिए शिक्षा नीति एवं कार्यक्रमों का प्रारूप बनाती/तैयारी करती है। मंत्रालय इस परिषद के विशेषज्ञों से परामर्श भी करता है।

इस परिषद के अन्तर्गत शिक्षा मनोविज्ञान, निर्देशन और परामर्शन, अध्यापक शिक्षा विभाग, शिक्षा तकनीकी केन्द्र आदि विभाग भी खोल गये। जिससे प्राथमिक शिक्षा माध्यमिक शिक्षा, उच्च माध्यमिक शिक्षा में गुणवत्ता लाने का प्रयत्न किया जाता है।

अखिल भारतीय शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन संघ

इस संघ की राष्ट्रीय स्तर पर स्थापना की गई है। इसका मुख्य कार्य-राष्ट्रीय स्तर पर निर्देशन कार्यक्रमों एवं विचारधाराओं का प्रसार करना तथा विभिन्न निर्देशन कार्यक्रमों को समन्वित करना है। यह संघ निर्देशन साहित्य का प्रकाशन एवं वितरण भी करता है। यह संघ निर्देशन सम्बन्धी एक पत्रिका प्रकाशन भी करता है जिसका नाम Journal of Vocational and Educational Guidance है।

पुनर्वास एवं नियोजन निदेशालय

यह निदेशालय केन्द्रीय श्रम, पुर्नवास एवं नियोजन मंत्रालय के अधीन है। शुरूआत में (भारत के विभाजन से पहले) इस निदेशालय का कार्य

पश्चिमी-पूर्वी (जो अब बंगला देश में है) पाकिस्तान से आये लोगों (शरणार्थियों) को पुनर्वासित करता था। वर्तमान समय में इस निदेशालय के अधीन देश के सभी रोजगार कार्यालयों से निर्देशन के बारे में विभिन्न प्रकार के साहित्य को प्रकाशित करता है। यह विभाग निर्देशन से सम्बन्धित अनुसंध ान कार्य का संचालन भी करता है। इस विभाग के अतिरिक्त केन्द्र सरकार का प्रकाशन विभाग एवं अन्य मंत्रालय भी निर्देशन के क्षेत्र में कार्य करते हैं।

राज्य स्तर पर निर्देशन सेवाएँ

प्राय: प्रत्येक राज्य में एक राज्य शैक्षिक एवं व्यावसायिक ब्यूरों की स्थापना की गयी। राज्यों में इसकी स्थापना मुदालियर शिक्षा आयोग की सिफारिशों का परिणाम है। राजस्थान राज्य में इसकी स्थापना 1958 में हुई थी। इसका कार्यालय बीकानेर में रखा गया। यह ब्यूरो राज्य में निर्देशन से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन करता है। निर्देशन कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देता है। पत्रिका राजस्थान गाइडेन्स न्यूज लेटर प्रकाशित करता है। विद्यालयों में निर्देशन सेवाओं का प्रबन्ध करता है। निर्देशन के क्षेत्र में अनुसंधान कार्यों को प्रोत्साहन देता है।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में निर्देशन को केन्द्र द्वारा प्रयोजित योजना के रूप में स्वीकार किया गया एवं राज्यों में निर्देशन सेवाओं के विकास के लिए 12 ब्यूरो स्थापित किए। इनके प्रयासों से निर्देशक तथा कैरियर मास्टरों द्वारा विद्यालयों में छात्रों को निर्देशन सहायता प्रदान की जाने लगी। तीसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तिम चरण तक पूरे भारत में लगभग 3000 माध्यमिक विद्यालयों में निर्देशन सेवा उपलब्ध कराई जाने लगी। इन विद्यालयों में कैरियर मास्टर ही सूचनाएं उपलब्ध कराते हैं।

राज्य में ब्यूरो के अतिरिक्त निर्देशन सेवाओं की देखभाल करने में निम्नलिखित संस्थाएं भी अपना सहयोग प्रदान करती हैं-

1. नियोजन कार्यालय
2. विश्वविद्यालय
3. शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय
4. कुछ राज्य में मनोविज्ञान ब्यूरो भी इस कार्य के लिए स्थापित कर रखे हैं।

NOTES

राष्ट्रीय रोजगार सेवायें/ब्यूरो

रोजगार सेवाओं के केन्द्र सरकार ने दूसरा निदेशालय श्रम मंत्रालय के अन्तर्गत स्थापित किया है। जिसे-रोजगार तथा प्रशिक्षण का सामान्य निदेशालय भी कहते हैं। इस प्रकार की सेवाओं का औपचारिक आरम्भ सन् 1957 से किया गया। इसका नियोजन करके विस्तार किया गया। आज देश में राष्ट्रीय रोजगार सेवाओं की 561 इकाइयाँ कार्य कर रही हैं। इसके अन्तर्गत विविध प्रकार के रोजगार सेवा कार्यालय स्थापित किए गए हैं। इस प्रकार की व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य युवकों को व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करना है।

रोजगार एवं प्रशिक्षण निदेशालय

यह केन्द्र निर्देशन के लिए प्रवणता परीक्षणों को निर्माण करने एवं रोजगार कार्यालयों में परामर्श के लिए इनका उपयोग किया जाता है। रोजगार प्राप्त करने वाले व्यक्ति को यह परीक्षण भी देकर उन्हें निर्देशन एवं परामर्श दिया जाता है। सामान्य प्रवणता परीक्षण देकर उन्हें निर्देशन तथा परामर्शन दिया जाता है।

राज्य स्तरों पर निर्देशन ब्यूरो

अधिकांश राज्य स्तर के शिक्षा विभाग में विभिन्न नामों से निर्देशन ब्यूरो की स्थापना की गई है। यह शिक्षा निदेशालय का ही अंग है। राज्य शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद की स्थापना भी की गयी है। राज्यीय शिक्षा संस्था केरल में प्रशिक्षण महाविद्यालय तथा निर्देश संस्था अलग-अलग विभाग हैं। जो शिक्षा निदेशालय के अधीन कार्य करते हैं। अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय शिक्षा निदेशालय के अधीन होते हैं। राज्यीय निर्देशन ब्यूरो का उत्तरदायित्व व्यावसायिक निर्देशन का नियोजन एवं शिक्षा का सहयोग करना है।

रोजगार और प्रशिक्षण निदेशालय

सम्पूर्ण राज्यों में रोजगार कार्यालय फैले हुए हैं, जिनके अन्तर्गत नवयुवकों को रोजगार दिलाने एवं नियोक्ताओं को योग्य व्यक्तियों को रोजगार देने में सहायता की जाती है।

विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालय के शिक्षा तथा मनोविज्ञान विभाग

राज्य स्तर पर राज्य के विश्वविद्यालयों में रोजगार ब्यूरो की जानकारी दी जाती है। छात्रों को पंजीकरण भी कराना होता है। विश्वविद्यालय के शिक्षा तथा

मनोविज्ञान के विभागों में स्नातक एवं परास्नातक स्तर पर बी.एड. एवं एम. एड. स्तर पर निर्देशन व परामर्श के पाठ्यक्रमों का शिक्षण किया जाता है तथा प्रशिक्षण दिया जाता है।

भारत में विश्वविद्यालय स्तर पर रोजगार सूचनाओं तथा निर्देशन ब्यूरो की स्थापना भी की गई है जो छात्रों को रोजगार सम्बन्धी सूचनाएं प्रदान करती हैं।

रोजगार कार्यालय

रोजगार एवं प्रशिक्षण व्यवस्था समिति की स्थापना 1952 में की गई। विद्यालयों से आने वाले छात्रों को रोजगार अवसरों की जानकारी प्रदान करना इन कार्यालयों का मुख्य लक्ष्य हैं-

इस कार्यालय के मुख्य उद्देश्य एवं कार्य निम्नलिखित हैं-

1. रोजगार कार्यालय का उद्देश्य नवयुवकों को उनकी योग्यताओं के अनुरूप रोजगार हेतु निर्देशन देना।
2. व्यावसायिक निर्देशन की योजना एवं परामर्शन करना।
3. व्यक्तिगत तथा सामूहिक निर्देशन कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जाता है।
4. सामूहिक निर्देशन कार्यक्रम चलाना।

राजकीय ब्यूरो विद्यालय स्तर पर

केन्द्रीय तथा राज्यीय निर्देशन एवं परामर्शन ब्यूरो एवं कार्यालयों के कार्य क्षेत्र की इकाई विद्यालय तथा उसकी कक्षा होती है, जहां बालक के व्यवहार का शिक्षक अवलोकन करता है। राज्य के ब्यूरो की सेवाओं को क्रियान्वयन करने का उत्तरदायित्व प्रधानाचार्य का होता है। विद्यालय में निर्देशन एवं परामर्शन का कार्य प्रशिक्षित परामर्शदाता का होता है। कैरियर मास्टर भी रहता है। प्रत्येक राज्य में विद्यालयों के निर्देशन व्यवस्था का स्वरूप अलग-अलग होता है। राज्य अपने ढंग से प्रारूप विकसित करते हैं।

गैरसरकारी संगठनों की निर्देशन सेवाएँ प्रदान करने में भूमिका

भारत ही नहीं बल्कि विश्वस्तर पर आज अनेक स्वयसेवी संस्थाएं हैं जो निर्देशन तथा परामर्श सेवाओं के केन्द्र स्थापित किए हैं। इन केन्द्रों के माध्यम

से नवयुवकों के लिए निर्देशन सेवाओं की ये व्यवस्था करते हैं। कुछ प्रमुख गैर सरकारी/स्वयंसेवी संस्थाओं में-व्यवसायिक निर्देशन समाज कोलकाता, गुजरात शोध समाज मुम्बई, वाई०एम०सी०ए०, रोटरी क्लब, लायन्स क्लब प्रमुख हैं। भारतीय चिकित्सा संघ भी चिकित्सा सम्बन्धी निर्देशन एवं परामर्श प्रदान करता है।

प्रस्तावना

इस संसार में अपने जीवन को जीने के लिये अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना अनिवार्य है। यदि ऐसा न किया जाये तो मनुष्य का अस्तित्व ही समाप्त हो सकता है। आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये धन की आवश्यकता होती है एवं धन कमाने के लिये किसी रोजगार और व्यवसाय की आवश्यकता होती है। व्यक्ति के पास धन की मात्रा तथा उसके व्यवसाय का उसके रहन-सहन के स्तर, कार्य की गति तथा समाज से सम्बन्धित कार्यों पर किसी न किसी प्रकार से प्रभाव पड़ता है।

विज्ञान के विकास ने औद्योगीकरण पर अपना पूर्ण अधिकार कर लिया है वही इस औद्योगीकरण ने मानव-शक्ति को भी अपने यहाँ तर्क-संगत रखने के लिये जटिल व्यवसायों की दीवार को फाँद कर तथा अपनी क्षमताओं तथा योग्यताओं का प्रमाण देकर ही अपनी आजीविका कमाने के लिये अभिप्रेरित करने का अभियान छेड़ दिया है। आज के इस आधुनिक युग में व्यावसायिक निर्देशन प्राप्त करने के लिये एक होड़ सी लग गई है। व्यावसायिक निर्देशन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करना अध्यापक तथा परामर्शदाता के लिये अति आवश्यक है। व्यावसायिक निर्देशन के अन्य पक्षों का विवरण जानने से पूर्व इसका अर्थ परिभाषाओं का अध्ययन अति आवश्यक है।

व्यावसायिक निर्देशन का अर्थ

व्यावसायिक निर्देशन को विद्वानों ने निर्देशन के विभिन्न पक्षों पर बल देते हुए अलग-अलग प्रकार से परिभाषित किया है। विभिन्न पक्षों के अन्तर्गत आर्थिक पक्ष प्रबल दावेदार होता है, लेकिन अन्य व्यक्तित्व सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्ष भी मद्देनजर रखे जाते हैं। अतएव व्यावसायिक निर्देशन की परिभाषा निम्नानुसार दी गई है।

मायर्स (Myers) के अनुसार, "व्यावसायिक निर्देशन किसी व्यक्ति को स्वयं के व्यवसाय से सम्बन्धित कुछ निश्चित कार्य करने में सहायता देने की प्रक्रिया है।"

(Vocational Guidance is the process of assisting the individual to do for himself certain definite things pertaining to his vocation)

– **Myers**

रॉबर्टस (Roberts) ने व्यावसायिक निर्देशन को यूँ परिभाषित किया है, "व्यावसायिक निर्देशन किसी व्यवसाय के चयन और उसमें समायोजन में भाग लेने वाली प्रविधियों और समस्याओं से सम्बन्धित है।

(Vocational Guidance Is Concerned With The Problems And Techniques Involved In Choosing An Occupation And In Becoming Adjusted In It) –**Roberts**

क्रो एवं क्रो (Crow & Crow) के अनुसार, "व्यावसायिक निर्देशन की व्याख्या प्राय: सीखने वाले को, किसी व्यवसाय के चयन, उसमें तैयारी और उसमें प्रगति करने में सहायता के रूप में की जाती है।

(Vocational Guidance Usually Interpreted As The Assistance Given To Learners To Choose Prepare For An Progress in An Occupation)

Crow & Crow

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (1949) : व्यावसायिक निर्देशन किसी व्यक्ति को उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं और व्यावसायिक अवसरों के अनुसार व्यावसायिक, चयनों और प्रगति से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान में सहायता प्रदान करना है।

(Vocational Guidance Is An Assistance Given To An Individual In Solving Problem Related To Occupation Choices And Progress With Due Regard For The Individual Characteristics And Their Relation To Occupational Opportunities)

– **International Labour Organization**

फ्रैंक पारसन्स (Frank Parsons) ने 1 मई 1908 में व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अपनी एक संक्षिप्त रिपोर्ट में बिना किसी व्याख्या अथवा परिभाषा के किया था। 'व्यावसायिक निर्देशन' शब्द की पर्याप्त तथा सुव्यवस्थित परिभाषा सबसे पहले 1924 में प्रकाशित राष्ट्रीय व्यावसायिक निर्देशन एसोसिएशन (National Vocational Guidance Association) ने एक रिपोर्ट में कही थी। इस एसोसिएशन द्वारा बताया गया

NOTES

व्यावसायिक निर्देशन का अर्थ किसी एक विद्वान का न होकर कई विद्वानों का विचार था एवं यह विचार अव्यवस्थित विचार था व्यावसायिक निर्देशन की परिभाषा से सम्बन्धित विचार यह था, "व्यावसायिक निर्देशन किसी व्यवसाय के चयन, उसके लिये तैयारी, उसमें प्रवेश करने तथा उसमें प्रगति करने के लिये सूचना, अनुभव एवं सुझाव देने में सहायता की एक प्रक्रिया है।"

(Vocational Guidance Is The Giving of Information Experience And Advice In Regard To Choosing An Occupation Preparing For It Entering In And Progressing In It)

– National Vocational Guidance Association

लेकिन इसी संस्था ने उपरोक्त परिभाषा को अपर्याप्त मान कर 1937 में एक और परिभाषा दी। इस परिभाषा के अनुसार, "व्यावसायिक निर्देशन किसी व्यक्ति को कोई व्यवसाय चुनने, उसके लिये तैयारी करने, उसमें प्रवेश करने और उसमें प्रगति करने के लिये सहायता प्रदान करने की प्रक्रिया है। यह सर्वप्रथम व्यक्तियों को भावी योजना बनाकर एवं भविष्य बनाने के लिये चयन करने और उन निर्णयों को लेने से सम्बन्धित है जो संतोषजनक व्यावसायिक समायोजन के लिये आवश्यक होते हैं।"

व्यावसायिक निर्देशन की प्रकृति

व्यावसायिक निर्देशन की उपरोक्त सभी परिभाषाओं का विश्लेषण करें तो हमें व्यावसायिक निर्देशन की प्रकृति स्पष्ट होती है, जो निम्नवत है –

(i) व्यावसायिक निर्देशन एक व्यापक प्रक्रिया है न कि मात्र घटना।

(ii) व्यावसायिक निर्देशन द्वारा उन व्यक्तियों के बारे में सूचना प्राप्त करनी चाहिए जो विभिन्न व्यवसायों में कार्यरत होते हैं।

(iii) व्यावसायिक निर्देशन में इस बात पर बल दिया जाता है कि व्यक्ति सफल व्यावसायिक समायोजन के लिये स्वयं की रुचियाँ, अभिरुचियों, योग्यताओं आदि को समझे।

(iv) व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने के लिये आवश्यक सूचनाएँ दक्षता (Skills) एवं योग्यता प्राप्त करनी चाहिए।

NOTES

(v) व्यावसायिक निर्देशन में व्यक्तियों को अपनी शक्तियों, क्षमताओं, योग्यताओं, रुचियों, व्यक्तित्व आदि को समझने में मदद कर सकती है।

(vi) व्यावसायिक निर्देशन में व्यक्ति अपनी क्षमताओं, शक्तियों के अनुरूप व्यवसाय चयन में सहायता प्राप्त करता है।

(vii) व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति के लिये न केवल व्यवसाय चयन में वरन् व्यवसाय में प्रवेश एवं प्रगति के लिये भी सहायक होता है।

(viii) व्यक्ति को व्यावसायिक निर्देशन में विभिन्न व्यवसायों के बारे में सूचनाएँ प्रदान की जाती है।

(ix) इस प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति व्यावसायिक लक्ष्य की प्राप्ति कर संतुष्टि तथा प्रसन्नता प्राप्त करता है।

(x) यह एक व्यापक प्रक्रिया है जो सार्वभौमिक रूप से आत्मसात हो व्यावसायिक उत्पादकता प्रदान करती है।

व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्य

व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

1. विद्यार्थियों की विभिन्न जीविकाओं के विषय में सूचनायें एकत्र करने में सहायता करना।
2. विद्यार्थियों में व्यवसाय सम्बन्धी सूचनाओं का विश्लेषण करने की क्षमता का विकास करना।
3. विद्यार्थियों को विभिन्न व्यवसायों का निरीक्षण करने की सुविधायें प्रदान करना।
4. विद्यार्थियों को इस तथ्य से अवगत कराना कि किसी व्यवसाय के लिये किन-किन गुणों, योग्यताओं तथा दक्षताओं की आवश्यकता होती है।
5. विद्यार्थियों को विभिन्न व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थाओं से परिचित कराना।
6. विद्यार्थियों को विद्यालय के अन्दर तथा बाहर ऐसे अवसर प्रदान करना, जिससे वे कार्य की परिस्थितियों में परिचय प्राप्त कर सकें और अपनी रूचि का विस्तार कर सकें।

NOTES

7. व्यवसाय-चयन के उपरान्त अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करने में व्यक्ति की सहायता करना।
8. विद्यार्थियों में ईमानदारी से कार्य करने में निष्ठा उत्पन्न करना।
9. निर्धन विद्यार्थियों को वित्तीय सहायता देकर उनकी व्यवसाय सम्बन्धी योजना को सफल बनाना।
10. विद्यार्थियों को विभिन्न व्यवसायों का व्यक्तिगत तथा सामाजिक महत्व बताना एवं उनमें कार्य के प्रति एक आदर्श भावना जाग्रत करना।

व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता

मानव-व्यक्तित्व की जटिलता, आधुनिक औद्योगिकीकरण की जटिलता, शैक्षिक विषयों की जटिलता एवं विभिन्न व्यवसायों की जटिलता ने इकट्ठे होकर व्यवसाय-प्रणाली को इतना जटिल बना दिया है कि आज के युग में व्यवसायों की प्रकृति को समझना, व्यवसायों का चयन करना और व्यवसायों में प्रवेश करने के लिये विशेषज्ञों की सलाह लेना अनिवार्य हो गया है। बिना परामर्श लिये व्यवसायों का चयन घातक सिद्ध हो सकता है तथा ऐसा हुआ भी है। व्यवसायों की अधिकता एवं तीव्रगति से बदल रही परिस्थितियों को देखते हुए व्यवसाय के अनुरूप व्यक्ति तथा व्यक्तित्व के अनुरूप व्यवसाय का होना बहुत ही आवश्यक हो चुका है। इतना ही नहीं, व्यवसाय में प्रवेश करने के लिये ही परामर्श पर्याप्त नहीं, बल्कि उसमें प्रवेश करने के पश्चात् उसमें संतोषजनक ढंग से सफलतापूर्वक समायोजन की भी आवश्यकता होती है। अत: व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता सीमित दायरे में न होकर विस्तृत है। निम्नलिखित कुछ कारण ऐसे हैं जो व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हैं:-

(1) व्यक्तिगत विभिन्नताएँ – व्यक्तिगत विभिन्नताओं के बारे में सभी मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक एक मत है। सभी के मतानुसार इस संसार में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हो जो दूसरे व्यक्ति जैसा हो। सभी व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होते हैं चाहे उनमें ये विभिन्नताएँ उनके व्यक्तित्व के किसी भी पक्ष से सम्बन्धित हो मायर्स (Myers) ने इन विभिन्नताओं को दो प्रकार का कहा है- व्यक्तिगत तथा व्यावसायिक। जिस प्रकार व्यवसायों में विभिन्नता पाई जाती है उसी प्रकार व्यक्तियों में भी भिन्नता पाई जाती है। ऐसा प्राय: निश्चित है कि प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक कार्य नहीं कर सकता।

(2) व्यवसायों में विभिन्नता (Verieties in Occupations) – प्रगतिशील अर्थव्यवस्था में व्यावसायिक विभिन्नता आवश्यक है। जितना अधिक वैज्ञानिक सोच का विकास होगा, व्यवसाय का विश्लेषणात्मक रूप होगा एवं व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता प्रतिपादित होगी।

(3) आर्थिक दृष्टि से– जहाँ मानव शक्ति है वहाँ आर्थिक शक्ति है, क्योंकि धन वह धुरी है जिस पर सारा विश्व घुमता है तथा उसकी उत्पत्ति मानव समाज द्वारा ही संभव है। यह आर्थिक सशक्तिकरण तभी संभव होगा जब उपयुक्त व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति को प्राप्त हो। ऐसी परिस्थिति में वह अर्थ का उत्पादन तथा उपयोग जनहित में करेगा।

(4) जीवन में स्थिरता के लिये– जीवन को गतिशील तथा उपयोगी बनाने के लिये व्यवसाय का चयन करना पड़ता है ताकि जीविकोपार्जन किया जा सके एवं जीवन को एक स्थिर रूप से कलात्मक शैली प्रदान कर हर क्षण ओर हल पल का आनन्द लिया जाये। जीवन बोझिल न होकर रागमय बन सके और अच्छे समाज की संरचना हो।

(5) मानवीय शक्तियों के अधिकतम उपयोग हेतु– व्यक्ति में मनोशारीरिक शक्ति के साथ विभिन्न द्वंद्वों संघर्षों तथा हताशाओं का भी दैनिक अर्न्तक्रिया से उद्‌गम होता रहता है। ऐसे में व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति को अपनी अधि कतम शक्तियों को उजागर कर सर्वोत्तम उपयोग के लिये प्रेरित करते हैं।

(6) पारिवारिक एवं व्यावसायिक जीवन में सामंजस्य के लिये – किसी भी व्यक्ति के पारिवारिक एवं व्यावसायिक जीवन में सामंजस्य का होना अति आवश्यक है व्यावसायिक सफलताओं का प्रभाव पारिवारिक जीवन पर अवश्य पड़ता है। इसी प्रकार पारिवारिक परिस्थिति का प्रभाव व्यवसाय पर बहुत पड़ता है। इस सामंजस्य के लिये आवश्यक होता है कि व्यक्ति को सही व्यवसाय के चयन में सहायता के लिये व्यावसायिक निर्देशन प्रदान किया जाये।

(7) सामाजिक एवं व्यक्तिगत दृष्टिकोण से आवश्यकता – व्यक्तिगत और सामाजिक दृष्टिकोण का भी अपना ही महत्व होता है। कार्यकर्ताओं की अपने कार्यों में प्रसन्नता एवं संतुष्टि और उसके व्यक्तित्व का विकास उसके व्यवसाय पर निर्भर करता है। कोई भी निराश तथा असंतुष्ट व्यक्ति अपने समाज के लिये अभिशाप सिद्ध हो सकता है तथा ऐसा व्यक्ति अपने समाज के लिये भी कुछ योगदान नहीं दे सकता। इस सम्बन्ध में सुपर (Super) ने

NOTES

बहुत ठीक ही कहा है 'व्यवसाय केवल जीविका कमाने का एक साधन ही नहीं बल्कि यह जीवन का प्रमुख मार्ग है, एक सामाजिक भूमिका है।"

विभिन्न स्तर पर व्यावसायिक निर्देशन

व्यावसायिक निर्देशन का अर्थ संकीर्ण न होकर बहुत ही विस्तृत हो गया है। शिक्षा को क्षेत्र भी विस्तृत रूप धारण कर चुका है। उसी के अनुरूप व्यावसायिक निर्देशन का कार्य क्षेत्र भी इतना व्यापक हो चुका है कि प्रत्येक व्यवसाय को अपनाने से पहले उसकी व्यक्ति के लिये 'उपयुक्तता तथा व्यक्ति के लिये उस व्यवसाय की उपयुक्तता को जानना बहुत ही अनिवार्य हो चुका है। इस दृष्टि से विभिन्न स्तर पर किस प्रकार का व्यावसायिक निर्देशन होना चाहिए कि इसकी चर्चा करना आवश्यक है।

प्राथमिक स्तर पर व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance At Primary Stage)

प्राथमिक एवं मिडिल स्तर व्यावसायिक निर्देशन का मुख्य उद्देश्य विकासात्मक और विन्यासात्मक (Development And Orientational) है। बच्चों को इस स्तर पर पाठ्यक्रम और पाठ्यक्रम के अतिरिक्त क्रियाओं द्वारा उसे मूलभूत कौशलों और दृष्टिकोणों (Basic And Attitudes) के विकास में सहायता प्रदान करना है। इस स्तर पर बच्चे में अच्छे गुणों का विकास किया जाता है जिनका व्यवसायिक महत्व होता है। ये गुण क्राफ्ट द्वारा बच्चों में सिखाये जाने वाले कुछ मुख्य गुण निम्नलिखित हैं –

(i) शारीरिक कार्य के प्रति सम्मान एवं प्रेम

(ii) हाथों को प्रयोग करने का प्रशिक्षण।

(iii) उत्तम आँख तथा हाथ में सामंजस्य

(iv) वस्तुओं को ढंग से रखना तथा स्वच्छ और क्रमबद्ध ढंग से कार्य करना।

(v) सहकारी कार्य की भावना।

(vi) उपलब्धियों को दूसरों के साथ बाँटना।

(vii) किसी की अपनी उपलब्धियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना।

(viii) अच्छे पारस्परिक संबंध।

माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक निर्देशन

इस स्तर पर विद्यार्थी विषयों का चयन करने लगते हैं तथा उनकी रूचियों पर परिवेश एवं संगी साथियों का प्रभाव पड़ने लगता है। अतः इस स्तर पर व्यावसायिक निर्देशन के निम्नलिखित कार्य होते हैं-

(i) स्वयं के बारे में जानने में मदद करना।

(ii) विद्यार्थियों को विभिन्न कार्यक्षेत्रों के बारे में सूचनाएँ देना।

(iii) सही व्यवसाय क्षेत्र चयन में सहायता।

(iv) व्यवसाय में प्रवेश हेतु सहायता।

(v) विद्यार्थियों को अंशकालिक

(vi) विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा में प्रवेश करने या न करने का निश्चय करने में सहायता करना।

(vii) विद्यार्थियों तथा अन्य समकक्ष आयुवर्ग को जीवन के भावी व्यवसाय का लेखा जोखा देना।

(viii) व्यावसायिक कौशल विकास को प्रेरित करना।

महाविद्यालय स्तर पर व्यावसायिक निर्देशन

महाविद्यालय स्तर पर विद्यार्थी की जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं एवं महाविद्यालय से निकलने के उपरान्त उसे जीवकोपार्जन करना आवश्यकता हो जाता है। अतः इस समय व्यावसायिक निर्देशन की भूमिका अति महत्वपूर्ण हो जाती है। माध्यमिक स्तर पर किये जाने वाले कार्यों के अलावा महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर निम्नलिखित कार्य किये जाते हैं-

(i) विद्यार्थियों को उनके अध्ययनों को उन व्यवसायों से संबंध करने में सहायता करना जो उनके कॉलेज कैरियर के अन्त में उपलब्ध है।

(ii) विद्यार्थियों की उन कैरियरों Career का व्यापक अध्ययन करने में सहायता करना जिनको वे अपनाना चाहते हैं।

(iii) विद्यार्थियों को कार्य के विभिन्न पहलुओं से स्वयं को परिचित करने में सहायता करना। यह सहायता स्कूल में दी गई जानकारी में किसी प्रकार की कमी को पूरा करती है।

(iv) विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा के अवसरों से परिचित कराना।

(v) विद्यार्थियों को विभिन्न आर्थिक सहायता के कार्यक्रम के बारे में जानने में सहायता करना। जैसे- छात्रवृत्तियाँ, फैलोशिप्स इत्यादि।

व्यावसायिक अभ्यार्थियों की गतिशीलता

जीविकोपार्जन की आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी व्यवसाय में कार्य करना आवश्यक होता है। विद्यार्थियों को किसी व्यवसाय विशेष का चुनाव करते समय निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए :-

1. विद्यार्थियों का अपनी, रुचियों, योग्यताओं व क्षमताओं का ज्ञान होना – विद्यार्थी भविष्य में जिस कैरियर का चुनाव करना चाहता है, उससे सम्बन्धित विषयों का अध्ययन उसे पहले से करना पड़ेगा अर्थात् उसे ऐसी पाठ्यक्रम का चयन करना पड़ेगा, जिससे उसकी अपने भावी कैरियर पर पकड़ मजबूत हो। इसके लिये आवश्यक है कि विद्यार्थी को अपनी रुचियों, योग्यताओं एवं क्षमताओं का ज्ञान हो जिससे वह उचित कैरियर का चयन कर सके। इस संदर्भ में विद्यार्थी निम्न कारणों से अपनी आवश्यकताओं तथा रुचियों की अवहेलना करके गलत कैरियर का चयन कर लेता हैं :-

1. विद्यार्थी की उच्च महत्वाकांक्षा।
2. विद्यार्थी की निम्न महत्वाकांक्षा।
3. माँ-बाप के दबाव के कारण विषयों तथा कैरियर का गलत चयन।
4. अपने किसी प्रिय साथी का यथार्थवादी अनुकरण।
5. विभिन्न कैरियरों का स्पष्ट ज्ञान न होना।
6. शिक्षा क्षेत्र में किसी विषय या कैरियर के विशेष प्रचार के परिणामस्वरूप।
7. कैरियर निर्देशक से कोई परामर्श न लेना।
8. प्राय: विद्यालयों में कैरियर निर्देशकों की नियुक्ति न होना तथा विद्यालय-पुस्तकालयों में उचित कैरियर-साहित्य का न होना।
9. विद्यार्थियों का अपने पारम्परिक व्यवसाय से प्रभावित न होना।

10. विद्यार्थी में किसी नये कैरियर को अपनाने की दृष्टि से साहसिकता तथा जोखिम का अभाव।

2. **किसी प्रतिष्ठित व्यावसायिक संस्था में प्रवेश के लिये तैयारी करना–** जो लोग किसी पेशेवर कैरियर (इंजीनियर, मेडिकल मैनेजमेंट, चार्टर्ड एकाउटेंसी इत्यादि) में अध्ययन कर रहे हैं, उनके कैरियर की दिशा तो कुछ निश्चित है, किन्तु सिर्फ पेशेवर पाठ्यक्रम को पूरा कर लेना अच्छे कैरियर की गारन्टी नहीं माना जा सकता। रोजगार के मामले में आज जिस प्रकार प्रतियोगिता है, उसमें इन लोगों को भी अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिये कड़ी मेहनत की आवश्यकता है। इसलिये परीक्षा में अधिकाधिक अंक प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

   वस्तुतः जिससे कैरियर का चुनाव किया जाये, उसमें नवीनतम प्रवृत्तियों की जानकारी रखनी भी आवश्यक है। एक ही पेशे में अलग-अलग संगठनों में कैरियर की राह एक जैसी नहीं होती।

व्यावसायिक परिपक्वता

व्यावसायिक परिपक्वता से अभिप्राय विद्यार्थी में इतनी समझ विकसित करना कि वह अपनी क्षमताओं, रुचियों को पहचान कर उसी प्रकृति का व्यवसाय चयन कर सके इस हेतु उसमें विभिन्न व्यवसायों को गहराई से विश्लेषण करने की क्षमता होनी चाहिए और उनके गुण अवगुण के आधार पर निर्णय करने की भी क्षमता होनी चाहिए। यही उसकी व्यावसायिक परिपक्वता का परिचायक है। यह परिपक्वता तभी दिखाई देगी जब उसमें निम्नलिखित क्षमताएँ होंगी–

1. **यह देखना कि कैरियर में भावी उन्नति एवं विकास के कितने अवसर हैं–** किसी कैरियर का चयन करते समय यह देखना परम आवश्यक है कि उक्त कैरियर में भावी विकास तथा उन्नति के कितने अवसर है, उसमें स्थिति कहीं एक-सी ही तो नहीं रहती। इन प्राप्त अवसरों में भी स्थायित्व कितना है? हमारी महत्वाकांक्षा से यह कैरियर लक्ष्य मेल खाता है या नहीं, अपने आप में कैरियर के अनुकूल अथवा प्रतिकूल पहलू कौन से हैं? यदि कैरियर में उन्नति तथा विकास से सम्बन्धित अत्यधिक अवसर है एवं उन्हें बीच-बीच में विभिन्न विभागीय परीक्षायें देकर प्राप्त किया जा सकता है अथवा या फर्म की कुछ शर्तें

NOTES

पूर्ण कर उन्हें प्राप्त किया जा सकता है, जैसे किसी ऊँचे पद पर गाँवों या छोटे कस्बों में जाना आदि तो ऐसे कैरियर पर विचार करने की आवश्यकता है। उसी कैरियर का चयन करना चाहिए, जिससे व्यक्ति जीवन के अंतिम छोर तक पहुँचते-पहुँचते अपना अधिकतम विकास कर सके तथा अधिकतम वेतन-राशि प्राप्त कर सकें।

2. **कैरियर का सूक्ष्म विश्लेषण करना एवं अपनी रुचियों के साथ उसका सम्बन्ध देखना** – कैरियर चुनने में वस्तुतः हमें अपनी रुचियों एवं रुझानों को सबसे अधिक वरीयता देनी चाहिए। यह रुझान किसी क्षेत्र विशेष के बाह्य आकर्षण के कारण नहीं होना चाहिए। रुझान की पृष्ठभूमि का भी गहनता पूर्वक विश्लेषण किया जाना आवश्यक है। उसके बाद इस सम्भावना का पता लगाना जाना चाहिये कि क्या इस सम्भावना को कैरियर लक्ष्यों से जोड़ा जा सकता है। यदि कैरियर व्यक्ति की रूचि और रुझान से सम्बन्धित होगा तो वह उसके लिये अधिक अध्ययन तथा परिश्रम करेगा। वह उसमें अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर सकेगा एवं उक्त कैरियर में सफलता अर्जित कर सकेगा।

3. **किसी कैरियर के चुनाव से पूर्व उसकी प्रगति से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन करना आवश्यक है** – आजकल नये-नये क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के कैरियर अस्तित्व में आ रह हैं। इनमें से किसी कैरियर पर ध्यान केन्द्रित करने से पूर्व उसकी प्रगति तथा विकास से सम्बन्धित उसके इतिहास का अध्ययन अनिवार्य है। जैसे कैरियर कितने वर्ष से प्रारम्भ हुआ है, इसकी शाखायें देश में कितने स्थानों पर है? विदेशों में भी इसका विस्तार है अथवा नहीं? कितने व्यक्ति इसमें कार्य करते हैं। इसमें वेतन के अतिरिक्त अन्य क्या सुविधायें मिलती हैं। कैरियर कहीं बिल्कुल नवीन तो नहीं है? अभी इसने, विस्तार या प्रगति की कुछ मंजिले तय की हैं अथवा नहीं? जनता में इसकी क्या प्रतिक्रिया है 'यदि कैरियर की प्रगति की सूचना अच्छी है एवं वह विकास की कई मंजिलें तय कर चुका है तो फिर ऐसे कैरियर का चयन किया जा सकता है।

4. **किसी कैरियर के चुनाव के समय उस कैरियर में सफलता प्राप्त करने की दृष्टि से दृढ़ संकल्प आवश्यक** – किसी कैरियर लक्ष्य को प्राप्त करने की दृष्टि से जिन अपेक्षाओं को पूर्ण करना हो, उन्हें बखूबी समझ लेना चाहिए। ये अपेक्षायें शैक्षणिक, पेशेवर योजनाओं,

NOTES

भाषाओं के ज्ञान, परिश्रम आदि को लेकर हो सकती है एवं वरीयता की दृष्टि से इन अपेक्षाओं का स्थान आगे-पीछे हो सकता है। इन अपेक्षाओं को पूर्ण करने के पश्चात् ही हम अपने लक्ष्य की दिशा में आगे बढ़ सकेंगे, लेकिन इससे पूर्व हमें अपनी कार्य योजना तैयार करनी चाहिए।

5. **किसी कैरियर के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु कठिन श्रम तथा त्याग आवश्यक** – आज के युग में व्यति का पेशा अथवा कैरियर उसकी पहचान का अभिन्न अंग है। इस सच्चाई से हम मुँह नहीं छिपा सकते। इसलिये प्रारम्भ से ही हमें अपनी कैरियर लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु आवश्यक त्याग तथा कठिन परिश्रम एवं अध्यवसाय करने को तत्पर रहना चाहिए, क्योंकि यह स्मरण रखिए कि प्रारम्भ में ही की गई मेहनत एवं त्याग का फल हमें आजीवन मिलेगा। इससे व्यक्ति को स्वयं भी संतोष प्राप्त होगा तथा साथ ही उसका पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन भी सुखमय रहेगा।

कैरियर का मनोविज्ञान

कैरियर का अर्थ है – निरंतर प्रगति करने वाले जीविकोपार्जन सम्बन्धी जितने भी पुराने, वर्तमान एवं नये व्यवसाय या नौकरियाँ हैं, अपनी रूचि, योग्यता एवं क्षमता के अनुकूल उनमें से किसी एक का चयन करना, उसमें प्रवेश पाना, उसमें संतोषजनक रूप से समायोजित होना एवं निरंतर प्रगति करना। यह प्रक्रिया दीर्घजीवी है अर्थात् जीवन पर्यन्त साथ निभाने वाली यह प्रक्रिया है, क्योंकि किसी कैरियर को चरण करने का प्रभाव जीवन की अन्य क्रियाओं तथा सामाजिक सम्बन्धों पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में पड़ता है।

कैरियर अथवा नौकरी अथवा जीविकोपार्जन के साधन को कुछ लोग भाग्य का करिश्मा बताते हैं, लेकिन यह सही नहीं है। कैरियर के मामले में भी कारण एवं प्रभाव का सिद्धान्त लागू होता है अर्थात् कैरियर के लिये योजना व क्षमता में सही निवेश कर परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। कैरियर के विषय में गलती कई प्रकार से होती है। अधिकांश लोग एक तो अपनी कैरियर आकांक्षाओं को सही प्रकार से समझते नहीं अथवा परिभाषित नहीं कर पाते, दूसरे उनकी योजना नीति अथवा प्रयासों में कहीं न कहीं कोई कमी रह जाती है, जिससे चलते वे अपनी मंजिल तक नहीं पहुँच पाते।

NOTES

कैरियर निर्देशन का महत्व

व्यक्ति को जब यह ज्ञात होगा कि अमुक प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के बाद उसे अमुक नौकरी का कार्य मिल जायेगा तो वह उत्साह, उमंग एवं पूर्ण आत्मविश्वास से अपना अध्ययन कार्य करेगा। वस्तुतः प्राइमरी स्कूल स्तर के बाद विभिन्न प्रकार के कैरियर से सम्बन्धित विद्यालय होने चाहिए जो विद्यार्थियों को उक्त कैरियर के सैद्धान्तिक व व्यावहारिक पाठ्यक्रम में प्रवीण बनायें। आजकल नित नवीन पाठ्यक्रम प्रकाश में आ रहे हैं। जिनमें से अनेक पाठ्यक्रमों व उनमें कैरियर का भविष्य अत्यन्त उज्जवल है। विद्यार्थियों को अपनी रुचि, योग्यता और क्षमता के अनुसार कैरियर का चयन करना चाहिए। कैरियर निर्देशन उनकी इस कार्य में मदद कर सकता है।

अपनी रुचि, योग्यता, प्रतिभा एवं सामर्थ्य के अनुसार कार्य अथवा नौकरी मिलने से जहाँ व्यक्ति को आत्मसुख व व्यवसाय की संतुष्टि प्राप्त होती है एवं वह अपनी शक्तियों व ऊर्जा का सही प्रयोग करता है, एवं जहाँ उससे उद्योगपतियों, निदेशकों व मालिकों को लाभ व सन्तुष्टि प्राप्त होती है, वही दूसरी तथा राष्ट्र के उत्पादन व निर्माण में भारी वृद्धि होती है तथा निर्यात में काफी बढ़ोतरी होती है। दूसरे शब्दों में कार्य करने वाले व्यक्ति के साथ-साथ उद्योगपतियों या कम्पनी-मालिकों को भी हर्ष होता है। तथा इसे सम्पूर्ण राष्ट्र लाभान्वित होता है।

आजकल सामान्य शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात विद्यार्थी रोजगार की तलाश में कही भी और किसी भी प्रकार की नौकरी प्राप्त करने के लिये लालायित रहते हैं किन्तु नौकरी मिलने के बाद जब उनकी योग्यताओं तथा शक्तियों का उससे कोई योग नहीं बैठता, तो उन्हें जीवन में कभी निराशा होती है। इसलिये यह आवश्यक है कि व्यक्ति पहले किसी कैरियर को पसन्द करें तत्पश्चात् उसके अनुकूल अपने अंदर योग्यताओं का विकास करें फिर उस कैरियर में प्रवेश के लिये कठिन परिश्रम करें उक्त कैरियर में यदि उसका प्रवेश हो जाता है तो वह धीरे-धीरे उसमें अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करें तथा कम्पनी या उद्योग के कार्य को आगे बढ़ाये।

व्यवसाय-चयन करते समय महत्वपूर्ण तथ्य

किसी भी व्यवसाय का चयन करने से पूर्व व्यक्ति को उस व्यवसाय का भली-भाँति अध्ययन करना चाहिए। वैसे तो व्यवसाय से सम्बन्धित कौन सी

सूचनायें प्राप्त करनी आवश्यक है एवं कौन सी नहीं, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है, लेकिन एक व्यवसाय का अध्ययन करने के लिये निम्नलिखित शीर्षकों द्वारा अध्ययन करना सहज हो सकता है।

1. **व्यवसाय का महत्व** – इसके अन्तर्गत हमें यह देखना चाहिए कि उक्त व्यवसाय का सामाजिक दृष्टि से क्या महत्व है, उसमें कितने व्यक्ति रोजगार प्राप्त करते हैं? क्या व्यवसाय विकसित अवस्था में है, या विकास की एवं अग्रसर हो रहा है?

2. **कार्य का स्वभाव** – व्यवसाय के कार्य के स्वभाव के अन्तर्गत यह देखना चाहिए कि कार्य किस प्रकार का है और श्रमिक किस प्रकार का कार्य करते हैं।

3. **कार्य की दशाएँ** – कर्मचारियों या श्रमिकों को किस प्रकार की परिस्थितियों में कार्य करना पड़ता है? क्या कार्य मात्र चारदीवारी के अन्दर ही करना पड़ता है या भ्रमण पर भी जाना होता है, स्वच्छता कैसी है? हवा, जल तथा प्रकाश की समुचित व्यवस्था है अथवा नहीं? कितने घण्टे तक कार्य करना होता है' आदि समस्त बातों के संबंध में जानकारी कार्य की दशाओं के अन्तर्गत की जाती है।

4. **व्यवसाय हेतु वांछनीय योग्यताएँ** – व्यवसाय हेतु किस प्रकार की योग्यता आवश्यक है- मानसिक या शारीरिक? मानसिक योग्यता हेतु कितनी बुद्धि होनी आवश्यक है? कितने संवेग की आवश्यकता है? व्यक्ति में कितनी स्थिरता, धीरज, तथा साहस होना आवश्यक है? व्यक्ति का व्यक्तित्व कैसा होना चाहिए? तथा यदि शारीरिक योग्यता आवश्यक है तो क्या कार्य सम्पूर्ण शरीर से करना पड़ेगा अथवा शरीर के केवल कुछ विशेष अंगों से ही।

5. **उन्नति के अवसर** – व्यवसाय में प्रविष्ट होने की क्या पद्धति है? व्यवसाय हेतु कितनी आयु होनी चाहिए कितने दिन औसतन कार्य करना पड़ेगा। निरीक्षण कार्य किस प्रकार होता है। भावी जीवन में उन्नति के क्या अवसर हैं? इत्यादि बातों का अध्ययन, उन्नति के अवसर में किया जाता है।

6. **वेतन** – व्यवसाय में प्रवेश पाने के बाद प्रारम्भिक वेतन कितना है वेतन में प्रतिवर्ष कितनी वृद्धि होगी? अंतिम वेतन कितना है? वेतन किस

NOTES

प्रकार दिया जाता है यथा प्रतिदिन, साप्ताहिक या महावार? वेतन के अतिरिक्त अन्य सुविधाएँ प्राप्त हैं अथवा नहीं?

7. **व्यवसाय का इतिहास** – व्यवसाय का इतिहास क्या है? इस सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। व्यवसाय का दीर्घता तथा स्थायित्व के सम्बन्ध में जानकारी व्यवसाय के इतिहास से ही होती है। इसके अतिरिक्त व्यवसाय के इतिहास से यह भी ज्ञात हो जाता है कि व्यवसाय प्रगति की ओर है या अवनति की ओर।

8. **वांछनीय प्रशिक्षण** – इस बात की जानकारी करनी चाहिये कि किसी व्यवसाय, या जिस व्यवसाय में वह प्रविष्ट होना चाहता है, इसके लिए कितनी सामान्य शिक्षा होनी चाहिए? किसी विशेष व्यवसाय प्रशिक्षण की आवश्यकता है या नहीं? वह प्रशिक्षण कितना व्यवसाय है? एवं कहाँ से प्राप्त किया जा सकता है?

9. **कार्य की नियमितता** – क्या कार्य पूरे वर्ष रहता है अथवा कुछ माह? आदि बातों की जानकारी कार्य की नियमितता के अन्तर्गत आती है?

10. **व्यवसाय का गठन** – व्यवसाय के गठन में यह देखना चाहिए कि व्यवसाय का गठन किस प्रकार का है? क्या साझेदारी व्यवसाय है? अथवा एकाधिकार व्यवसाय? क्या व्यवसाय अथवा व्यापार संयुक्ता स्कन्द कम्पनी है? क्या वह सहकारी सिद्धांतों पर आधारित है? निजी है या सरकारी?

11. **वांछनीय अनुभव** – व्यवसाय में कितने समय के अनुभव की आवश्यकता है? या अनुभव के बिना ही कार्य हो जायेगा? व्यवसाय हेतु उस अनुभव को कहाँ से प्राप्त किया जा सकता है? इत्यादि बातों का अध्ययन वांछनीय अनुभव के अन्तर्गत किया जाता है।

12. **नियोग का स्थान** – नियोग के स्थान के अन्तर्गत, कार्य स्थल की जलवायु, परिवेश, यातायात के साधन, खाद्य–सामग्री तथा अपने निवास स्थान से दूरी इत्यादि बातों को देखा जाता है।

13. **अन्य कर्मियों का अध्ययन** – किसी भी व्यवसाय का चयन करने से पूर्व यह भी ज्ञात करना चाहिए कि उस व्यवसाय में किस प्रकार के कर्मिकों की अधिक संख्या है? क्योंकि उन्हीं कर्मिकों के साथ उसे कार्य करना होगा।

NOTES

14. **सामान जिस पर कार्य करना है** – जिस प्रकार से सामान पर कार्य करना है, वह सामान उसके स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव डालने वाला तो नहीं है? इसके संबंध में भी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

रोजगार सूचना (Occupational Information)

रोजगार सूचना का अर्थ

'एनसाइक्लोपिडिया ऑफ मॉडर्न एजूकेशन' में रोजगार जानकारी का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया गया है, 'रोजगार जानकारी शब्द रोजगार साहित्य में व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसका सम्बन्ध उन तथ्यों से है जो रोजगारों के महत्व, निवेश की योग्यताओं, उन्नति के अवसर एवं विधियों, स्वास्थ्य एवं दुर्घटनाओं की सम्भावनाओं, उनके एवज में दिये जाने वाले मुआवजों एवं विशिष्ट रोजगार या संबंधित रोजगार समूहों में उपस्थित होने वाली दशाओं इत्यादि से संबंध रखते हैं।"

इस प्रकार रोजगार सूचना के अन्तर्गत विभिन्न उद्योग एवं उनके प्रक्रमों का अध्ययन आता है।

Riolin H.M. And Schuder A; The Term Occupational Information Is Used In Vocational Literature In A Wide Rense If Refers To Facts Concerning The Importance Of The Vocations Entrance Requirements Lines Of One Opportunities For Promotion Health And Accident Hazardo Compensation And Other Working Conditions That Are Usually Met In Specific Vocational Or Related Group of Vocations

–Encyclopedia Of Modern Education

रोजगार सूचना का महत्व तथा प्रकृति

1. **रोजगार सूचना सेवा व्यक्ति के लिये अत्यंत उपयोगी है–** प्रायः व्यक्ति अपने लिये उन्हीं व्यवसायें में से चुनाव करता है, जिनके बारे में वह जानकारी रखता है, किन्तु सत्य यह है कि अनेक व्यक्तियों को कई रोजगार बदलने के बाद संतोषप्रद कृत्य प्राप्त हो पाता है। इसलिये यदि पहले से ही व्यक्ति को रोजगार सूचना सुलभ हो तो पहले वह विभिन्न रोजगारों के सम्बन्ध में जानकारी करेगा, उसके बाद वह अपने लिये किसी उपयुक्त रोजगार का चयन करेगा। इससे वह तो संतोष प्राप्त करेगा ही, साथ ही इससे देश की समृद्धि में भी बढ़ोतरी होगी।

NOTES

2. **विद्यालयी शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थाओं के कार्य को अधिक सार्थक एवं उपयोगी बनाने के उद्देश्य से रोजगार सूचना की सुरक्षित व्यवस्था आवश्यक है** – वर्तमान समय में अपने देश में हम विभिन्न शिक्षा-संस्थाओं, प्रशिक्षण विद्यालयों एवं औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं में आये दिन छात्र-अशांति की चर्चा सुनते रहते हैं। इसका एक महत्वपूर्ण कारण शिक्षण तथा प्रशिक्षण की रोजगार सम्बन्धी सार्थकता का अभाव है। शिक्षण तथा प्रशिक्षण के स्तरों को पार करते हुए विद्यार्थी के सम्मुख एक प्रश्न-चिन्ह बना रहता है। वस्तुतः यदि विद्यालयों के पाठ्यक्रमों एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों में रोजगार सम्बन्धी सूचनाओं को प्रारम्भ से ही महत्वपूर्ण स्थान दिया जाये तो शिक्षा को अधिक अर्थपूर्ण एवं उपयोगी बनाया जा सकता है।

3. **कुशल निर्देशन एवं परामर्श के लिये रोजगार सूचनाओं का अध्ययन आवश्यक है** – वस्तुतः निर्देशन कार्यकर्ताओं तथा परामर्शदाताओं के कार्य में अधिक निपुणता लाने की दृष्टि से आवश्यक है कि उन्हें प्रगति करने वाले विभिन्न रोजगारों का ज्ञान हो तथा वे उद्योग तथा क्षेत्रों की प्रवृत्तियों से परिचित हों। परामर्श के इच्छुक व्यक्तियों को न केवल अपनी संभावनाओं, रुचियों एवं सुझावों का ही पता होना चाहिए, किन्तु उन्हें रोजगार, रोजगार-प्रक्रमों, प्रशिक्षण-संस्थाओं, प्रशिक्षण की अवधि, प्रशिक्षण के उपरांत रोजगार के अवसर, आय, कार्य की स्थिति तथा भविष्य में उन्नति के ही जानकारी भी होनी चाहिए।

4. **व्यक्ति की क्षमता एवं कृत्यों के बीच यथार्थ सामंजस्य** – हमारे देश में बालकों के माता-पिता विभिन्न रोजगारों में प्रायः सर्वोच्च स्थितियों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित है। जैसे यदि वे डॉक्टरों के विषय में सोचेंगे तो उनके मस्तिष्क में सिविल सर्जन अथवा किसी ख्यातिलब्ध विशेषज्ञ से कम की प्रतिभा नहीं होगी।

   ऐसे ही यदि वे इंजीनियरों के विषय में विचार करेंगे तो साधारण इंजीनियर की बात को अलग रखकर चीफ इंजीनियर से कम के बारे में नहीं सोचेंगे। रोजगार सूचनाओं के सही वितरण एवं प्रयोग के द्वारा क्षमता और प्रतिभा की इस दूरी को यथार्थ के धरातल पर लाया जा सकता है, जिसको युवकों में बाद में होने वाली निराशा से बचा जा सकता है।

5. **व्यक्ति की प्रतिभा एवं उपलब्धि का सर्वोत्तम नियोजन** – वस्तुतः सामाजिक प्रगति हेतु यह अवांछनीय है कि उसके सदस्यों की योग्यताओं, शैक्षिक उपलब्धियों तथा प्रतिभाओं का सर्वोत्तम ढंग से उपयोग किया जायें। यह तभी संभव है जब हम कार्य की तथा अग्रसर युवा व्यक्ति को विभिन्न रोजगारों के विषय में अपेक्षित सूचनायें उपलब्ध करायें।

6. **देश में रोजगार की व्यवस्था एवं सामुदायिक कार्यक्रमों को सफलता हेतु रोजगार सूचना सेवा आवश्यक है** – राष्ट्रीय स्तर पर जो आर्थिक एवं सामुदायिक नियोजन का प्रारूप तैयार होता है, उसकी सफलता तभी सम्भव है, जब देश में रोजगार की स्थिति तथा विभिन्न रोजगारों के विषय में नागरिकों को समुचित सूचनायें उपलब्ध हो। सामुदायिक संस्थाओं के लिये रोजगारों से सम्बन्धित सूचनायें अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

7. **रोजगार सूचना सेवा कैरियर निर्देशन का आधार है** – उपयुक्त रोजगार सूचना सेवा के अभाव में कैरियर निर्देशन का कार्यक्रम निष्प्रभावी सिद्ध होगा। ब्रीवर ने इसलिये इसकी उपयोगिता का ध्यान रखते हुए शिक्षण-संस्थाओं में रोजगार सूचना को एक विषय के रूप में रखने का परामर्श दिया था।

8. **तीव्रगति से होने वाले सामाजिक, आर्थिक तथा तकनीकी परिवर्तनों में रोजगार एवं कृत्यों की परिवर्तित स्थितियों से निरंतर परिचित रहने के लिये रोजगार सूचना सेवा आवश्यक है**– वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप अनेक पुराने रोजगार लुप्त होते रहे हैं एवं नये रोजगार उनका स्थान ले रहे हैं, जिनके लिये भिन्न तथा नये कौशलों की आवश्यकता पड़ती है। इन तीव्र गति से होने वाले परिवर्तनों से उत्पन्न बेरोजगारी की समस्या पर योजना आयोग विचार कर रहा है। कल तक इंजीनियरी क्षेत्र में कुशल व्यक्तियों की मांगी थी, फलस्वरूप अनेक छात्र इस ओर आकर्षित हुए। लेकिन आज अनेक इंजीनयर बेरोजगार घूम रहे हैं। इसलिये यदि छात्रों को प्रारम्भ में ही सूचना सेवा व्यवस्थित ढंग से सुलभ कराई जाये तथा उसका उचित उपयोग सिखाया जाये तो इस प्रकार की समस्याओं के उत्पन्न होने पर नियंत्रण लगाया जा सकता है।

रोजगार सूचना की आवश्यकता

जीविका जीवन की मेरूदण्ड है। यथार्थ तो यह है कि उचित रोजगार में स्थान प्राप्त कर लेने पर व्यक्ति को जीवनयापन का साधन ही प्राप्त नहीं होता लेकिन

उसे आत्म-संतुष्टि भी प्राप्ती होती है। उसमें आत्मबल का संचार होता है। यदि व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करके भी बेरोजगार रहेगा तो वह अपनी परिवार व समाज पर बोझ माना जायेगा, कोई उसकी इज्जत नहीं करेगा। इसके विपरीत जो युवक शिक्षा तथा उचित प्रशिक्षण प्राप्त कर किसी उचित रोजगार में लग जाता है। परिवार, कुटुम्ब तथा समाज में वह आदर का पात्र होता है। उचित रोजगार में संलग्न हो जाने पर उसके आगे का मार्ग भी प्रशस्त हो जाता है।

आज रोजमरा की संख्या पर दृष्टिपात करें तो यह लगभग 40000 है। इतनी बड़ी संख्या में रोजगारों को बिना व्यवस्थित प्रणाली को समझना एवं उनसे सम्बन्धित: तथ्यों को याद रखना कैरियर-निर्देशन के लिये एक दुष्कर कार्य है। डॉ. सुपर के अनुसार, "युवकों को निर्देशित करने के लिये निर्देशन को उन प्रमुख, क्षेत्रों का अवबोध होना आवश्यक है जिसके रोजगारों का वर्गीकरण करने के प्रयोग में लोता है तथा इस प्रकार व्यवसायों की अव्यवस्था को दूर कर उनको व्यवस्थित रूप प्रदान करता है। इस प्रकार मस्तिष्क में वर्गीकरण की रूप रेखा की उपस्थिति एवं युवक का अध्ययन उपबोधक को यह जानने में सहायक होता है कि युवक किस रोजगार में प्रवेश के अनुकूल है।"

रोजगार सूचना के स्रोत

रोजगार सम्बन्धी सूचना हम निजी, सार्वजनिक एवं रोजगार सूत्रों प्राप्त करते हैं। वैसे, जहाँ तक सम्भव हो, रोजगार सूचना मूल स्रोतों से ही प्राप्त की जाये, जिससे वह परम विश्वसनीय तथा प्राथमिक हो सके। रोजगार सूचना प्राप्त करने के स्रोत निम्नलिखित हैं -

1. **पत्र-पत्रिकाओं तथा समाचार-पत्रों द्वारा (Through Magazine And Newspaper)** – प्राय: अनेक शिक्षण संस्थान जीवन-चर्या पत्रिकाओं एवं प्रतियोगिता पत्रिकाओं का प्रकाशन करते हैं। वे इनके माध्यम से समय-समय पर रोजगार संबंधी जानकारी प्रदान करते रहते हैं। वैरने रोजगार सूचना प्रदान करने में सर्वाधिक योगदान स्थान दैनिक समाचार पत्रों का है, जिनमें भारत में प्रकाशित अंग्रेजी के समाचार पत्र 'दि हिन्दुस्तान टाइम्स' 'इण्डियन एक्सप्रेस', 'स्टेट्समैन, 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' एवं 'हिन्दू' आदि प्रमुख हैं। 'दैनिक जागरण' एवं 'अमर उजाला' अपने कैरियर दर्शन स्तम्भ के द्वारा इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं। कुछ विशिष्ट साप्ताहिक व पाक्षिक पत्रिकायें भी रोजगार सम्बन्धी समाचारों का प्रकाशन करती है।

2. **रोजगार विनिमय-केन्द्र एवं रोजगार ब्यूरो (Employment Exchange And Employment Bureaus)** – निर्देशन कम्रचारी जिला रोजगार विनिमय-केन्द्रों एवं रोजगार-ब्यूरो से रोजगार सम्बन्धी सूचनायें प्राप्त कर सकते हैं। अनेक निजी संस्थाओं तथा सरकार द्वारा नियुक्तियाँ इन रोजगार विनिमय-केन्द्रों के माध्यम से ही की जाती है। ये केन्द्र रोजगार सूचनाओं को इकट्ठा करने और प्रदान करने का कार्य भी करते हैं। भारत में प्रत्येक जिले में रोजगार विनिमय-केन्द्र होता है। विद्यालय इन केन्द्रों से रोजगार के विभिन्न अवसरों, उनमें उन्नति के अवसरों आदि की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

3. **औद्योगिक क्षेत्रों तथा कारखानों में भ्रमण के द्वारा (Visits of Industrial Places and Factorieis)** – रोजगार सूचनाओं को अधिक विश्वसनीय रूप से प्राप्त करने के लिये सूचनार्थियों को औद्योगिक क्षेत्रों तथा कारखानों में भ्रमण करना चाहिए। सूचना कार्य के व्यवहारिक पक्षों की दृष्टि से यह अधिक उपयोगी भी होती है।

4. **विभिन्न संस्थाओं द्वारा किये जाने वाले रोजगार सर्वेक्षण (Occupational Surveys Done By Various Agencies)** – समय-समय पर अनेक क्षेत्रीय, प्रादेशिक तथा संस्थायें रोजगार सर्वेक्षण का कार्य करती है। इन रोजगार सर्वेक्षणों द्वारा भी सूचनार्थियों को रोजगार सूचनाएँ उपलब्ध करायी जा सकती है।

5. **निजी संस्थान (Private Agencies)** – अनेक निजी संस्थान जो कैरियर निर्देशन अथवा व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने का कार्य करते हैं, उनसे भी रोजगार सम्बन्धी सूचना उपलब्ध हो सकती है।

6. **देश में प्रकाशित रोजगार सूचना (Occupational Information Published In the Country)** – देश में निजी एवं सार्वजनिक, दोनों ही क्षेत्रों में, अधिक से अधिक रोजगार सूचना सम्बन्धी साहित्य प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है। निम्नलिखित अभिकरण युवकों के रोजगार के लिये मुफ्त या विक्रय के आधार पर रोजगार सूचनाओं को प्रकाशित करने का कार्य करते हैं :-

   1. शिक्षा मंत्रालय
   2. श्रम एवं रोजगार मंत्रालय

NOTES

3. स्वास्थ्य मंत्रालय
4. रक्षा मंत्रालय
5. रोटरी क्लब
6. युवा ईसाई पुरूष संघ
7. समाचार पत्रों एवं जर्नलों के विज्ञापन

7. **रोजगार वर्गीकरण कोश एवं औद्योगिक सूचीपत्र** – अनेक विकसित देशों में रोजगार वर्गीकरण कोश तैयार किये हैं, रोजगार सूचना की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त उद्योगों एवं रोजगारों की जानकारी पर प्रकाशित होने वाली पुस्तकों तथा औद्योगिक सूची पत्रों से भी रोजगार सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने में सहायता ली जा सकती है।

समूह निर्देशन-अर्थ एवं परिभाषा

समूह निर्देशन, निर्देशन कार्यक्रम का ही एक भाग है। निर्देशन प्रक्रिया का महत्वपूर्ण उद्देश्य व्यक्तिगत रूप से किसी व्यक्ति को खुद निर्देशित करना, खुद का ज्ञन, करना तथा खुद का समान्यिकरण करना होता है। जिसका कुछ भाग सामूहिक संरचना में ही हासिल किया जा सकता है। समूह निर्देशन सामूहिक जीवन परिदृश्य में किसी निर्देशन कर्त्ता द्वारा एक समय पर विभिन्न विद्यार्थियों के समूहों को निर्देशित किया जाता है।

शैक्षिक तथा व्यवसायिक योजनाओं के चयन, क्रियान्वयन, एवं आयोजन और विकास से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों में सामूहिक वार्तालाप अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

"समूह निर्देशन से आशय ऐसे निदेर्शन से है जिसमें एक से अधिक व्यक्तियों का समूह, समूह के प्रत्येक व्यक्तियों की समस्याओं के समाधान के परिप्रेक्ष्य में निर्देशित होते हैं, विचार करते हैं"

समूह निर्देशन, निर्देशन का एक रूप है। जिसमें निर्देशनकर्ता एक से अधिक व्यक्ति जो एक ही उम्र समूह एवं समस्या के होते हैं, को निर्देशित करता है समूह निर्देशन कहलाता है। सामान्यतः निर्देशन की प्रारम्भिक अवस्था में जब एक से ज्यादा व्यक्तियों के समूह को किसी एक ही विषय पर निर्देशन दिया जाए तो उसे समूह निर्देशन कहा जाता है।

शैक्षिक जनसंख्या के बढ़ते दबाव को देखते हुए सामूहिक निर्देशन, निर्देशन के क्षेत्र में उभरता हुआ एक महत्वपूर्ण निर्देशन है। जिसके द्वारा मितव्ययिता रूप से अधिक से अधिक विद्यार्थियों को सामूहिक रूपों से आत्मनिर्देशन, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक रूप में प्रदान किया जाता है। निसन्देह सामूहिक निर्देशन व्यक्तिगत निर्देशन से महत्वपूर्ण है।

जब शैक्षिक व्यवसायिक तथा व्यक्तिगत निर्देशन के लिए एक अथवा एक से अधिक व्यक्तियों को किसी परिस्थिति विशेष में समूह के रूप में निर्धारित किया जाता है तो उसे समूह निर्देशन की संज्ञा दी जाती है। यह सामूहिक क्रियाओं के माध्यम से निर्देशन की प्रक्रिया कही जाती है।

समूह निर्देशन की परिभाषा

रॉवर हापोक के अनुसार- "सामूहिक निर्देशन वह कोई भी सामूहिक क्रिया हो जो कुछ निर्देशन कार्यक्रम को सुविधा देने अथवा सुधार करने के लिए सम्पन्न की जाती है।"

जेल वार्टस ने कहा है कि :- सामूहिक निर्देशन को साधारणतया इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि यह सामूहिक अनुभवों का व्यक्ति के उत्तम विकास में मदद देने एवं इच्छित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु चेतना पूर्ण प्रयोग है।

ए०जे० जोन्स (1951) निर्देशन किसी भी समूह का वह उधम अथवा क्रिया है जिसका प्राथमिक उद्देश्य समूह के प्रत्येक व्यक्ति की मदद करना ताकि वो अपनी समस्या का समाधान कर सके एवं प्रभावपूर्ण समायोजन कर सके। इसके अन्तर्गत समूह रचना दी जाती है जो व्यक्तिगत सूचना के विपरीत होती है। किन्तु यह सूचना व्यक्ति विशेष के लिए हो सकती है।

समूह परीक्षण व्यक्तिगत परीक्षण है ना कि किसी समूह का परीक्षण है। समूह निर्देशन सिर्फ न्यायोचित ही नहीं बल्कि अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

क्रो० एण्ड क्रो० समूह निर्देशन समूह परिस्थितियों में प्रयोग किया जाने वाले विचार हैं। जिसमें निर्देशन सेवा को विद्यालय समूह अथवा विद्यार्थियों के समूह पर किया जाता है।

लीस्टर डाउनिंग ने सामूहिक निर्देशन के सम्बन्ध में लिखा है- सामूहिक निर्देशन, निर्देशन सेवा का वह अंग है जो एक कुशल परामर्शदाता के निर्देशन

में नवयुवक को अन्यों के साथ विचार विनिमय तथा अनुभवों में आदान-प्रदान करता है जिनमें अन्तराभूति विकसित होती है। आत्मबोध की सुविधा मिलती है। परिपक्वता में वृद्धि होती है, कार्य करने के लिए तर्कसंगत निर्णय लिये जाते हैं। इसमें ऐसा वातावरण मिलता है जिसमें मनोचिकित्सा लाभ हासिल किए जाते हैं और सामाजिक कुशलता का विकास होता है। सामूहिक निर्देशन का अन्तिम लक्ष्य व्यक्तिगत विकास ही है उन्होंने यहाँ तक कहा है कि सामूहिक निर्देशन संगठित निर्देशन कार्यक्रम का ही एक अंग जिसमें क्रियाएँ शामिल की जाती है संगठित निर्देशन कार्यक्रम अनेक छात्रों का परस्पर मिलन होता है। इसमें सूचनाएँ हासिल करते हैं, विचारों का आदान-प्रदान होता है, भविष्य की योजना बनाते हैं और निर्णय लेते हैं।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि सामूहिक निर्देशन समूह वास्तव में व्यक्तियों के एकत्रितकरण को निर्देशित करता है जिसमें व्यक्ति आपसी प्रत्यक्षीकरण के आधार पर व्यक्तिगत विकास करते हैं। समूह निर्देशन जैसी क्रियाओं का अपने अन्दर समाहित करता है जो किसी समूह परिस्थिति में की जाएं और व्यक्तिगत रूप से सामूहिक परिस्थिति में व्यक्ति को निर्देशन किया जाए समूह किसी भी प्रकार का हो सकता है किन्तु निर्देशन का उद्देश्य समूह के प्रत्येक सदस्यों के लिए सामान्य होगा।

सामूहिक निर्देशन के उद्देश्य एवं महत्व

समूह निर्देशन क्रियाओं के सफल संचालन के लिए यह जरूरी है कि क्रियाओं के आयोजन के लिए ध्यानपूर्वक योजना तैयार की जाए जिसमें प्राथमिक रूप से समूह के प्रत्येक व्यक्ति को समूह निर्देशन के उद्देश्यों से अवगत कराया जाए और उद्देश्यों का निर्धारण किया जाए। सामान्यतः उद्देश्यों में समस्या या विद्यालय की अलग-अलग पृष्ठभूमि के कारण अन्तर होता है इसलिए उद्देश्यों में भिन्नता आ जाती है। समूह निर्देशन के कुछ प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं-

1. विद्यार्थियों को ऐसी सूचना प्रदान करना जिससे विद्यार्थी नवीन विद्यालय से परिचित हो सके।
2. विद्यार्थी विद्यालय के पाठ्यक्रम क्रियाएं, नियमों एवं विद्यालय के संस्कारों से परिचित हो सके।
3. ऐसी सूचनाएँ व सामग्री उपलब्ध कराना ताकि छात्र स्वयं व्यक्तिगत परामर्श के लिए आ सके।

NOTES

4. छात्रों को सामूहिक क्रियाओं में प्रभावपूर्ण भागीदारी करने में सहायता प्रदान करना।
5. छात्रों को ऐसे अवसर प्रदान करना ताकि समूह में प्राप्त साक्ष्यों तथा प्राप्त आलोचनाओं का स्वयं मूल्यांकन कर सके।
6. छात्रों को खुद समूह के सदस्य के रूप में विकसित करने के लिए मदद करना।
7. शिक्षकों को ऐसा व्यवहहार प्रदान करना जिसमें शिक्षक व्यक्तिगत परामर्श के लिए बहुत बड़ी मात्रा में सूचना एकत्रित कर सके।
8. ऐसे मनुष्यों के लिए सामूहिक चिकित्सा प्रदान करना जो बाहरी वातावरण में समायोजन स्थापित न कर सके।
9. वस्तुनिष्ठ आधार पर व्यक्तिगत मदद प्रदान करना जबकि समस्या का स्वरूप सामूहिक हो।
10. छात्रों को ऐसे अवसर प्रदान करना ताकि वे अपने व्यवहारों को समूह के मूल्यों के अनुकूल कर सके।
11. एक जैसी समस्याओं की पहचान में मदद करना।
12. समायोजन से सम्बन्धित समस्याओं के लिए लाभदायी सूचनाएं प्रदान करना।
13. व्यक्तिगत परामर्श की संरचना तैयार करना।
14. लोगों की सामान्य समस्याओं की पहचान और उसका विश्लेषण कर समस्या से सम्बन्धित सार्थक उपायों को खोजने में सहायता करना।
15. सूचनाओं को एकत्रित करना ताकि अपनी समस्या से सम्बन्धित उन समस्याओं में से समाधान खोज सके।
16. ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन करना जिसमें व्यक्ति एक समूह में हो तथा एक दूसरे से अन्तः क्रिया करके उसमें विचारों एवं अनुभवों से लाभ हासिल कर सके।
17. ऐसे वातावरण का निर्माण करना जो व्यक्तियों को अपने विचार व्यक्त करने के अवसर प्रदान कर सकें।

18. व्यक्तियों, विद्यार्थियों में आत्मविश्वास सामाजिक कुशलता में वृद्धि करने के उद्देश्य से सामूहिक क्रियाओं का आयोजन करना।

इसके अतिरिक्त ऑर्थर ई० ट्रैक्सलर ने सामूहिक निर्देशन के चार उद्देश्य बताएँ हैं -

1. **अभिविन्यास** - छात्रों को समाज के बदलते परिदृश्य तथा नवीन परिस्थिति एवं अनुभवों के ज्ञान कराने से है।
2. **सीखने के अनुभवों की व्यवस्था करना–** सामूहिक निर्देशन के द्वारा कुछ ऐसे अनुभव छात्रों को प्रदान किये जाते हैं जिससे उनकी अधिगम क्षमता में वृद्धि अच्छी आदतों का विकास नई परिस्थितियों को समझने की क्षमता विकसित हो।
3. **स्वयं निर्देशन के विचारों की उत्पत्ति–** सामूहिक निर्देशन की प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति निजी रूप से अपनी समस्याओं पर विचार करने लगता है जिससे उसके अन्दर खुद निर्देशन होने का दृष्टिकोण विकसित होने लगता है।
4. **समायोजन–** सामूहिक निर्देशन का एक उद्देश्य व्यक्ति में समायोजन से सम्बन्धित समस्याओं को हल करना सम्मिलित किया जाता है।

समूह निर्देशन का महत्व

1. रॉबर्ट एच. नाप ने समूह निर्देशन के महत्व को बताते हुए कहा है कि यदि सार्थक अभिवृद्धि तथा अनुभव बड़ी संख्या में बच्चों को प्रदान किया जाए तो बच्चों को किसी समूह विशेष में रखना पड़ेगा तथा बहुत कम समय में विद्यार्थियों के एक बड़े समूह को सूचना प्रदान कर दी जायेगी।
2. परामर्शदाता अपने विद्यार्थियों की सामान्य पृष्ठभूमि से सम्बन्धित जानकारी व उनकी समस्याओं को हासिल कर ले तो वो इस जानकारी से विद्यार्थियों के बहुत बड़े समूह पर सामान्यीकरण कर सकता है।
3. समूह निर्देशन विद्यार्थियों के अभिवृत्ति सुधार व व्यवहार में बदलाव लाने में सहायक होता है।
4. इसके द्वारा विद्यालय में नामांकित नये छात्रों को विद्यालय के कार्यक्रम, विद्यालय का इतिहास, परम्परा, नियमों तथा शैक्षणिक, सामाजिक तथा विद्यालय की पाठ्य सहगामी क्रियाओं से अवगत कराया जा सकता है।

5. समूह निर्देशन के विभिन्न प्रकार की नेतृत्वपूर्ण प्रशिक्षण देने में भी सहायक है।

6. बालकों के व्यक्तित्व के कुछ पक्ष ऐसे होते हैं। जिसको निरीक्षण अथवा जाँच समूह में लगाया जा सकता है। शिक्षक चाहे तो समूह निर्देशन की क्रियाओं का प्रयोग कर उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं का पता लगा सकता है।

7. व्यक्तिगत परामर्श के लिए समूह निर्देशन की प्रविधियों का प्रयोग करके पर्याप्त मात्रा में परामर्श दिया जा सकता है।

8. एक शिक्षक या परामर्श दाता समूह उपागम के माध्यम से अपने अधि कतम समय को बचा सकता है तथा व्यक्तिगत रूप से समस्या ग्रसित बालक पर अधिक ध्यान दे सकता है।

9. समूह निर्देशन विद्यार्थियों को अपनी समस्याओं एवं चिन्ताओं को व्यक्त करने और दबी हुई भावनाओं को सामूहिक परिस्थिति में स्वतन्त्र रूप से चर्चा करने में भी सहयोगी होता है।

समूह निर्देशन प्रक्रिया

समूह निर्देशन प्रक्रिया का आयोजन करने के लिए निर्देशनकर्त्ता ऐसे निर्देशन लेने वाले व्यक्तियों/छात्र का चयन करता है, जो सामान्यतः शैक्षिक, आयु एवं भौगोलिक परिदृश्य में भिन्न-भिन्न होते हैं परन्तु निर्देशन से सम्बन्धित समस्या सामान्य अथवा एक जैसी होती है। निर्देशनकर्त्ता सभी सदस्यों की विभिन्न आवश्यकताओं का विभिन्न उपकरणों द्वारा आकलन करते हुए समूह निर्देशन के लिए स्थान समय तथा समूह के आधार को निर्धारण करना तथा दिए जाने वाले निर्देशन विषय पर समूह के सभी सदस्यों को अवगत कराता है तथा निर्देशन परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में परिणामों का आकलन करता है।

समूह निर्देशन की समस्याएं एवं लाभ

समूह निर्देशन की निम्नलिखित समस्याएँ हैं –

1. गृह व विद्यालय के समायोजन से समस्या।

2. शैक्षिक योजना से सम्बन्धित समस्या।

NOTES

3. रोजगार से सम्बन्धित समस्या
4. आर्थिक तथा व्यवसायिक समस्या
5. पारिवारिक समस्या आकलन करता है।

समूह निर्देशन के लाभ

समूह निर्देशन की विभिन्न क्रियाओं का आयोजन तथा उपागमों के अध्ययन के उपरान्त निम्न लाभ हासिल होते हैं–

समूह निर्देशन के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. समूह निर्देशनकर्ता कुशलता के साथ तथा अत्यन्त कम समय में विद्यार्थियों को सूचना प्रदान करने एवं उनकी समस्याओं को पहचानने तथा विभिन्न कठिन समस्याओं से सम्बन्धित प्रति उत्तरों को ढूँढ़ने में सफल होता है।
2. समूह निर्देशन शिक्षक या परामर्श दाता को सामूहिक परिस्थिति में बालक के सामाजिक दृष्टिकोण एवं व्यवहारों को अध्ययन करने के लिए अवसर उपलब्ध कराता है।
3. विद्यार्थियों की एक सजैसी समस्याओं को किसी समूह विशेष के सम्मुख चर्चा करने व समस्या से सम्बन्धित उत्तर ढूँढ़ने में मदद करता है।
4. समूह निर्देशन में सभी विद्यार्थियों के समक्ष सुझाव रखे जाते हैं तथा समस्त विद्यार्थी उसे आसानी से स्वीकार करते हैं तथा अपने विचारों को रखते हैं।
5. समूह निर्देशन प्रक्रिया के दौरान सामान्य छात्र अन्य छात्रों से विभिन्न प्रकार के ज्ञान प्राप्त करते हैं।
6. समूह निर्देशन में एक जैसी समस्या पर सामूहिक उत्तर हासिल होते हैं।
7. समूह निर्देशन व्यक्तिगत परामर्श के लिए तैयार करता है।
8. समूह निर्देशन के द्वारा शिक्षक छात्रों की बहुत बड़ी संख्या से सम्पर्क बना सकता है।

9. निर्देशन का यह प्रकार मितव्ययी एवं सार्थक है।

10. विद्यार्थियों से सम्पर्क बनाने में मददगार है।

11. विद्यार्थियों को एक जैसी समस्या पर चर्चा करने के लिए अवसर प्रदान करता है।

12. यह विद्यार्थियों के अभिवृत्ति एवं व्यवहार में सुधार लाता है।

13. यह विद्यार्थियों में जागरूकता लाता है ताकि वे अपनी जरूरत को पहचान सके।

14. समूह निर्देशन में आपसी अन्तक्रिया के फलस्वरूप समूह के प्रत्येक सदस्य एक दूसरे से कुछ न कुछ सीखते रहते हैं।

15. समूह निर्देशन के द्वारा निर्देशनकर्ता साथ-साथ विद्यार्थी दोनों को ही समय के साथ प्रयास तथा धन की बचत होती है।

समूह निर्देशन के सिद्धांत

विषय का सार्थक होना

सबसे पहले जिस विषय या प्रकरण पर निर्देशन दिया जाना है उस पर यह विचार करना आवश्यक होता है कि जिस समूह के लिए निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है वह विषय समूह के सदस्यों की समस्याओं के अनुकूल है या नहीं। उदाहरण के लिए समूह का नेतृत्व करने वाला या सलाहकर्ता ने यह निर्णय लिया कि नवीन छात्रों के साथ 'शिष्टता' विषय पर चर्चा की जायेगी किन्तु यह विषय सभी के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण नहीं होगा और परिणाम भी अप्रत्याशित अथवा अभिप्रेरित करने वाला नहीं होगा तथा समूह के सदस्य भी विषय में रूचि नहीं लेंगे। तब निर्देशनकर्ता पुनः विषय को चर्चा के लिए प्रस्तुत करेगा, तो यह पायेगा कि सामान्य शिष्टता विषय पर चर्चा के कुछ सदस्य हैं जो रूचि लेते हैं तथा कुछ सदस्य रूचि नहीं लेते हैं।

इस तरह समूह निर्देशन की क्रिया तुरन्त असफल हो जायेगी। अतः निर्देशनकर्ता को ऐसे विषय का चयन करना चाहिए जिसको समूह के सदस्य आसानी से स्वीकार कर सकें।

सक्रिय सहभागिता आवश्यक है

छात्रों द्वारा प्रभावपूर्ण समूह निर्देशन के लिए सक्रिय सहभागिता जरूरी है। इसमें यह आवश्यक होता है कि निर्देशनकर्ता की प्रतिक्रियाओं का प्रति उत्तर छात्रों द्वारा दिया जाए। जिसको हासिल करना निर्देशनकर्ता के लिए कए कठिन कार्य है। समूह निर्देशन का द्वितीय सिद्धान्त सक्रिय सहभागिता, शिक्षकों के अनुसार निश्चित रूप से कठिन सिद्धान्त है। जिसका सफल होना समूह कार्य के लिए आवश्यक है। यदि समूह के समस्त सदस्यों के साथ अन्त:क्रिया प्रतीत न हो तो वास्तविक निर्देशन की प्रक्रिया प्रतीत नहीं होती है। हमें जो ज्ञान प्राप्त है इसी के अनुसार हम रहते हैं ना कि हमने क्या सुना, अथवा क्या चर्चा किया, दोनों ही महत्वपूर्ण नहीं है। किसी काम में सहभागिता की महत्ता इस प्रकार समझी जा सकती है कि जब विद्यार्थी परिषद सम्मेलन का आयोजन किया जाता है तब उस समय छात्रों की जो प्रतिक्रियायें होती हैं वे निर्णय लेने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

प्रयोजन की तैयारी

निर्देशन कर्ता अथवा आयोजन कर्ता के खुद के लिए यह आवश्यक होता है कि वह इस प्रकार तैयारी करे व योजना बनाये ताकि वह छात्रों में रूचि जागृत कर सके, और निर्देशन सामग्री का निर्माण कर सके। विद्यार्थियों का प्रयास आवश्यक है। समूह निर्देशन की क्रिया विद्यार्थियों के प्रयास के अभाव में न तो सार्थक हो सकती है और न ही उसका उनको कोई लाभ या सहायता हासिल हो सकती है। अत: समूह के निर्देशन कर्ता को समूह के सदस्यों के सम्मुख विषय पर चर्चा करना आवश्यक है।

समूहकार्य और व्यक्तिगत परामर्श संपूरक के रूप में

व्यक्तिगत परामर्श के लिए जरूरी नहीं है कि समूह कार्य का आयोजन किया जाए क्योंकि दोनों का अपना महत्वपूर्ण योगदान समूह निर्देशन में होता है।

इसके अलावा आर. ए. शर्मा ने समूह निर्देशन के छः सिद्धान्तों का बताया है-

1. समूह निर्देशन क प्रयोग परामर्श के अनुपूरक के रूप में होना चाहिए न कि प्रतिस्थापन के रूप में।

2. जैसे भी सम्भव हो परामर्श दाता को समूह के सभी सदस्यों को इस प्रकार प्रोत्साहित करना चाहिए कि प्रत्येक सदस्या व्यक्तिगत परामर्श के लिए अभिप्रेरित हो सके।
3. विभिन्न पक्षों में समूह के सदस्यों का चुनाव इस प्रकार करना चाहिए ताकि समजातीय समूह का निर्माण हो सके।
4. विद्यार्थियों के परिचय के लिए परियोजना का संचालन जरूरी है।
5. समूह निर्देशन के लिए नियुक्त व्यक्ति को समूह निर्देशन की तकनीकियों से पूरी तरह परिचित होना चाहिए।
6. समूह निर्देशन का प्रयोग पूरक निर्देशन के रूप में करना चाहिए ताकि परामर्श प्रतिस्थापन के रूप में स्वीकार किया जा सके।

जैसा सम्भव हो निर्देशनकर्त्ता को यह चाहिए कि समूह के प्रत्येक सदस्यों को व्यक्तिगत निर्देशन के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। विजक रूप में समूह निर्देशन की परियोजना से विद्यार्थियों को अवगत करना चाहिए। समूह निर्देशन देने वाला व्यक्ति समूह निर्देशन की प्रक्रिया से पूरी तरह परिचित होना चाहिए।

समूह निर्देशन के आवश्यक तत्व

1. परामर्श दाता का छात्रों के साथ उचित सम्बन्ध होना चाहिए।
2. परामर्श दाता छात्रों को स्वीकार करने वाला होना चाहिए।
3. परामर्शदाता समूह के विचारों ध्यानपूर्वक सुनने वाला होना चाहिए।
4. परामर्श दाता का दृष्टिकोण समस्या के प्रति सकारात्मक होना।
5. प्रभावपूर्ण समापन प्रक्रिया।

समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन

आधुनिक समूह निर्देशन कार्यक्रम में इस बात पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है कि समूह के प्रत्येक सदस्य अपने व्यक्तिगत स्तर पर व्यक्तिगत एवं सामाजिक सम्बन्धों के लिए महत्वपूर्ण है। तथा वे अपनी रूचि अभिक्षमता, योग्यता अनुभव, आवश्यकता के अनुकूल सीखने के लिए सक्षम है। जिसके

कारण समूह निर्देशन की क्रियाओं के आयोजन के लिए एक प्रारूप विकसित करना मुश्किल है और क्रियाओं का आयोजन विद्यालय की परिस्थिति, संगठन नामांकन की संख्या, वित्तीय स्थिति प्रतिछात्रों पर कार्य की स्थिति व शिक्षक प्रशासक भी समूह निर्देशन आदि कारकों पर निर्भर करती है एवं समूह निर्देशन के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक सफल कार्यक्रम तब कहा जायेगा जब प्रारम्भ से लेकर अन्त: तक की क्रियाओं का सफल आयोजन हो सके। मूल रूप से समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन शैक्षिक स्तरों के विभिन्न प्रकार एवं विभिन्न समूह के अनुसार किया जाता है।

स्तरानुसार समूह निर्देशन क्रियाओं का आयोजन निम्न प्रकार है-

1. प्राथमिक स्तर पर समूह निर्देशन क्रियाओं का आयोजन।
2. माध्यमिक स्तर पर समूह निर्देशन क्रियाओं का आयोजन।
3. विभिन्न समूहों के आधार पर निर्देशन क्रियाओं का आयोजन।
4. वैकल्पिक रूप से समूह का निर्माण तथा निर्देशन क्रियाओं का आयोजन।

प्राथमिक स्तर पर सामूहिक निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन

प्राथमिक स्तर पर सामूहिक निर्देशन की क्रियाओं के आयोजन के मुख्यत: दो उद्देश्य होते हैं-

1. प्राथमिक स्तर पर विद्यालय का यह प्रमुख काम है कि वह प्रत्येक छात्र से सम्बन्धित उसकी समस्त सूचनाओं को एकत्रित करे ताकि सिर्फ वह स्वयं ही नहीं बल्कि सम्बन्धित विद्यालय के शिक्षक, परामर्शदाता साथ ही साथ माध्यमिक स्तर के परामर्श दाता भी इससे लाभ हासिल कर सकें।

2. प्राथमिक विद्यालयों का यह द्वितीय महत्वपूर्ण दायित्व है कि वह विद्यार्थियों को अधिकतम व्यक्तिगत एवं सामाजिक समायोजन प्राप्त करने के लिए वातावरण उपलब्ध करा सकें।

प्राथमिक स्तर पर निर्देशन क्रियाओं का आयोजन करने के लिए ध्यान देने वाली सावधानियां

1. विद्यालय में छात्रों को नामकन से पूर्व एवं पश्चात् अनुस्थापन कार्यक्रम का आयोजन करना चाहिए। जिसमें विद्यालय में किसी प्रकार की क्रियाओं का आयोजन किया जाना, विद्यालय का वार्षिक कार्यक्रम क्या है इत्यादि बातों का लेख होता है।

2. मुख्य रूप से विद्यालय के परामर्शदाता के असफल होने में सूचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है। क्योंकि किसी भी व्यक्ति के बारे में यदि प्राप्त सूचनाएं अपर्याप्त हैं तो उचित निर्देशन नहीं हो सकता। इसलिए क्रियाओं के आयोजन से पूर्व विद्यालय में उपस्थित समस्त दस्तावेज, जो संचयी हो को सुरक्षित एवं संजोकर रखना चाहिए।

3. विद्यालय में एक निर्देशन तथा परामर्श प्रकोष्ठ की स्थापना की जानी चाहिए जो शिक्षकों को विद्यार्थियों से सम्बन्धित समस्त दस्तावेजों को उपलब्ध करा सके और जांच सूची या चेक लिस्ट का निर्माण भी करे।

4. छात्रों की व्यक्तिगत दस्तावेज में उनकी मानसिक विकास एवं अभिवृद्धि का मापन, लम्बाई तथा वजन आदि विकासात्मक विशेषताओं का भी अभिलेख रखना चाहिए।

माध्यमिक स्तर पर निर्देशन क्रियाओं का आयोजन

माध्यमिक स्तर पर अधिकतम सामूहिक निर्देशन क्रियाओं का आयोजन कक्षा में ही विभिन्न क्रियाओं के द्वारा शिक्षकों द्वारा कराया जाता है। यदि शिक्षकों द्वारा अनुस्थापन कार्यक्रम का आयोजन सफलतापूर्वक किया गया हो तो माध्यमिक स्तर में शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों के आत्मप्रत्य के विकास तथा उनके सकारात्मक पक्ष एवं नकारात्मक पक्ष को पहचानने में अपना योगदान दे सकते हैं। सामान्यतः माध्यमिक स्तर पर निर्देशन क्रियाओं के आयोजन का कार्य प्राथमिक स्तर से ही प्रारम्भ हो जाता है। जिसमें विद्यालय प्रबन्ध का यह दायित्व होता है कि वो छात्रों के विकासात्मक अभिलेखों व सूचनाओं को संग्रहित करे तथा विद्यार्थियों को अवगत कराये जिससे विद्यार्थी अपना व्यक्तित्व एवं सामाजिक समायोजन अच्छी तरह कर सके।

- इसके अन्तर्गत विद्यालयों में निर्देशन प्रकोष्ठ की स्थापना की जाती है जिसका मुख्य कार्य शिक्षकों, विद्यार्थियों पाठ्यक्रम, सहपाठयक्रम, पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ, तथा सामान्य निर्देशन कार्यक्रम के मध्य एक आदर्श लोकतान्त्रिक सम्बन्ध स्थापित करना।

NOTES

- इसके अन्तर्गत निर्देशन इकाई को संस्थागत पाठ्यक्रम में रखा जाना चाहिए तथा निर्देशन से सम्बन्धित विभिन्न विषय वस्तु को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना चाहिए।
- सामान्य निर्देशन पाठ्यक्रम को छात्र केन्द्रित, व्यापक तथा लोचपूर्ण बनाना चाहिए।
- छात्रों को समुदाय व समूह आधारित कार्यक्रमों में सहभागिता बढ़ाने पर बल देना चाहिए।
- छात्रों को अच्छे सार्वजनिक सम्बन्धों के लिए अवसर उपलब्ध कराना चाहिए।

समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन मूल रूप से निम्न बिन्दुओं को सम्मिलित करता है-

1. आवश्यकताओं का आंकलन करना- किसी समूह की सामान्य समस्याओं को जानने के लिए उस समूह से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं का आकलन आवश्यक होता है। जिसकी विभिन्न प्रकार के परीक्षण उपकरणों द्वारा जैसे प्रश्नावली, साक्षात्कार, निरीक्षण, का प्रशासन कर जरूरतों का आकलन किया जा सकता है।
2. समूह निर्देशन का स्थान समय, एवं समूह के आकार का निर्धारण-समूह निर्देशन के लिए यह जरूरी होता है। समूह की क्रियाओं के आधार का आकार निश्चित किया जाए और निर्देशन के लिए उचित समय एवं स्थान पर भी चर्चा की जाए।
3. सदस्यों का चुनाव एवं विशिष्टकरण-समूह-निर्देशन के लिए सहगामी सदस्यों का चयन बहुत ही महत्वपूर्ण होता है और सदस्यों को अपने दायित्व एवं कार्यों से परिचित भी होना जरूरी होता है।
4. सदस्यों का अभिविन्यास- समूह के लक्ष्य का सभी सदस्यों का पता होना तथा उद्देश्यों का मापनीय दृष्टिकोण से स्पष्ट होना भी जरूरी है।
5. क्रियाओं का नियोजन एवं प्राप्त किये गये परिणामों का मूल्यांकन- यदि क्रियाओं का आयोजन उद्देश्यों के अनुरूप करना है तो उसका नियोजन लक्ष्यों के परिप्रेक्ष्यों में जरूरी है।

निष्कर्ष

समूह निर्देशन क्रियाओं को शत प्रतिशत सफल बनाने के लिए विद्यालय एवं समुदाय से सम्पर्क जरूरी है क्योंकि बालक का विकास एवं उसकी अभिवृत्तियों का निर्माण विद्यालय एवं विद्यालय के बाहर भी होता है। या यूँ कहें कि बालक का विकास सम्पूर्ण वातावरण की आपसी अन्तःक्रियाओं का परिणाम होता है तथा वातावरण में विद्यालय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। छात्रों के व्यक्तिगत व्यवहार, निर्देशन कार्यक्रम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

समूह निर्देशन क्रियाएं निदानात्मकता की अपेक्षा निरोधक होती है। जो किसी न किसी रूप में निर्देशन कार्यक्रम को प्रभावित करती हैं। समूह निर्देशन यह कोशिश करता है कि युवाओं को इस प्रकार तैयार किया जाए कि आने वाली समस्या का समाधान कर सके। इसके लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की सूचनाएं उपलब्ध कराई जा सकती है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि सिर्फ समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन कर निर्देशन के सम्पूर्ण कार्यक्रम को सफल नहीं बनाया जा सकता।

निर्देशन की प्रविधि या तकनीकी

समूह निर्देशन कर्ता के माध्यम से समूह निर्देशन के लिए विभिन्न प्रकार की तकनीकी का प्रयोग किया जाता है। यह प्रविधि समूह की प्रकृति के आधार पर परिवर्तित होती रहती है। उचित प्रविधि का चयन करने के लिए शिक्षक के छात्रों की रूचि से परिचित होना चाहिए और उसे प्रविधि में विद्यार्थियों की रुचि भी होनी चाहिए। कुछ महत्वपूर्ण व प्रभाव पूर्ण समूह निर्देशन की क्रियाओं का वर्णन इस प्रकार है-

प्रविधियों के प्रयोग से पहले निम्न क्रियाओं का आयोजन जरूरी है-

1. प्रथम समूह की बैठक

   कौशल युक्त समूह निर्देशन कर्ता समूह के लिए प्राथमिक बैठक को बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं, तथा उनका कहना है कि समूह निर्देशन कर्ता को बहुत शीघ्र समूह की प्रथम बैठक करानी चाहिए जो निश्चित योजना के अर्न्तगत हो तथा इस योग्य हो कि विद्यार्थी की रूचि का पता लगा सके तथा समूह निर्देशन के लिए सदस्य ऐच्छिक रूप से सम्मिलित हो

NOTES

सके सदस्यों की प्रथम बैठक सम्पर्क स्थापित करने के लिए भी उचित माना जाती है।

2. समूह नेतृत्वकर्ता की प्रक्रिया

अनुभव समूह परामर्श कर्ता समूह की प्रक्रियाओं का हमेशा अभ्यास करते रहते हैं ताकि उचित समय पर समूह का नेतृत्व किया जा सके। यह एक महत्वपूर्ण काम होता है कि समूह के युवा सदस्यों को समूहक के अनुकूल नियन्त्रित किया जा सके इसके लिए समूह निर्देशन अत्यन्त जरूरी हो जाता है।

प्रो. फिटज ने समूह निर्देशन आयोजन कर्ता एवं संगठनों की समूह निर्देशन प्रक्रिया के दौरान होने वाली त्रुटि को ध्यान में रखते हुए निम्न सुझाव दिये–

- समूह के सदस्यों पर अधिकतर मानसिक दबाव न दें।
- संक्षिप्त सुरक्षा प्रदान करना जरूरी।
- अत्यधिक एवं न्यूनतम समूह व्यवहार के मानकों का निर्धारण करना।
- अत्यधिक संगठनात्मक
- समूह संगठन का निर्माण
- शोध समिति का गठन जिसके माध्यम से उपयोगी सूचनाओं को एकत्रित किया जा सके।
- प्राप्त सुझावों को लागू करना।
- समूह के कार्यशील सदस्यों का निर्माण
- समितियों का गठन
- समितियों का प्रभावपूर्ण उपयोग
- चर्चा करने वाले सदस्यों का प्रशिक्षण
- चर्चा के लिए विषय का चयन अग्रिम होना चाहिए ताकि चर्चा की नेतृत्व करने वाला पूर्णत तैयार हो।
- यदि सम्भव हो तो सभी सदस्यों की सहभागिता सुनिश्चित होनी चाहिए।

NOTES

- जिस बिन्दु पर चर्चा हो रही है उस समय पर समूह की परख होना जरूरी है।
- समूह के विचारों को आगे की ओर ले जाना चाहिए।
- संक्षिप्त कथन प्रस्तुत होना चाहिए न कि भाषण।
- हवा में की जाने वाली चर्चा नहीं होनी चाहिए।
- विचारों में भिन्नता की पहचान होनी चाहिए।
- बैठक समाप्ति से पूर्व चर्चाओं का सामान्यीकरण किया जाना चाहिए।
- समूह चर्चा के लिए तैयारी होनी चाहिए।
- समूह में सदस्यों को प्रश्न पूछने के लिए उत्साहित करना चाहिए।
- मुद्रित सामग्री के प्रयोग में कुलशता होनी चाहिए।

समूह निर्देशन की प्रविधि के रूप में भिन्न-भिन्न प्रकार के तकनीकों का प्रयोग किया गया है-

i. सभा का आयोजन

ii. कैरियर सम्मेलन

iii. श्रव्य-दृश्य सामग्री

iv. सामूहिक क्रियाएं

v. निर्देशन की नैदानिक विधि

vi. समूह प्रतिवेदन

vii. समूह विचार विमर्श

viii. समस्या समाधान

ix. व्याख्या समाधान

x. औपचारिक विचार-विमर्श

xi. व्याख्यान

xii. प्रश्नावली

xiii. सम्मेलन

xiv. नाटक का आयोजन

xv. व्यवसायिक सूचनाएं

xvi. चिकित्सीय परामर्श

1. सभा का आयोजन

सार्थक रूप से समूह निर्देशन के लिए सभाओं का आयोजन को प्रविधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। जिसके लिए निम्न क्रियाओं का आयोजन करना पड़ता है-

सभा के उद्देश्य- सभा के उद्देश्यों को समझे बिना, परामर्श दाता सभा के आयोजन का प्रभावपूर्ण प्रयोग, निर्देशन कार्यक्रम के लिए नहीं कर सकता। सामान्यत: निम्न उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में सभा का आयोजन किया जाता है -

i. छात्र अथवा व्यक्ति समूह के दूसरे सदस्यों की क्रियाओं की रूचि ले सके।

ii. अच्छी आदतों के विकास के लिए।

iii. अच्छे नेतृत्व कर्ता के विकास के लिए।

iv. सार्वजनिक रूप से बौद्धिक विचारों के विकास के लिए।

v. एक साथ पाठ्य सहगामी क्रियाओं से सम्बन्धित सूचना प्रदान करने के लिए।

vi. विद्यालय के सभी कार्यों में रूचि पैदा करने के लिए।

vii. समूह निर्देशन के अन्तर्गत महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा के लिए।

viii. नाटक के रूप में विद्यालय के संस्कारों एवं विचारों को प्रकाश में लाने के लिए।

ix. स्कूलों में समस्याओं के समाधान के लिए।

x. कक्षा में प्रोत्साहन देने के लिए।

सावधानी के साथ सभा के आयोजन की जरूरत

यदि शिक्षक या परामर्श दाता विद्यालय में विभिन्न प्रकार की सभाओं का आयोजन सफलतापूर्वक करना चाहता है तो उसे निश्चित रूप से आयोजन से पहले योजना बनानी होगी जिसमें निम्न बातों का ध्यान रखना होगा-

1. सभा का आयोजन पहले निर्धारित समय के अनुसार होना चाहिए।
2. प्रत्येक सदस्यों को यह पता होना चाहिए कि सभा का आयोजन किस लिए किया जा रहा है।
3. कार्यक्रम समयानुसार तैयार होना चाहिए।
4. कार्यक्रम शैक्षिक रूप से सार्थक होना चाहिए।
5. कार्यक्रम में कोई अवरोध नहीं होना चाहिए।
6. समस्त स्तर की सामग्री उचित स्थान पर होना चाहिए।

समूह निर्देशन की प्रविधि एक शिक्षक से दूसरे शिक्षक के लिए भिन्न-भिन्न होती रहती है तथा उस शिक्षक के भी प्रविधियों में अन्तर होता है। जब वो विभिन्न समूहों को निर्देशित करता है।

समूह निर्देशन तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक निर्देशनकर्ता शिक्षक प्रभावपूर्ण रूप से समूह में सहभागिता न करे। सार्थक सहभागिता असम्भव है। अगर समूह में सदस्य की कोई अपनी भूमिका नहीं है। समूह निर्देशन कर्ता को समूह चर्चा, सभाओं का आयोजन, सामाजिक क्रियाओं के लिए इससे सम्बन्धित कौशलों में प्रशिक्षित होना जरूरी है।

2. कैरियर सम्मेलन

कैरियर सम्मेलन प्रविधि परामर्श दाता द्वारा किसी समूह को सूचना देने की महत्वपूर्ण प्रविधि के रूप में प्रयोग की जाती है। इस प्रकार के सम्मेलनों में अधिकतर मात्रा में सफल व्यक्तियों द्वारा विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाओं की व्याख्या, व प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है।

इस प्रकार के सम्मेलनों की अवधि न्यूनतम एक दिन या इससे अधिक होती है। परामर्श दाता द्वारा विद्यालय के शिक्षक एवं विद्यार्थी दोनों से मदद प्राप्त कर इस सम्मेलन के आयोजन के लिए तैयारी करता है।

NOTES

सम्मेलन का आयोजन

सम्मेलन के आयोजन में परामर्श के लिए रखे गये विषय या समस्या के अनुकूल विषय विशेष वक्ता का चयन किया जाता है। जिसके द्वारा विद्यार्थियों के किसी भी प्रकार के विषय से सम्बन्धित सन्देह को स्पष्ट शब्दों में दूर करने व समझाने की कोशिश करता है जो वर्तमान परिप्रेक्ष्य के बिल्कुल अनुकूल हो इसके अतिरिक्त व्यवसाय आधारित फिल्मों, प्रदर्शनियाँ का आयोजन भी मध्य में होता रहता है।

सम्मेलन के आयोजन में ध्यान रखने वाली सावधानियां

सम्मेलन में समय का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। विषय की महत्ता के अनुकूल समय का आवंटन आवश्यक है। इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए।

- चर्चा के लिए विषय के चयन में भी विशेष ध्यान रखना होता है। इसमें इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि जिस कार्य के लिए या जिस विषय पर सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है उस विषय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, कार्यों के प्रकार सम्मेलन के लिए आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता, इत्यादि पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
- यदि जरूरी हो तो आयोजनकर्ताओं के लिए विशेष प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की जानी चाहिए।
- जरूरत के अनुसार पेशेवर व्यक्तियों, कर्मचारियों को आमन्त्रित करना चाहिए।
- सूचना के लिए विभिन्न माध्यमों के प्रयोग की कुशलता पर भी ध्यान देना जरूरी होता है।

कैरियर सम्मेलन से लाभ

- इस प्रकार के सम्मेलन से विद्यालय समुदाय शिक्षक विद्यार्थी सबके मध्य प्रत्यक्ष अन्त:क्रिया होती है जिससे सभी लाभान्वित होते हैं एवं समस्या व उसके निदानों से अवगत होते हैं।
- विद्यार्थियों को विभिन्न व्यवसायिक समस्याओं पर विशेषज्ञों की राय जानने एवं सुनने का अवसर मिलता है।

- माता-पिता अपने बच्चे के भविष्य के लिए उचित परामर्श लेने के लिए जागरूक हो जाते हैं।
- विद्यार्थियों के अन्तर्गत अभिप्रेरणा का भाव जागृत होता है।
- विभिन्न प्रकार के निर्देशन के लिए गठित अभिकरण अपने उद्देश्यों व दायित्वों के प्रति जागरूक होते हैं।

3. श्रव्य-दृश्य सामग्री

निर्देशन की इस प्रविधि के अन्तर्गत छात्रों को सूचना प्रदान करने के लिए चलचित्र, फिल्म स्ट्रिप, फोटोग्राफ, टेप, रिकॉर्डर तथा पोस्टर का प्रयोग कर उन्हें शैक्षिक व व्यावसायिक सूचनाएं प्रदान की जा सकती है। सम्मेलनों द्वारा यह सुझाव प्राप्त होता है कि शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के लिए श्रव्यदृश्य सामग्री का प्रदर्शन किया जा सकता है जिससे छात्रों में इन सामग्री को देखकर दिखाये गए चित्रों पर विशेषण करने, विचार करने की भावना जागृत होती है। जिससे छात्र स्वयं निर्देशित हो सकते हैं।

श्रव्यदृश्य सामग्री के लाभ

- श्रव्य-दृश्य सामग्री के माध्यम से विभिन्न परिस्थितियों में वास्तविक सूचनाएं प्रदान की जा सकती है।
- अन्य प्रक्रियाओं की अपेक्षा यह प्रविधि सूचना प्रदान करने के लिए सरल मानी जाती है।
- चलचित्रों के द्वारा छात्रों के विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों को इकट्ठी कर सक्रिय सूचना प्रदान की जाती है।
- इसके द्वारा छात्रों के समय की बचत व उनकी रूचि में वृद्धि की जाती है।
- छात्रों में वैज्ञानिक प्रवृति का विकास होता है।

4. सामूहिक क्रियाएँ

शैक्षिक व व्यावसायिक सम्मेलनों द्वारा सामूहिक निर्देशन के लिए निम्न क्रियाओं के आयोजन का सुझाव दिया गया जिसका उद्देश्य भी सामूहिक निर्देशन देना होता है।

NOTES

जैसे संगीत समूह, आर्ट क्लब, व्यवसाय, बाह्य खेल, वैज्ञानिक समाज, विद्यालय के प्रकाशन इत्यादि क्रियाओं का आयोजन कर निर्देशन की प्रविधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

5. निर्देशन की नैदानिक विधि

इस विधि के अंतर्गत निर्देशन की प्रक्रिया को ज्यादा व्यापक रूप से लिया जाता है जिसमें विभिन्न प्रकार के आँकड़ों की सविस्तार व्याख्या के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

इस विधि में साथी समूह के दोस्तों, अभिभावक एवं शिक्षकों के विचारों को महत्व देते हुए आलोचनात्मक तर्क दिए जाते हैं। प्राप्त आँकड़ों के छटनीकरण की प्रक्रिया में वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है। जिससे आँकड़ों को अधिकतम सार्थक व वैध ठहराया जा सके इसके व्याख्या के लिए सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है।

नैदानिक निर्देशन विधि के महत्वपूर्ण चरण

i. **आंकड़ों का संग्रह–** आंकड़ों का संग्रह के अन्तर्गत निम्न बातों के संग्रह पर विशेष ध्यान दिया जाता है। मनुष्य में अभिक्षमता, अभिवृद्धि, व्यक्तित्व के शील गुण इत्यादि।

ii. **आंकड़ों का विश्लेषण–** विश्लेषण के लिए ऐसे आँकड़ों का चुनाव किया जाता है जो समस्या के समझने एवं व्याख्या करने के लिए सहयोगी हो।

iii. **आंकड़ों का संश्लेषण–** आंकड़ों का इस प्रकार संयोजन किया जाता है कि आंकड़ों की प्रकृति के आधार पर मनुष्य की समस्या का पता लगाया जा सके।

iv. **निदान–** आँकड़ों की प्रकृति व व्यक्ति की शैक्षिक और व्यवसायिक संरचना द्वारा व्यक्ति की समस्याओं का निदान किया जाता है।

v. **सलाह–** इसके अन्तर्गत परामर्श लेने वाले को अभिप्रेरित तथा समस्या के परिप्रेक्ष्य में उचित सलाह दी जाती है।

vi. **जांच करना–** दिये गये उपचारों की जांच पड़ताल की जाती है।

vii. मूल्यांकन– यह परामर्श का अन्तिम चरण हाता है, तो जाँच से सम्बन्धित होता है।

NOTES

6. समूह विचार विमर्श

ऐसी प्रविधि में किसी समस्या के परिप्रेक्ष्य में सदस्यों के माध्यम से आपस में विचार विमर्श करके उचित समाधान खोजने का प्रयास किया जाता है। जैसे माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों को विभिन्न करियर के विषय में जानकारी होती है। किसी विषय पर समूह विचार विमर्श का आयोजन किया जा सकता है जिसमें समूह के सदस्य बिना किसी झिझक एवं भय के विषय पर चर्चा कर सके।

7. समस्या का समाधान

व्यक्तिगत परेशानियों के समाधान के साथ-साथ सामान्य समस्या का समाधान करने के लिए समस्या समाधान विधि का प्रयोग निम्न चरणों में किया जा सकता है –

- समस्या की उत्पत्ति, समस्या की व्याख्या पर प्रकाश।
- सार्थक तथ्यों के आधार पर समस्या समाधान के लिए कार्यविधि करना।
- एकत्रिक आँकड़ों के सन्दर्भ में समस्या का विश्लेषण करना।
- सम्भावित उत्तरों की सूची तैयार करना एवं उनका मूल्यांकन करना।
- समूह में जवाबों की स्वकारिता की स्थिति जानना।

8. अभिनय

छोटे समूह में अभिनय का प्रयोग निर्देशन की तकनीकी के रूप में किया जा सकता अभिनय प्रविधि एक विधि होती है। जिसके द्वारा वास्तविक जीवन में अभिनय कर किसी विचार में परिवर्तन लाया जा सकता है। इसके लिए समूह के समस्त सदस्यों का अभिनय एवं समस्या से अवगत होना आवश्यक है। इसके बाद अभिनय का आंबटन एवं सदस्यों को तैयार करना तथा निष्कर्ष व पृष्ठपोषण का आयोजन करना।

NOTES

9. समूह प्रतिवेदन

समूह प्रतिवेदन को समूह निर्देशन की प्रविधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए किसी बड़े समूह के सदस्यों को दो छोटे-छोटे सदस्यों के समूहों में विभक्त कर प्रत्येक समूह के सदस्यों को मदद करते हुए प्रतिवेदन से सम्बन्धित उत्तर तैयार करने को कहा जाए उसके पश्चात् प्राप्त प्रतिवेदन को किसी बड़े समूह के निर्देशन के लिए प्रयोग किया जाए।

10. औपचारिक विचार विमर्श

औपचारिक विचार विमर्श निर्देशन के क्षेत्र में योग्य प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा समूह की समस्या पर किया जा सकता है। यह विमर्श वांछित उद्देश्यों पर केन्द्रित होता है जिसके द्वारा समूह के सभी व्यक्तियों पर लाभ पहुँचता है।

यह समूह निर्देशन की एक अन्य तकनीकी है जिसमें निश्चित विषय पर रोचक रूप से निर्देशन दिया जा सकता है जैसे साक्षात्कार में कैसे प्रवेश किया जाए? परीक्षा की तैयारी कैसे की जाए? आदि बातों के लिए छात्रों को निर्देशन दिया जा सकता है।

नेतृत्व : अर्थ तथा प्रकृति

नेतृत्व एक मूल्य-परक अवधारणा है। परम्परागत अवधारणा के अनुसार नेतृत्व एक व्यक्तिगत योग्यता है। नेता आलौकिक शक्तियों द्वारा बनते थे जिनमें मानव-मस्तिष्क को पढ़ने की योग्यता होती थी। वर्तमान समय में नेतृत्व को एक व्यक्तिगत योग्यता के रूप में देखा जाता है। वर्तमान परिभाषाओं में नेतृत्व को एक समाज-प्रभावित प्रक्रिया माना गया है। नेतृत्व, किसी दी हुई परिस्थिति में निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति हेतु समूह-क्रियाओं को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया है। यह प्रबंधक की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह अपने सहयोगियों को पूर्ण उत्साह तथा आत्म-विश्वास के साथ कार्य करने को प्रेरित करता है। संक्षेप में, नेतृत्व समूह उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तियों की क्रियाओं को प्रभावित करने वाली क्रिया है। नेतृत्व वह प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत नेता अपने सहयोगियों को एक निश्चित ढंग से कार्य करने का आदेश देता है। समूह के सदस्यों को सहयोगपूर्ण ढंग से कार्य करने हेतु दिशा निर्देश देता है। यह एक अन्तर्व्यक्तिक सम्बन्ध है, जिसमें दूसरे

व्यक्ति नेता के आदेशों को मानते हैं क्योंकि वे उन्हें मानना चाहते हैं न कि उनके ऊपर मानने का दबाव डाला जाता है। एक नेता का कार्य ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करना होगा है जिसमें समूह प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य कर सके। एक अच्छा नेता वही होता है जो ऐसा समूह तैयार करे जो विभिन्न परिणाम दे सके। नेता का यह गुण सामाजिक समस्या समाधान का जटिल रूप प्रदर्शित करता है। सामान्यतया नेतृत्व तथा प्रबंधन दोनों एक-दूसरे से जुड़ा माना जाता है। यह दोनों आपस में जुड़े तो होते हैं, किन्तु प्रबंधन में जहाँ कुशलता, नियोजन, कागजी-कार्य, प्रणाली, नियामक, नियंत्रण तथा संगतता का गुण मौजूद होता है, वहीं नेतृत्व गत्यात्मकता जोखिम लेना, सृजनात्मकता, परिवर्तन, दूरदर्शिता आदि गुणों से जुड़ा रहता है। प्रबंधक जहाँ प्रशासक, नियामक, नियंत्रक, अल्पकालीन विचारों वाला होता है, वही नेता सृजनात्मक, प्रेरणादायी, नवाचारी एवं दीर्घकालीन विचारों वाला होता है। प्रबंधक एवं नेता दोनों ही आपस में जुड़े रहते हैं, किन्तु उनके कार्यों में भिन्नता पायी जाती है।

नेतृत्व : अर्थ, परिभाषाएँ :

नेतृत्व समूह या संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सदस्यों को प्रभावित करने की योग्यता है। नेतृत्व, मुख्य रूप से व्यवहार को प्रभावित करने वाली सतत् प्रक्रिया है। एक नेता समूह में ही साँस लेता है तथा समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रेरणा प्रदान करता है। यह गुण कुछ करने को दर्शाता है न कि पहले से मौजूद गुण को। नेतृत्व को समझने के लिए निम्नलिखित परिभाषाओं का अध्ययन आवश्यक है –

“नेतृत्व एक ऐसी क्रिया है जो व्यक्तियों को इस प्रकार प्रभावित करे कि वे अपनी इच्छा से सामूहिक उद्देश्यों के लिए प्रयास करें।” (जॉर्ज आर० टैरी, 1954)

"Leadership is an activity of influencing people to strive willingly for group objectives." *George R. Terry, 1954*

“नेतृत्व एक परिस्थिति में प्रयुक्त किया गया तथा विशिष्ट लक्ष्य लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर निर्देशित पारस्परिक प्रभाव है।” (रॉबर्ट टैनेनबाम, 1959)

"Leadership is an interpersonal nfluence exercised in a situation an directed towards the attainment of a specialized goal or goals." *Robert Tennunbaun, 1959*

समान लक्ष्यों की प्राप्ति में व्यक्तियों को अनुगमन करने के लिए प्रभावित करना नेतृत्व है।" (कून्ट्ज एवं डोनैल, 1959)

"Leadership is influencing people to follow in the achievement of a common goal." *Koontz and Donnell, 1959*

इस प्रकार परिभाषाओं द्वारा स्पष्ट होता है कि नेतृत्व समूह उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सदस्यों को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया है। नेतृत्व का विचार अपने आप में कला और विज्ञान दोनों है। नेतृत्व कला इस रूप में है कि इसमें परिस्थितियों को समझ कर उसके अनुरूप समूह लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सदस्यों के व्यवहारों को प्रभावित करने का कौशल मौजूद होता है तथा विज्ञान इस रूप में है कि 'क्या करना है', यह जानने के अतिरिक्त 'कब', 'कहाँ', 'कैसे', करना है इसका ज्ञान भी नेता को होता है। कभी-कभी परिस्थितियों के मापन एवं क्रियाओं की पूर्णता हेतु नेतृत्व नियमबद्ध, स्पष्ट तथा तर्कसंगत हो जाता है और कभी-कभी भावनात्मक रूप भी धारण कर लेता है, क्योंकि मानव प्रकृति भावनाओं से अछूती नहीं रह सकती। अतः नेतृत्व वह सामाजिक अवधारणा है जो अन्तः प्रक्रियात्मक विशेषताओं एवं गुणों पर बल देती है।

शैक्षिक नेतृत्व की प्रकृति

नेतृत्व को समझने के लिए नेतृत्व की प्रकृति भी जाननी आवश्यक है। प्रकृति के आधार पर नेतृत्व विज्ञान भी है, जो यह स्पष्ट करता है कौन सी क्रियाएँ कब, कहाँ, कैसे करनी है एवं उन क्रियाओं के सम्पादन में नियमबद्धता, क्रमबद्धता, तर्क-संगतता, कारण-परिणाम सम्बन्धों में एकरूपता आदि गुणों की उपस्थिति आवश्यक होती है। नेतृत्व कला इस रूप में है कि इसमें परिस्थितियों के अनुरूप सदस्यों के व्यवहारों को प्रभावित करने, उनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन लाने तथा सदस्यों को भावनात्मक सहयोग देने का कौशल उपस्थित होता है। नेतृत्व की प्रकृति अधिक स्पष्ट रूप से समझने हेतु निम्नलिखित विशेषताओं का अध्ययन आवश्यक है-

1. **समूह-क्रिया विकसित करना** – समूह क्रिया हेतु तीन प्रमुख तत्व हैं- नेता सहयोगी तथा वातावरण। ये कारक अपने आप में स्वतंत्र रहते हैं। इन्हें समूह-उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आपस में क्रिया योग्य बनाना नेता का उत्तरदायित्व होता है। वह ही कर्मचारियों की योग्यताओं, रूचियों को जानकर उनके अनुरूप उन्हें कार्य प्रदान करता है। कर्मचारियों की जिज्ञासाओं को उत्साहित करके तथा धोखेबाजी एवं कपटी व्यवहारों पर नियंत्रण लगाकर नेता एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण करता है। वह ही कर्मचारियों में समूह भावना को उजागर करके उन्हें एक समूह के रूप में कार्य करने के लिए प्रेरित करता है।

2. **कर्मचारियों का प्रतिनिधि** – नेतृत्व में अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रतिनिधि होने का गुण मौजूद रहता है। रेनिस लिकर्ट ने नेता को 'संयोजक कड़ी' कहा है। ये सम्पूर्ण संगठन को समन्वित करने का कार्य करता है। एक प्रतिनिधि के रूप में अपने अधीनस्थों की माँगों को उच्च प्रबंधन स्तर तक पहुँचाता है।

3. **उपयुक्त परामर्श देना** – अक्सर पदोन्नति, आय वृद्धि, प्रदर्शन स्तर तथा उपयुक्त स्थान पर स्थानान्तरण आदि बातों को लेकर कर्मचारी दबाव में रहते हैं एवं कई प्रकार की भावनात्मक समस्याओं से गुजरते हैं। ये बाधाएँ कर्मचारियों को उनके मार्ग से भटका देती है। ऐसी परिस्थितियों में नेता उनकी परेशानियों की सुनता है और उनके कार्य में आने वाली इन बाधाओं को दूर करने हेतु उन्हें परामर्श देता है एवं उन्हें मानसिक रूप से स्वस्थ बनाता है।

4. **शक्तियों का सही उपयोग करना** – नेता से अपेक्षित उद्देश्यों की प्रभावपूर्ण प्राप्ति के लिए नेता के पास ऐसी शक्तियाँ एवं अधिकार होते हैं जिनमें माध्यम से वह कर्मचारियों से सकारात्मक परिणाम प्राप्त करने हेतु उनकी क्रियाओं को प्रेरित कर सकता है। यदि अधीनस्थों द्वारा नेता की आज्ञा का पालन न किया जाए तो नेतृत्व प्रभावहीन हो जाता है। इसलिए नेता द्वारा ऐसी शक्तियों का उपयोग किया जाता है जिनके अधीन आधिनस्थों द्वारा नेता की आज्ञा एवं आदेशों का इच्छा से पालन किया जाता है।

5. **समय का सदुपयोग करना** – लेकिन प्रबन्धन में अक्सर उनका सही उपयोग नहीं हो पाता है। एक नेता समय-प्रबन्धन चार्ट, तकनीकी सूची आदि के प्रयोग द्वारा अपने समय का उत्पादकतापूर्ण प्रयोग करता है। सूचना, सत्य तथा सांख्यिकी आगतों के प्रभावपूर्ण संयोजन द्वारा समय का निर्णय ले पाता है।

6. **प्रभावपूर्णता लाने का प्रयत्न करना** – प्रभावपूर्ण ढंग से सलक्ष्यों की प्राप्ति हेतु नेता कई प्रकार के निर्णय लेता है। इस सन्दर्भ में लक्ष्य तक समय से पहुँचने के लिए अनेक सहायक क्रियाओं को अपनाता है। नेतृत्व के अन्तर्गत आधिनस्था द्वारा पहल करने को प्रोत्साहन देना, अच्छे प्रदर्शन के लिए पुरस्कार की व्यवस्था, आधिनस्थों से घुलना-मिलना तथा आवश्यकतानुसार अनुशासन तथा नियंत्रण लगाना आदि क्रियाओं को अपनाया जाता है।

7. **कर्मचारियों को प्रेरित करना** – एक नेता अपने कर्मचारियों में उच्च स्तर के प्रदर्शन की प्रवृत्ति विकसित कर सकता है। वह उनके दृष्टिकोणों को उच्चता प्रदान करता है। कार्य करने के सही तरीके की पहचान कराकर नेता, कर्मचारियों को संगठन के लिए अपना श्रेष्ठ देने में मदद करता है।

8. **सहयोग विकसित करना** – एक गतिशील नेता समूह में साँस लेता है। वह सदस्यों के व्यवहारों को इस प्रकार प्रभावित करता है कि वे संगठन के लक्ष्यों को पूर्ण करने हेतु तत्पर हो जाते हैं। वह उन्हें एहसास दिलाता है कि योजनाओं को कार्य रूप में परिणित करने पर वे पुरस्कार प्राप्त कर सकते हैं। इस तरह वह कर्मचारियों में समूह-भावना का विकास करता है, ताकि वे एक समूह के रूप कार्य कर सकें। समूह-क्रियाओं हेतु नेतृत्व आवश्यक अवधारणा है। एक सुदृढ़ नेतृत्व के बिना सहयोगपूर्ण क्रियाएँ आसम्भव है। नेतृत्व ही समूह को एक चरित्र प्रदान करता है तथा विभिन्न स्तरों पर समन्वित प्रयासों का मार्ग दर्शाता है।

9. **विश्वास जगाना** – संगठन में कर्मचारी अक्सर भावनात्मक समस्याएँ झेलते हैं। कुछ कार्य को करने की अयोग्यता, पदोन्नति की चिन्ता, अपनी कुशलताओं का तथा विकास करना तथा साथियों से घुलना-मिलना

आदि कारणों की वजह से वे कुण्ठित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में नेता ही उनको परामर्श देता है, उनके मार्ग की बाधाओं को दूर करने में सहयोग करता है एवं कर्मचारियों में विश्वास जगाता है। वह क्षमताओं को वास्तविकताओं में रूपान्तरित करता है।

10. **कार्य हेतु उपयुक्त वातावरण करना** – नेतृत्व द्वारा ही कार्य हेतु एक स्वस्थ वातावरण प्रदान किया जाता है, जहाँ व्यक्ति लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु खुशी से कार्य करते हैं। नेता ही आवश्यक परिवर्तन लाने की पहल करता है तथा कर्मचारियों के व्यवहारों में एकरूपता लाता है। समय एवं धन के न्यायपूर्ण प्रयोग द्वारा वह कार्यों की प्राथमिकता तय करता है। एक नेता ही कर्मचारियों में कल्पना, दूरदर्शिता, उत्साह एवं पहल करने की योग्यता विकसित करता है।

नेतृत्व के सिद्धान्त

विस्तृत रूप से नेतृत्व के सिद्धान्त तीन रूपों में वर्गीकृत किए जाते हैं- गुण सिद्धान्त, व्यावहारात्मक सिद्धान्त एवं परिस्थितियात्मक सिद्धान्त गुण सिद्धान्त के अनुसार नेतृत्व व्यक्तित्व गुणों का संयोजन है। व्यावहारात्मक सिद्धान्त के अनुसार नेता के व्यक्तिगत व्यवहार प्रभावी नेतृत्व से सम्बन्धित होते हैं। इन सिद्धान्तों को अधिक स्पष्ट ढंग से समझने के लिए इनका विस्तृत विवरण निम्नलिखित है-

1. **गुण सिद्धान्त** – यह नेतृत्व का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित विश्लेषण करने वाला सिद्धान्त है जो कि 1960 तक ही मान्य रहा इस सिद्धांत की मुख्य अवधारणा यह थी कि प्रत्येक व्यक्ति में नेतृत्व के गुण उपस्थित नहीं होते हैं। वे व्यक्ति जिनमें नेतृत्व के निश्चित गुण/विशेषताएँ होती हैं, वे ही नेतृत्व के क्षेत्र में सफल हो सकते हैं।

   इस सिद्धान्त के अनुसार नेता के व्यक्तिगत गुण ही सफल नेतृत्व की चाभी है। यह सिद्धान्त नेता के जन्मजात होने की मान्यता को नकारता है। गुण सिद्धान्त के अनुसार, नेताओं में कुछ संख्या में गुणों के आधार पर उनके अनुयायियों द्वारा भिन्नता की जाती है तथा ये गुण समय के साथ अपरिवर्तित रहते हैं। गिसेली ने सामान्य रूप से स्वीकृति गुणों की

NOTES

एक सूची निर्मित की है जो नेतृत्व को प्रभावशाली बनाते हैं। ये सूची निम्नलिखित है-

व्यक्तित्वगुण

योग्यताएँ	व्यक्तित्वगुण	प्रेरक
पर्यवेक्षण योग्यता	स्व-आश्वासन	व्यावसायिक उपलब्धि की आवश्यकता
बुद्धिमत्ता	निर्णायक	आत्म प्रकाशन
पहल करना	परिपक्वता कार्य-वर्ग सजातीयता	उच्च वित्तीय पुरस्कार कार्य सुरक्षा

कीथ डेविस ने महान सफल नेताओं के निम्नलिखित चार गुण बताए हैं:

बुद्धिमत्ता – नेता में अपने अनुयायियों से अधिक बुद्धिमत्ता होती है।

सामाजिक परिपक्वता – नेता भावनात्मक रूप से परिपक्व होते हैं तथा एक उच्च कार्य स्तर रखते हैं। वे जीत से न बहुत खुश होते हैं और हानि से बहुत दुःखी। उनमें कुण्ठा सहन करने की उच्च शक्ति होती है।

अन्तःप्रेरणा एवं उपलब्धि चालक – नेता में उपलब्धियों को प्राप्त करने की चाहत होती है। एक उपलब्धि प्राप्त करने के बाद दूसरी को प्राप्त करने के लिए तत्पर रहते हैं।

मानवीय सम्बन्ध अभिवृत्ति – नेता लोगों के प्रति आदर भाव रखते हैं एवं जानते हैं कि कौन से कार्य उन्हें किस प्रकार करने हैं ताकि सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न न हो।

आलोचनाः गुण सिद्धान्त की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है-

(क) व्यक्तित्व गुणों की सूची बहुत लम्बी है। यद्यपि नेतृत्व हेतु व्यक्तित्व के सौ से अधिक गुणों की पहचान की गई है, किन्तु इनमें संगतता का अभाव है।

(ख) प्रभावी नेतृत्व हेतु महत्वपूर्ण गुणों के सम्बन्ध में शोधकर्ताओं में मतभेद पाया जाता है। एक सफल नेता हेतु आवश्यक गुणों की कोई सार्वभौमिक सूची नहीं है।

(ग) सफल नेतृत्व हेतु गुणों की पहचान तथा मापन में बहुत कठिनाई आती है। इनकी पहचान एवं मापन हेतु उपलब्ध उपकरणों को भी सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है। उदाहरणत: कुछ मनोवैज्ञानिक गुणों जैसे बुद्धिमत्ता या पहल करने की शक्ति आदि केबल व्यवहारों में परिलक्षित होते हैं।

(घ) प्रभावी नेतृत्व केवल गुणों द्वारा संभव नहीं है। इसमें नेता के व्यवहारों एवं परिस्थितियों का भी बहुत बड़ा हाथ होता है।

(ङ) नेतृत्व कौशल में संगठन में किए जाने वाले कार्यों की भिन्नता के अनुरूप विभिन्नता पायी जाती है। एक नेता संगठन में तीन भिन्न प्रकार के कौशलों- तकनीकी, मानवीय तथा प्रशासकीय का प्रदर्शन करता है एवं ये गुण सभी प्रबन्ध्कीय स्तर पर समान रूप से वितरित हो अथवा पाए जाएं, यह मानना हास्यास्पद है। व्यक्तित्व के गुणों एवं प्रभावशाली नेतृतव में सहसम्बन्ध विषयक शोधकार्य में इनके मध्य कोई संबंध नहीं पाया गया। (स्टोगडिल, 1948, मान, 1959, बास, 1960) अत: यह विचार किया जाने लगा कि संभवत: गुण नहीं बल्कि व्यवहार नेतृत्व को अधिक प्रभावित करता है।

2. **व्यावहारात्मक सिद्धान्त** – गुण सिद्धान्त के विपरीत, व्यावहारात्मक सिद्धान्त, नेता क्या करता है, इस आधार पर नेतृत्व का वर्णन करता है, जबकि गुण सिद्धान्त, नेता क्या है, इस आधार पर नेतृत्व की व्याख्या करता है। इस उपागम के अनुसार, नेतृत्व प्रभावी भूमिका निर्वाह हेतु किए जाने वाले व्यवहारों का परिणाम है। नेतृत्व, नेता के गुणों की बजाए उसकी क्रियाओं से झलकता है। अत: यह अत्यंत गत्यात्मक है। इस सिद्धांत के अंतर्गत प्रभावशाली नेतृत्व की व्यवहार शैलियाँ एवं व्यवहार प्रारूपों का विश्लेषण कर अध्ययन किया गया कि व्यवहार प्रारूप नेतृत्व को किस प्रकार प्रभावित एवं निर्मित करते हैं।

NOTES

इस उपागम को निम्नलिखित अध्ययनों द्वारा स्पष्टतः समझा जा सकता है।

(A) **मिशिगन अध्ययन** – विभिन्न औद्योगिक परिस्थितियों का अध्ययन करने के पश्चात् मिशिगन शोधकर्ताओं ने निम्नलिखित दो प्रकार की नेतृत्व शैलियों की पहचान की है जो कर्मचारियों के प्रदर्शन तथा उत्पादकता को प्रभावित करती है –

(1) कर्मचारी केन्द्रित नेता

(2) उत्पादकता केन्द्रित नेता

कर्मचारी-केन्द्रित नेता

1. आधिनस्थ मानव है।

2. कर्मचारियों के स्वास्थ्य के प्रति चिन्तित।

3. लक्ष्य निर्धारण में कर्मचारियों को सम्मिलित एवं प्रोत्साहित करना।

उत्पादकता-केन्द्रित नेता

1. कार्य के तकनीकी पक्ष पर जोर।

2. कार्य-स्तर पर ध्यान तथा बंद पर्यवेक्षण।

3. उत्पादन प्रक्रिया में कर्मचारी एक उत्पादन यन्त्र।

मिशिगन अध्ययन के आधार पर शोधकर्ता कर्मचारियों के व्यवहार तथा उत्पादकता को प्रभावित करने वाले व्यवहारों की पहचान करने में सक्षम हुए एवं परामर्श दिया कि कार्य की पहचान तथा दिशा निर्धारण से पहले व्यक्तियों की पहचान और व्यवहारों की पहचान आवश्यक है। इस परिणाम ने 1950 के दशक में इस विश्वास को बढ़ावा दिया कि कर्मचारी-परक नेतृत्व शैली ही उत्तम शैली है।

(B) ओहियो-स्टेट यूनिवर्सिटी अध्ययनः ओहियो-स्टेट यूनिवर्सिटी के अध्ययन के अन्तर्गत व्यापक परिस्थितियों में वास्तविक नेतृत्व व्यवहारों का विश्लेषण करके दो मुख्य नेतृत्व व्यवहारों की पहचान की गई। वे

हैं – आत्मउद्योगी ढाँचा एवं महत्व देना Consideration। महत्व देना, नेता का कर्मचारियों के साथ द्विमार्गी सम्प्रेषण, आपसी आदर तथा सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता आदि को दर्शाता है। आत्मउद्योगी ढाँचा नेता की सीमा तथा संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कर्मचारियों की क्रियाओं के परिभाषीकरण को दर्शाता है। अपने शोध के दौरान ओहियो स्टेट के शोधकर्ताओं ने नेतृत्व की पहचान के लिए दो प्रकार की प्रश्नावलियाँ Leader Behaviour Description Questionnaire (LBDQ) तथा Leader Opinion Questionnaire (LOQ) का निर्माण एवं भिन्न आयाम थे। एक आयाम पर उच्च अंक प्राप्त करने का अभिप्राय यह नहीं है कि दूसरे आयाम पर निम्न अंक प्राप्त हों। इन प्रश्नावलियों के माध्यम से शोधकर्ताओं ने आत्मउद्योगी ढाँचा एवं महत्व देना के संयोजन के चार मापक विकसित किए।

High Consideration and low structure	High Consideration and High structure
Low Consideration and Low structure	Low Considratin and High structure

ओहिया स्टेट यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने दो स्वतंत्र व्यवहार शैलियों यथा– व्यवस्था प्रधान एवं प्रधान की पहचान की जो नेतृत्व के क्रमशः व्यवस्था और व्यक्ति पर केंद्रित परिस्थितिजन्य व्यवहार को दर्शाती है।

ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी के अध्ययन का बहुत अधिक महत्व था। महत्व देना एवं आत्म-उद्योगी ढाँचा दोनों अवधारणाओं की प्रबन्धकीय प्रशिक्षण में इतनी अधिक माँग हो गयी थी कि विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों में इनका प्रयोग किया जाने लगा। इनके माध्यम से नेतृत्व की पहचान करना आसान हो गया था, किन्तु समय के साथ इनकी आलोचना भी की गयी, जो निम्नलिखित है–

(क) फिडलर के अनुसार (IS) एवं (C) दो स्वतंत्र आयाम नहीं है। एक व्यक्ति के लिए कर्मचारी-परक उत्पादन-परक दोनों होना संभव नहीं है। ये दोनों पक्ष दो भिन्न व्यक्तियों में हो सकते हैं।

NOTES

(ख) उच्च (IS) तथा (C) का संयोजन प्रदर्शन बेहतर बनाता है, यह विश्वास भी उचित नहीं है। कोरमैन के अनुसार नेता के व्यवहार एवं उत्पादक जैसे मापकों में कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।

(ग) ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी का नेता-व्यवहार उपागम वास्तविकता से परे है। किसी भी निश्चित नेतृत्व व्यवहार पर वातावरण द्वारा पड़ने वाले प्रभाव पर ध्यान नहीं दिया गया है।

प्रबन्धकीय जाल : इस अवधारणा को अमेरिका के औद्योगिक मनोवैज्ञानिक आर०आर० ब्लेक एवं जेन एस० मोऊटन द्वारा विकसित किया गया है। प्रबन्ध कीय जाल की अवधारणा औद्योगिक परिस्थितियों में व्यवहारिक विज्ञानों में किए जाने वाले प्रायोगिक शोधों पर आधारित है। इस अवधारणा का प्रमुख पक्ष संगठन के अन्दर संगठन के लाभों हेतु व्यक्तियों के व्यवहारों एवं अभिवृत्तियों में प्रभावी सुधार से है। यह प्रबन्धन की कला को विज्ञान में परिवर्तित करता है। ब्लेक एवं मोऊटन के अनुसार उत्पादन एवं व्यक्तियों सम्बन्धी विचार एक सिक्के के दो पहलू हैं तथा संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दोनों का समन्वित उपयोग किया जाना चाहिए।

प्रबन्धकीय जाल की अवधारणा इस तर्क पर आधारित है नेता की नेतृत्व शैली उत्पादन सम्बन्धी एवं व्यक्ति सम्बन्धी दोनों आयामों का संयोजन है। इस दोनों आयामों को स्पष्ट करते हुए ब्लेक एवं मोऊटन के विार निम्नलिखित हैं :-

1. **उत्पादन सम्बन्धी :** यह केवल वस्तुओं तक सीमित नहीं होता। उत्पादन का मापन सृजनात्मक विचारों की संख्या से होता है जो शोधों को उपयोगी उत्पाद में परिवर्तित करते हैं, कर्मचारी सेवाओं की गुणात्मकता, कार्य-भार, कुशलता आदि इनका मापन करते हैं।

2. **व्यक्ति सम्बन्धी :** यह विचार केवल अन्तर्व्यक्तिक सम्बन्ध एवं मित्रता तक सीमित नहीं होते, अपितु इसके अन्तर्गत कार्य को पूरा करने का व्यक्तिगत वचनबद्धता, आत्म-सम्मान, कार्य में सुरक्षा की इच्छा, सहयोगियों के साथ मित्रता जो एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण करती है।

प्रबन्धकीय जाल को निम्न रेखाचित्र द्वारा समझा जा सकता है –

कन्ट्री क्लब 1, 9	समूह 9,9 मध्य मार्ग 5, 5
न्यूनतम प्रयास 1,1	कार्य 9,1

रेखाचित्र उत्पादन तथा व्यक्तियों को महत्व दिए जाने की मात्रा और उनके बीच संभव अन्तःक्रिया को दर्शाता है। क्षैतिज अक्ष उत्पादन के विचार को महत्व देने का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि लम्ब अक्ष व्यक्तियों को महत्व देने का प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक को महत्व देने के नौ बिन्दू मापनी पर प्रदर्शित किया जाता है। संख्या 1 प्रत्येक पक्ष में न्यूनतम महत्व को दर्शाता है एवं संख्या 9 अधिकतम महत्व को।

न्यूनतम प्रयास : कार्य के सम्पाद तथा संगठन के चरित्र (नैतिकता) को बनाए रखने के लिए न्यूनतम प्रयास आवश्यक है।

कन्ट्री क्लब : संतुलित, मित्रतापूर्ण संगठन वातावरण हेतु सम्बन्ध को सन्तुष्ट करने के दृष्टिकोण से व्यक्तियों की आवश्यकताओं पर विचारपूर्वक ध्यान देना।

मध्य मार्ग : कार्य करने की आवश्यकता को सन्तुष्टि स्तर तक व्यक्तियों की नैतिकता को बनाए रखते हुए संतुलित करना ताकि संगठन का प्रदर्शन उत्तम हो सके।

कार्य : संगठन के परिणामों में कुशलता प्राप्त करने हेतु कार्य की दशाओं को इस प्रकार व्यवस्थित करना ताकि मानवीय तत्वों का हस्तक्षेप न्यूनतम मात्रा में हो।

समूह : समर्पित एवं आत्मनिर्भर व्यक्तियों द्वारा कार्य की पूर्णता ताकि संगठन में विश्वास एवं आदर युक्त सम्बन्ध स्थापित हो।

सैद्धान्तिक रूप से जाल में 81 संभावित नेतृत्व शैलियाँ प्रकट होती हैं किन्तु सामान्य 5 शैलियों पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है। नेता (9, 1) का मुख्य

NOTES

सम्बन्ध उत्पादन क्रियाओं से और व्यक्तियों से निम्न सम्बन्ध होता है। इस प्रकार का नेता उत्पादन सूची चाहता है और किसी भी कीमत पर कार्य की पूर्णता चाहता है। (9, 1) शैली उत्पादन के प्रति निम्न महत्व तथा व्यक्तियों के प्रति अधिक महत्व को दर्शाती है। (1, 1) शैली वाला नेता दोनों (उत्पादन एवं व्यक्ति) के प्रति थोड़ी-थोड़ी भावना रखता है। (5, 5) शैली दोनों पक्षों के प्रति उदारता रखती है। (9, 9) शैली नेतृत्व की आदर्श शैली को प्रदर्शित करती है। यह शैली दोनों पक्षों के प्रति घनिष्ठ सम्बन्ध को दर्शाती है, इसमें दोनों पक्षों को महत्व दिया जाता है। प्रबन्धकीय जाल के अनुसार (9, 9) शैली अनुकूलतम नेतृत्व उपागम है एवं बहुत से संगठन इस शैली के प्रबन्धक तैयार करने हेतु कार्यक्रम चलाते हैं।

आलोचना: यद्यपि जाल उपागम आकर्षक, निर्देशात्मक तथा प्रबन्धकीय गुणों एवं शैलियों को दर्शाने वाला है। इसके माध्यम से प्रबन्धकों को स्वयं ही नेतृत्व शैली की पहचान करने में सहायता प्राप्त होती है, किन्तु इस उपागम में मापन आयामों को इतना जटिल बना दिया है कि साधारण व्यक्ति द्वारा इनके माध्यम से नेतृत्व शैलियों एवं नेता के व्यवहारों की पचान करना कठिन हो जाता है। शोधकर्ताओं में इस उपागम के सम्बन्ध में मतभेद पाया जाता है, क्योंकि इससे सम्बन्धित अनुभाविक ज्ञान की कमी है।

(3) परिस्थितियात्मक अथवा स्थितिपरक सिद्धान्त : नेतृत्व एक जटिल, सामाजिक तथा अन्तर्व्यक्तिक प्रक्रिया है। इसको पूर्ण रूप से समझने के लिए हमें उन परिस्थितियों को जानना आवश्यक है जिसमें नेता कार्य करता है। एक प्रभावी नेता को अधीनस्थ तथा स्थितियों की भिन्नता को अपनाने में लचीला होना चाहिए। अर्थात् परिस्थिति अनुसार नेता की नेतृत्व शैली भी आवश्यकतानुसार सुसमायोजित होते रहना चाहिये। इस सिद्धांत के अनुसार नेतृत्व परिस्थितिजन्मय चरों पर निर्भर होता है।

प्रभावी नेतृत्व व्यक्तित्व, कार्य, शक्तियों अभिवृत्तियों, प्रत्यक्षीकरण आदि पर निर्भर करता है। इस अवधारणा पर आधारित कई सिद्धान्त विकसित किए गए हैं, जो निम्नलिखित हैं-

फीडलर का प्रासंगिकता सिद्धान्त : नेतृत्व की प्रभावशीलता नेता व्यवहार एवं नेतृत्व का प्रयोग की जाने वाली परिस्थितियों के बीच अन्तःक्रिया का

परिणाम है। प्रासंगिकता सिद्धान्त में नेताओं की सफलता स्थितिपरक चरों पर निर्भर करती है।

फ्रेड फीडलर (1967) के अनुसर संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु तथा उत्पादन हेतु परिस्थितिजन्य विशेषताएँ एवं नेता के गुण दोनों का संयोजन आवश्यक है। नेता का कार्य नेता के व्यक्तित्व एवं परिस्थिति के उपयुक्त संयोजन पर निर्भर करता है। साथ ही परिस्थितियों में निहित कुछ विशेष कारक नेतृत्व की प्रभावशीलता को प्रभावित करते हैं। फीडलर ने इन विशेष कारकों को परिस्थिति की अनुकूलता का नाम दिया है। नेतृत्व की प्रभावशीलता परिस्थिति की अनुकूलता पर निम्न विशेषताओं के सन्दर्भ में निर्भर करती है-

नेता तथा अधीनस्थों के मध्य सम्बन्ध।

कार्य संरचना की सीमा।

नेता की अधिकारिक शक्ति।

परिस्थितियों का पक्ष में होना।

फीडलर द्वारा वर्णित इन चरों का वर्गीकरण निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा स्पष्टतः जाना जा सकता है-

फीडलर के परिस्थितिजन्य चरों का वर्गीकरण

नेता-सदस्य संबंध	अच्छा				खराब			
कार्य-संरचना	उच्च		निम्न		उच्च		निम्न	
नेता पद की	शक्ति-शाली	कमजोर	शक्ति-शाली	कमजोर	शक्ति-शाली	कमजोर	शक्ति-शाली	कमजोर
परिस्थिति	I	II	III	IV	V	VI	VII	VIII

पूर्णतः पक्ष में ⟵⟶ पूर्णतः विपक्ष में

नेता एवं सदस्यों के मध्य अच्छे सम्बन्ध, उच्च स्तर पर संगठित क्रियाएँ तथा नेता का अपने अधीनस्थों पर पूर्ण प्रभाव रखने की शक्ति पूर्णतः पक्ष वाली परिस्थिति को दर्शाती है। सारणी का पहला प्रकोष्ठ पूर्णतः पक्ष को दर्शाता है। जहाँ नेता की शक्तियाँ कमजोर होती हैं, सदस्यों के साथ सम्बन्ध खराब होते हैं एवं कार्य असंगठित एवं अनिश्चित होते हैं, वहाँ पूर्णतः विपक्ष की

NOTES

परिस्थिति को दर्शाती है। यह सारणी के अन्तिम प्रकोष्ठ वाली स्थिति है। इन दोनों ही परिस्थितियों के बीच की परिस्थितियाँ अत्यन्त कठिन होती हैं। फीडलर के अनुसार सम्बन्ध-परक शैली सामान्य स्तर पर पक्ष एवं सामान्य स्तर पर विपक्ष वाली परिस्थितियों में उपयुक्त होती है। उच्च पक्ष तथा उच्च विपक्ष वाली परिस्थितियों में कार्य-परक शैली उपयोगी होती है। रेखाचित्र के आधार पर समझा जा सकता है कि कोई नेता एक परिस्थिति में प्रभावशाली हो सकता है एवं दूसरी में प्रभावहीन।

सिद्धान्त की मुख विशेषताएँ -

- **नेतृत्व शैली** : फीडलर के अनुसार कार्य प्रधान तथा सम्बन्ध प्रधान व्यवहार ही दो मूलभूत शैलियाँ हैं। ये दोनों शैलियाँ आधिनस्थों के साथ अच्छे सम्बन्ध और कार्य के सफल सम्पादन की माँग पर निर्भर करती है।

- **समूह के कार्य निष्पादन में वृद्धि** : इस सिद्धान्त में नेतृत्व की उन शैलियों पर बल दिया गया है जो कार्य निष्पादन में वृद्धि तथा संस्थागत लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक होती हैं।

- **समूह-कार्य परिस्थिति** : इस सिद्धान्त के अनुसार नेतृत्व शैली की उपयुक्तता समूह कार्य- परिस्थिति पर निर्भर करती है। इसको फीडलर द्वारा पारस्परिक-विन्यास के रूप में देखा है जो नेता के प्रभाव को बढ़ाने में सहायक होता है।

आलोचना : फीडलर का मॉडल प्रकट करता है कि नेता परिस्थिति की माँगों के अनुरूप कार्य-परक अथवा सम्बन्ध परक हो जाता है। इस मॉडल की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि फीडलर अपने सिद्धान्त को ज्ञात परिणाम प्राप्त करने हेतु आकार देते हैं।

- फीडलर के प्रासंगिकता सिद्धान्त का कोई सैद्धान्तिक आधार नहीं है, यह केवल ल अनुभाविक सामान्यीकरण पर आधारित है।

- फीडलर द्वारा दी गई परिस्थिति में उच्च-पद शक्ति दूसरी परिस्थिति में निम्न पद-शक्ति हो सकती है।

- यद्यपि फीडलर का सिद्धान्त नेतृत्व शैली के अध्ययन के दृष्टिकोण से बहुत अधिक उपयुक्त हे यद्यपि इसमें बहुत अधिक जटिलता है।

हरसे तथा ब्लेनचर्ड का स्थितिपरक सिद्धान्त : ओहियो विश्वविद्यालय के पाल हरसे एवं कैनेथ एच० ब्लेनचर्ड के अनुसार नेतृत्व की विभिन्न शैली विभिन्न परिस्थितियों में प्रभावशाली एवं अप्रभावशाली हो सकती है। एक शैली एक परिस्थिति में प्रभावशाली होती है तो दूसरी परिस्थिति में अप्रभावशाली हो जाती है। परिस्थितियाँ ही नेता की शैली को प्रभावी या अप्रभावी बनाती हैं। लेखकद्वय ने सैद्धान्तिक परिस्थितियों के लिए दो आयामों कार्य–वातावरण तथा परिस्थिति को अपनाया है। यह सिद्धान्त नेतृत्व का "जीवन चक्र सिद्धान्त" के नाम से भी जाना जाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न परिस्थितियों में संगठन के सदस्यों का परिपक्वता स्तर एक विशिष्ट कारक होता है, जो नेतृत्व को प्रभावी अथवा अप्रभावी बनाता है। समूह का ये परिपक्वता स्तर सदस्यों द्वारा सम्पादित विशिष्ट कार्य के माध्यम से जाना जाता है। लेखकद्वय के अनुसार परिपक्वता दो अन्तर्सम्बन्धित कारकों में संयोजन से निर्मित होती है। ये कारक हैं–

उच्च लेकिन वास्तविक लक्ष्यों का निर्धारण करने की क्षमता तथा इच्छा।

लक्ष्य प्राप्ति हेतु उत्तरदायित्व लेने की क्षमता तथा इच्छा।

इन कारकों के आधार पर नेतृत्व प्रभावशीलता को ज्ञात करने के तीन आयाम निर्धारित किए गए हैं–

कार्य प्रधान

सम्बन्ध–प्रधान

समूह की परिपक्वता

यह सिद्धान्त मानता है कि समूह के सदस्यों के परिपक्वता स्तर को समय के साथ प्रशिक्षण आदि के माध्यम से बढ़ाया जा सकता है। यही परिपक्वता स्तर नेतृत्व शैली की प्रभावशीलता में वृद्धि करता है। सदस्य जितने परिपक्व होंगे वे नेता के आदेशों को उतनी ही कुशलता से समझेंगे और उनके पालन में अपना योगदान देंगे। लेखकद्वय ने अनुसार सदस्यों की परिपक्वता स्तर को

कार्य-प्रधान व्यवहार में कमी एवं सम्बन्ध-प्रधान व्यवहार में वृद्धि द्वारा जाना जा सकता है।

आलोचना :

1. हरसे-ब्लेनचर्ड द्वारा दिए गए सिद्धान्त में परिस्थिति से जुड़े आयामों के बारे में बताया गया है परन्तु उनका स्पष्टीकरण नहीं किया गया है।

2. यह सिद्धान्त सदस्यों की परिपक्वता स्तर को नेतृत्व की प्रभावशीलता से जोड़ता है, किन्तु सदस्यों में व्यक्तिगत भिन्नता के परिणामस्वरूप परिपक्वता स्तर प्राप्त करने का भी भिन्न-भिन्न स्तर होता है। ऐसी स्थिति में एक समय पर सभी सदस्यों से एक जैसी परिपक्वता की आशा नहीं की जा सकती है।

3. परिपक्वता स्तर कार्य-प्रधान व्यवहार में कमी एवं सम्बन्ध प्रधान व्यवहार में वृद्धि द्वारा पाया जा सकता है, परन्तु ये कमी एवं वृद्धि परिस्थितियों के अनुरूप हो तभी लक्ष्यों की प्राप्ति संभव है। ऐसी स्थिति में आवश्यक समय पर आवश्यक परिपक्वता की प्राप्ति की आशा करना व्यर्थ है।

व्रूम एवं यैटन का मानकीय प्रासंगिकता सिद्धान्त : विक्टर वूरम तथा फिलिप यैटन का प्रासंगिकता सिद्धान्त बताता है कि विशिष्ट परिस्थितियों से सम्बन्धित प्रासंगिकता के दृष्टिकोण से प्रभावित होने के लिए कैसा व्यवहार नेता द्वारा किया जाना चाहिए। इस सिद्धान्त को मानवीय सिद्धान्त के रूप में जाना जाता है क्योंकि यह नेता-व्यवहार से जुड़ी प्रासंगिकताओं के मानक तय करता है। इस सिद्धान्त में लेखकद्वय ने निम्नलिखित पाँच प्रकार की नेतृत्व शैलियों का वर्णन किया है-

तानाशाही अथवा निरंकुश प्रक्रिया : इस श्रेणी में दो प्रकार की नेतृत्व शैलियाँ आती हैं।

1: नेता उपलब्ध सूचनाओं का अध्ययन कर निर्णय लेता है।

2: नेता सदस्यों से सूचनाएँ प्राप्त कर निर्णय लेता है और सदस्यों को समस्या का ज्ञान करा सकता है अथवा नहीं भी कराता है।

परामर्शवादी प्रक्रिया : इस श्रेणी में दो प्रकार की नेतृत्व शैलियाँ आती हैं-

1: इस शैली में नेता मुख्य सदस्यों के सहयोग से निर्णय लेता है। वह एक-एक से व्यक्तिगत रूप से सूचनाएँ ग्रहण करता है, न कि समूह में।

2: इस शैली में नेता किसी समूह में सदस्यों से सूचनाएँ प्राप्त कर समूह में ही फैसला लेता है।

समूह प्रक्रियाएँ : यह शैलियों का समूह है जिसमें नेता निम्न प्रकार से निर्णय लेता है।

इस शैली में नेता समूह में सदस्यों के साथ समस्या पर विचार करता है। साथ ही सदस्यों को सहयोग भी प्रदान करता है ताकि सामूहिक निर्णय हेतु एकमत पर पहुँचा जा सके। नेता सदस्यों से सूचनाएँ प्राप्त करता है, अपने विचार प्रदान करता है किन्तु वह अपने निर्णय सदस्यों पर थोप नहीं सकता, केवल अप्रत्यक्ष ढंग से सदस्यों को अपने निर्णय की स्वीकृति के लिए तैयार कर सकती है। अन्त में वह उन्हीं निर्णयों को पारित करता है जिनमें सर्वसम्मति हो।

ब्रम तथा यैठन का सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित हैं-

मान्यताएँ :

निर्णय शैली परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित है।

नेतृत्व शैली निर्णयों द्वारा प्रभावित होने वाले सदस्यों की संख्या के आध ार पर भिन्न-भिन्न होती है।

कोई भी नेतृत्व शैली प्रत्येक परिस्थिति में उपयुक्त नहीं होती।

निर्णय प्रक्रिया में सदस्यों की सहभागिता को प्रभावित करने हेतु नेता को उपयुक्त प्रक्रिया का चयन करना चाहिए।

नेतृत्व शैली का चयन निम्न तीन चरों पर निर्भर करता है-

निर्णय की गुणात्मकता

निर्णय की स्वीकृति

निर्णय लेने हेतु आवश्यक समय की मात्रा

परिस्थिति का निराकरण– किन परिस्थितियों में कैसे नेतृत्व का प्रयोग किया जाना है उनके निदान हेतु सात प्रश्नों के उत्तरों को जानना आवश्यक है। जिनके उत्तर हाँ अथवा नहीं में दिये जायेंगे। ये प्रश्न हैं –

क्या समस्या में गुणवत्ता की आवश्यकता निहित है? इसका तात्पर्य यह देखना है कि क्या निर्णय तुरन्त लिये जाने हैं तथा दूसरों से परामर्श का समय नहीं है।

क्या सही एवं अच्छा निर्णय लेने हेतु नेता के पास पर्याप्त समय है?

क्या समस्या भली-भाँति सुगठित है?

क्या क्रियान्वयन हेतु निर्णय को सदस्यों की स्वीकृति आवश्यक है?

यदि नेता अकेले निर्णय लेता है तो दूसरों द्वारा स्वीकृति दी जाने की कितनी निश्चितता है?

क्या संस्थागत उद्देश्यों के निर्धारण में सदस्यों ने भाग लिया है?

क्या समस्या के चुने हुए समाधान से सदस्यों में विरोध होने की सम्भावना है?

इन प्रश्नों के उत्तर जानकर परिस्थिति की प्रासंगिकता के निदान के पश्चात् ऐसी नेतृत्व शैली खोजी जाती है, जो सर्वाधिक उपयुक्त है। इस प्रकार वूरम तथा यटन के मॉडल से दो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं– (1) किसी विशिष्ट परिस्थिति में एक या एक से अधिक नेतृत्व शैली प्रभावी होती है।

(2) यदि समय की कमी है एवं विरोधाभास की स्थिति है तो नेता को निरंकुश शैली अपनानी चाहिए एवं यदि अथवा अपने अधीनस्थों के विकास हेतु कुछ समय चाहता है तो उसे सहभागी शैली अपनानी चाहिए।

आलोचना :

(1) इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमी 'समय बाध्यता' की है। ऐसी बाध्यता में नेता ऐसी शैली अपनाने में लाभ समझता है जो कम समय लेती हैं। किन्तु ऐसी शैली प्रत्येक परिस्थिति में उपयुक्त नहीं हो सकती।

(2) इस सिद्धान्त में विधि सम्बन्धी समस्याएँ विद्यमान हैं, अर्थात् यदि प्रबंधक निर्णय में अपने सदस्यों की सहभागिता चाहता है तो उसे सदस्यों के

NOTES

प्रशिक्षण हेतु समय चाहिए साथ ही सदस्यों को निर्णय लेने में, सुझाव देने में समय लगता है एवं उन्हें प्रेरित करने के लिए पुरस्कृत भी किया जाना चाहिए। इन सब विधियों के बाद भी नेतृत्व शैली की प्रमाणिकता सिद्ध नहीं होती एवं यह कमी सिद्धान्त की उपयोगिता को कम कर देती है।

मार्ग-लक्ष्य सिद्धान्त : आर.जे. हाउस द्वारा प्रस्तावित मार्ग-लक्ष्य सिद्धान्त के अनुसार, नेता को संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सदस्यों को व्यक्तिगत पुरस्कार प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हुए प्रेरित करना चाहिए। ये मार्ग तभी स्पष्ट होगा जब सदस्यों के विचारों की दुविधा या विरोधाभास को समाप्त किया जाएगा। अध ीनस्थों को दिए जाने वाले पुरस्कारों के प्रकार एवं मात्रा में नेता द्वारा वृद्धि की जानी चाहिये। उसे पुरस्कार प्राप्ति के मार्ग को स्पष्ट करने हेतु निर्देशन तथा परामर्श भी देना चाहिए। दूसरे शब्दों में, अधीनस्थों को कार्य-सुरक्षा, वास्तविक अनुभव प्राप्त करने हेतु स्पष्टीकरण एवं मूल्यपरक लक्ष्यों की प्राप्ति में आने वाली बाधाओं को प्रबन्धक द्वारा दूर किया जाना चाहिए। नेता को लक्ष्य एवं मार्ग को स्पष्ट करना चाहिए। सहयोग तथा पुरस्कार प्रदान करना चाहिए, साथ ही कार्य, परिस्थितियों एवं कर्मचारियों की आवश्यकताओं का विश्लेषण करना चाहिए।

उपरोक्त कार्यों के सम्पादन हेतु नेता को निम्नलिखित व्यवहार शैलियाँ अपनानी चाहिए–

(1) **सहयोगात्मक :** नेता, अधीनस्थों के प्रति मित्रवत् हो, कर्मचारियों की आवश्यकता, सुरक्षा तथा स्थिति के प्रति सचेत हो और सहयोगियों को अपने बराबर समझे।

(2) **निर्देशात्मक :** नेता इस शैली में नियोजन, संगठन तथ कर्मचारियों की क्रियाओं को निर्देशित करता है। वह प्रदर्शन के स्तर को परिभाषित करता है और अधीनस्थों को प्रकट करता है कि उनसे क्या आशा की जाती है?

(3) **सहभागी :** इस शैली में नेता, कर्मचारियों से सलाह लेता है, उनके सुझावों को अपनाकर एक उत्तम निर्णय लेता है।

(4) **उपलब्धि-परक :** इस शैली को अपनाने वाले नेता चुनौतीपूर्ण लक्ष्य निर्धारित करते हैं, कर्मचारियों से अपना उत्तम देने की आशा करते हैं एवं निरन्तर कर्मचारियों के प्रदर्शन स्तर में सुधार चाहते हैं।

हाउस के अनुसार एक निश्चित नेतृत्व शैली, जो कि सदैव उत्तम कार्य करे, दो चरों द्वारा निर्धारित होती है-

कर्मचारियों के गुण : नेता द्वारा अपनायी जाने वाली शैली उसके अनुयायियों की आवश्यकता, योग्यता तथा व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। यदि अनुयायी उच्च योग्यता वाले हैं तो सहयोगात्मक शैली उपयुक्त होती है एवं यदि अनुयायी निम्न योग्यता वाले हैं तो निर्देशात्मक शैली उपयुक्त होती है। उच्च आवश्यकता वाले अनुयायियों हेतु सहयोगी नेता तथा उच्च आवश्यकता वाले, उपलब्धि प्राप्त करने वाले अनुयायियों हेतु कार्य-परक नेता आवश्यक हैं। अन्तर्मुखी वाले कर्मचारी जो मानते हैं कि वे अपने व्यवहार को नियंत्रित कर सकते हैं, वे सहयोगी व्यवहार वाला नेता चाहते हैं।

कार्य वातावरण : वातावरणीय चर कर्मचारियों के नियंत्रण में नहीं होते किन्तु वे प्रभावी प्रदर्शन की योग्यता अथवा सन्तुष्टि हेतु महत्वपूर्ण होते हैं। इसके अन्तर्गत कर्मचारी क्रियाएँ, औपचारिक अधिकाधिक ढाँचा तथा प्राथमिक कार्य समूह आते हैं।

कार्य सन्तुष्टि

प्रासंगिकता कारक कार्य ढाँचे के साथ आधिनस्थ सन्तुष्टि तथा निर्देशालय नेता के बीच परिकल्पनात्मक सम्बन्ध स्पष्ट होता है कि ढाँचागत अथवा संगठित कार्य, उच्च स्तर के निर्देशालय व्यवहार एवं निम्न कार्य सन्तुष्टि से जुड़े रहते हैं। असंगठित कार्या के लिए उच्च स्तर की निर्देशात्मकता, उच्च स्तर की कार्य सन्तुष्टि के साथ जुड़ी रहती है। अन्तिम विश्लेषण के अनुसार, मार्ग-लक्ष्य सिद्धान्त प्रस्तावित करता है, कि कर्मचारियों को वातावरणीय अनिश्चितताओं से जूझने के लिए कर्मचारियों को उपाय समझाने हेतु नेता का व्यवहार प्रेरणादायक होगा। कार्य की अनिश्चितताओं को कम करने की योग्यता रखने वाला नेता प्रेरक होना चाहिए क्योंकि वह कर्मचारियों की अपेक्षाओं को बढ़ाता है जिससे कि उनके प्रयास उन्हें पुरस्कार प्रदान करें। इस प्रकार मार्ग-लक्ष्य सिद्धान्त नेता को आधिनस्थों तथा परिस्थितियों दोनों को समान महत्व देने को प्रेरित करता है।

आलोचना : (1) यह एक जटिल स्थितिपरक सिद्धान्त है। विधियों की जटिलता के कारण अनुभाविक परीक्षण कठिन है।

(2) इस सिद्धान्त के पीछे शोधकर्ताओं तथा विशेषज्ञों की मान्यताओं का अभाव है। इस सिद्धान्त से जुड़े शोधों की संख्या भी नाममात्र है, इस कारण इसकी प्रमाणिकता पर प्रश्न चिन्ह लगता है।

(3) इस सिद्धान्त से जुड़े शोध प्रमाण कभी-कभी सिद्धान्त निर्माणक तत्व बन जाते हैं।

(4) यह एक अपूर्ण सिद्धान्त है जो नेता के व्यवहार को प्रभावित करने वाले कर्मचारियों से जुड़े कुछ कारकों जैसे अपेक्षा, स्वीकृति, सन्तुष्टि आदि पर ही विचार करता है। यह नेतृत्व शैली का संभावित स्पष्टीकरण मात्र है।

- नेतृत्व की एकतांत्रिक, प्रजातांत्रिक, पितातुल्य शैली, व्यवहार शैली, रुपान्तर शैली, सहभागी शैली, सहयोगी शैली एवं अहस्तक्षेपी शैलियों के बारे में जान सकेंगे।
- शैक्षिक संस्थाओं में नेतृत्व के विभिन्न शैलियों के महत्व से परिचित हो सकेंगे।

नेतृत्व की शैलियाँ

शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्र में उच्च अधिकारियों या नेता द्वारा आधिनस्थों या सहकर्मियों के हृदय को जीतने वाला, उनको सहयोग तथा परामर्श, पुरस्कार-दण्ड देने, अनुशासन बनाये रखने वाला व्यवहार जो व्यक्तिक अथवा अर्जित गुणों, परिस्थितियों पर आधारित होता है, शैक्षिक नेतृत्व कहा जाता है। सामाजिक परिवर्तन के अनुकूल शिक्षा के विकास, सामूहिक कार्यक्रमों में समन्वय, शिक्षा में नियोजन तथा संलग्नता की सफलता हेतु शैक्षिक नेतृत्व अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर उन्नति, विकास, विद्यालय की प्रगति हेतु एक कुशल नेता की आवश्यकता होती है। एक शैक्षिक नेता सामाजिकता, सामाजिक जागरुकता बनाये रखने, सामाजिक विशेषताओं के अनुकूल विद्यालय की व्यवस्था करने, उच्च शैक्षिक प्रबन्धक हेतु महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शिक्षा के क्षेत्र में विद्यालय प्रबन्धन में प्रबन्धक या प्रधानाचार्य एवं कक्षा स्तर पर अध्यापक नेता की भूमिका निभाता है।

किसी भी शैक्षिक संस्था में नेतृत्व संस्थागत लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कार्य परिवेश को इस प्रकार निश्चित करता है कि प्रधानाचार्य, शिक्षक, गैर-शिक्षणत्तर

कर्मचारी तथा छात्रों सभी शैक्षिक संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु तत्पर होकर कार्य करते हैं। चूँकि एक शैक्षिक संस्था के उत्थान से समाज का उत्थान जुड़ा होता है। अतः शैक्षिक नेता का उत्तरदायित्व बहुत अधिक जटिल तथा महत्वपूर्ण होता है। शैक्षिक संस्थानों के प्रबन्ध में शैक्षिक नेतृत्व निहित है तथा शैक्षिक नेतृत्व में संस्थागत लक्ष्यों को प्राप्त करने के दक्ष तथा प्रभावशाली तरीके निहित होते हैं।

शैक्षिक नेतृत्व का कार्यक्षेत्र :

शैक्षिक नेतृत्व के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यक्षेत्र समाहित किए जा सकते हैं-

1. विद्यालयी क्रियाओं हेतु उद्देश्य निश्चित करना।
2. नीति निर्धारित करना।
3. कार्य का निश्चय तथा प्रारुप तैयार करना।
4. प्रशासकीय कार्यों एवं उनके ढाँचे में समन्वय करना।
5. प्रभाव तथा संचालन का मूल्यांकन।
6. शिक्षा के विकास हेतु सामाजिक नेतृत्व के साथ मिलकर कार्य करना।
7. शैक्षिक संसाधनों का कुशलतम उपयोग।
8. सम्बन्धित शैक्षिक कार्यों में समाज के व्यक्तियों, विशेषज्ञों से सहयोग एवं विचार विनिमय करना।

नेतृत्व शैलियाँ

नेतृत्व शैली, एक नेता की दिशा निर्देशन प्रदान करने, योजनाओं के क्रियान्वयन एवं आधीनस्थों को प्रेरित करने की शैली को प्रदर्शित करती है। नेतृत्व शैली, एक नेता के सामान्य व्यक्तित्व, सहनशक्ति तथा संगठनात्मक तथा व्यक्तिगत लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु मार्ग दर्शन प्रदान करने की दिशा में अपनायी जाने वाली सम्प्रेषण तकनीकों आदि पर निर्भर करती है। कर्मचारियों द्वारा नेता द्वारा किये जाने वाले व्यवहारों का पर्यवेक्षण कर उनका नामकरण नेतृत्व शैलियों के नाम से जाना जाता है।

नेतृत्व शैलियों की दिशा में किये गए शोधों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि एक सफल नेता प्रत्येक परिस्थिति में एक संगत् शैली ही अपनाने का प्रयत्न

करता है। एक नेता की शैली संगठन की प्रकृति तथा बाह्य समुदायों के साथ उसके सम्बन्धों में प्रदर्शित होती है। एक नेता, संगठन के भीतर नेतृत्व का सम्प्रत्यय एवं नेता द्वारा निर्देशित करने की तकनीकों आदि के संयाजित रूप से नेतृत्व शैली निर्मित होती है। एक संगठन के भीतर नेतृत्व की अवधारणा निर्देशन विधियाँ, परिवर्तन हेतु अभिवृत्ति आदि नेता द्वारा विभिन्न शैलियों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

सामान्यतः नेतृत्व शैली संगठन लक्ष्यों की सफलता पूर्वक प्राप्ति हेतु नेता द्वारा अपनाया जाने वाला मार्ग है। इसका संगठन और उसके कर्मचारी सदस्यों पर गहरा प्रभाव पड़ता है एवं एक कुशल शैली ही संगठन को प्रभवी या अप्रभावी बनाती है। एक संगठन के भीतर परिस्थितियों के अनुरुप नेता को विभिन्न शैलियाँ अपनानी पड़ती है। किसी अवसर पर कर्मचारी तथा आधीनस्थ नेता की ओर से प्रशंसा अथवा पुरस्कार की अपेक्षा करते हैं तो किसी अवसर पर समूह में दूरदर्शिता प्रशिक्षण की नवाचारी तकनीकों को अपनाने की आवश्यकता महसूस की जाती है, ऐसी परिस्थितियों में नेता को बड़ी सूझ-बूझ के साथ नेतृत्व शैली का चयन करना होगा। नेतृत्व शैली, एक संगठन के भीतर प्रत्येक क्षेत्र एवं प्रत्येक क्रिया को प्रभावित करती है। इसलिए यह समझना बहुत ही महत्वपूर्ण है कि विभिन्न परिस्थितियों में कौन सी शैली अधिक प्रभावी होगी एवं कौन सी कम प्रभावी।

नेतृत्व शैलियाँ कई प्रकार की हो सकती हैं, कुछ प्रमुख शैलियों का विवरण अग्रलिखित है-

एकतंत्रीय अथवा अधिकारिक शैली– इस प्रकार की शैली में बिना कर्मचारियों से परामर्श लिये नेता द्वारा ही सारे निर्णय किये जाते हैं। शक्तियाँ तथा विनिश्चयीकरण उसमें ही केन्द्रित रहती है। नेता का कर्मचारियों पर पूरा नियंत्रण रहता है। नेता द्वारा आदेश दिये जाते हैं तथा कर्मचारियों से आशा की जाती है कि वे बिना किसी विरोध के उनका पालन करें। इस प्रकार नेता आज्ञाकारी और नियमबद्ध व्यवहार सदस्यों द्वारा करने की योग्यता विकसित करता है। वह कार्य में सीमित स्वतंत्रता प्रदान करता है। पुरस्कार तथा दण्ड दोनों के माध्यम से अनुशासन स्थापित किया जाता है, जिसमें दण्ड का अधि क योगदान होता है। सम्प्रेषण एक-मार्गी होता है। अधीनस्थों को प्रत्येक कार्य के लिए उच्च अधिकारियों पर आश्रिता रहना होता है। निम्नलिखित रेखाचित्र

NOTES

द्वारा इस शैलली को समझा जा सकता है–

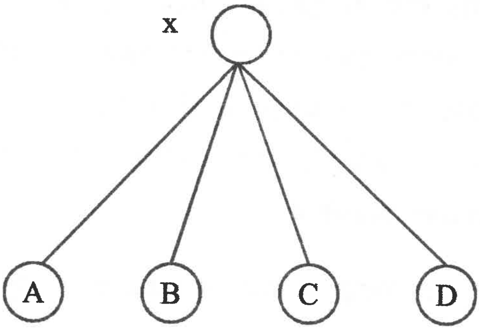

कर्मचारियों की अनुभवहीनता, असुरक्षा एवं अकुशलता की स्थिति में इस शैली का प्रयोग किया जाता है।

प्रजातांत्रिक शैली – प्रजातांत्रिक नेता विनिश्चयीकरण प्रक्रिया में आधिनस्थों के योगदान को प्रोत्साहित करता है। वह निर्णय लेने से पहले उनका परामर्श लेता है। इस प्रकार की शैली खुली हुई, द्विमार्गी सम्प्रेषण वाली शैली है। समूह के सदस्यों के बीच एक उत्तम स्थिति बनाने का प्रयत्न किया जाता है। नेता प्रभुत्व नहीं जमाता है। वह आधिनस्थों को हर प्रकार की स्वतंत्रता देता है, किन्तु अनुशासनहीता उत्पन्न नहीं होने देता। समूह के सदस्यों की अधिकतम योग्यता का लाभ प्राप्त करने के लिए नेता, सहभागिता तथा सहयोग पर जोर देता है। इस शैली को निम्न रेखाचित्र द्वारा जाना जा सकता है–

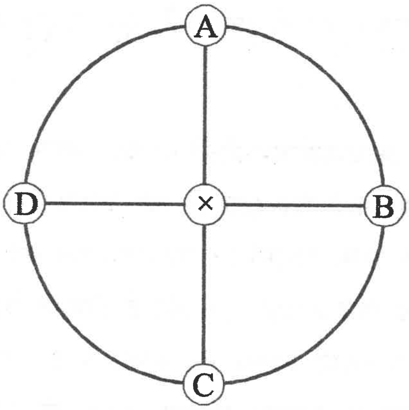

जब संगठन द्वारा अपने लक्ष्य तथा उद्देश्य आधिनस्थों को सम्प्रेषित किये जाते हैं, तब नेता आधिनस्थों की सलाह चाहता है, जब आधिनस्थ निर्णय प्रक्रिया में भाग लेते हैं एवं कर्मचारियों की कुशलता तथा अनुभव का लाभ उठाने की स्थितियों में इस शैली का प्रयोग किया जाता है।

लेसेज़ फेयर अथवा अहस्तक्षेपी शैली– इस शैली में नेता सभी कार्य तथा समस्याएँ आधिनस्थों पर डाल देता है। आधिनस्थों से आशा की जाती है कि वे ही लक्ष्य का निर्धारण करें एवं उनकी प्राप्ति हेतु योजनाएँ बनायें। नेता कोई निर्देश नहीं देता है। वह केवल निष्क्रिय निरीक्षक बना रहता है तथा शक्तियों का उपयोग नहीं करता है। केवल आवश्यकता पड़ने पर सलाह देता है। समूह के सदस्यों पर उसका बहुत कम नियंत्रण रहता है। जिन संगठनों में लक्ष्यों को पहले से ही सम्प्रेषित कर दिया जाता है तथा आधिनस्थों द्वारा स्वीकृत कर लिया जाता है, आधिनस्थ अपने उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए पूर्ण प्रशिक्षिक, उच्च ज्ञान एवं अनुभव वाले होते हैं, ऐसी परिस्थितियों में इस शैली का प्रयोग किया जाता है। आधिनस्थ उच्च प्रेरणा वाले, कार्य के प्रति समर्पित होते हैं। इस शैली को निम्न रेखाचित्र द्वारा समझा जा सकता है।

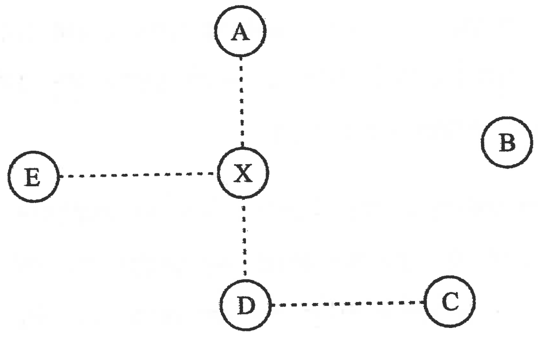

पितातुल्य

इस प्रकार की शैली को अपनाने वाला नेता अपने अधीनस्थों के साथ पितातुल्य व्यवहार करता है। इस शैली को अपनाने वाला नेता अपने कर्मचारियों की पूर्ण देखभाल करना है तथा बदले में उनके विश्वास तथा नेता के प्रति वफादारी का पात्र होता है। कर्मचारी अपने नेता के विश्वासों के प्रति पूर्ण समर्पित होते हैं और स्वच्छन्द होकर कोई कार्य नहीं करते हैं। नेता एवं कर्मचारियों के मध्य सम्बन्ध बहुत ही घनिष्ठ होते हैं। कर्मचारियों से नेता के प्रति विश्वास तथा वफादारी के कारण यह अपेक्षा की जाती है कि वे संगठन के साथ लम्बे समय तक जुड़े रहें। इस शैली को अपनाने वाले संगठन कर्मचारियों को परिवार जैसा वातावरण प्रदान करते हैं एवं कर्मचारी भी मानते हैं कि उनकी हर समस्या का समाधान किया जाएगा। इस प्रकार की नेतृत्व शैली को अपनाने वाले नेता उच्च संगठनात्मक कौशलों से युक्त होता है। नेता

कर्मचारियों को स्वस्थ कार्य दशाएँ प्रदान करता है ताकि संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में कोई कमी न रह जाये एवं यही कर्मचारियों के आत्मविश्वास को बढ़ाने में सहायक होता है ताकि संगठन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु वे पुरस्कार पद्धति के क्रियान्वयन में भी सहायक होती है। यह शैली कर्मचारियों को पुरस्कार की लालसा में उच्च श्रेणी के प्रदर्शन हेतु प्रेरित करती है और इस तरह के निर्धारित समय सीमा के भीतर लक्ष्यों की प्राप्ति कर पाते हैं।

व्यवहार शैली– प्रबन्धन के अन्तर्गत इस शैली का प्रयोग करने वाले नेता पुरस्कार या दण्ड पद्धति के माध्यम से अपने कर्मचारियों को प्रेरित करने का प्रयत्न करते हैं। इस शैली का सर्वप्रथम वर्णन 1947 में मैक्स वेबर द्वारा किया गया और 1981 में बर्नार्ड बास द्वारा पुनः इसका विश्लेषण किया गया। इस शैली के दो प्रमुख आधार हैं– प्रासंगिक पुरस्कार तथा अपवाद द्वारा प्रबंध न। प्रासंगिक पुरस्कार कर्मचारियों के अच्छे प्रदर्शन हेतु उन्हें मनोवैज्ञानिक अथवा भौतिक पुरस्कार प्रदान करना।

अपवाद द्वारा प्रबंधन – यह अवधारणा नेता को यथास्थिति बनाये रखने के लिए प्रेरित करती है। जब कर्मचारियों का प्रदर्शन स्तर स्वीकार्य न हो तो उनके प्रदर्शन में आवश्यक सुधार हेतु नेता पहल करते हैं। यह अवधारणा इसलिए भी स्वीकार्य है कि यह प्रबंधक के कार्यभार को काफी सीमा तक कम करती है और केवल उन्हीं परिस्थितियों में उनको आगे आने को प्रेरित करती है जब कर्मचारी ठीक ढंग में उनको आगे आने को प्रेरित करती है, जब कर्मचारी ठीक ढंग से मान्य स्तर का प्रदर्शन न कर रहे हों। इस शैली के माध्यम से नेता अपने कर्मचारियों की आवश्यकताओं को पहचान कर उन्हें एक निश्चित प्रदर्शन स्तर के बदले सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। इस शैली के माध्यम से नेता पूर्व निर्धारित क्रियाओं और विधियों की कुशलता को बढ़ाने हेतु ध्यान केन्द्रित करते हैं। वे संगठन के निर्धारित नियमों को परिवर्तित करने के बजाय उनके पालन पर ही जोर देते हैं। यह शैली एक युक्तिसंगत नेतृत्व को प्रस्तुत करती है जो संगठन के विकास के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। समूह नवाचार हेतु यह शैली बहुत आवश्यक है। इस शैली हेतु संगठनात्मक लक्ष्यों तथा कार्य सम्पादन हेतु लोगों की आवश्यकताओं के साथ अपेक्षाओं के समन्वय की आवश्यकता होती है।

रूपान्तर शैली (Transformational Style)

इस शैली को अपनाने वाला नेता अपने कर्मचारियों के प्रत्यक्षीकरण में अवरोध नहीं होता है। उसका मुख्य उद्देश्य अपने कर्मचारियों की आवश्यकताओं को परिवर्तित या रुपान्तरित एवं उनकी सोच को पुनः निर्देशित करना होता है। इस शैली को अपनाने वाला नेता अपने कर्मचारियों को कर्तव्यनिष्ठ तथा उत्साही बनाकर प्रेरित करता है एवं चुनौतियाँ प्रदान करता है। उन्हें क्या प्राप्त करना है इसके लिए अपने कर्मचारियों को दूरदर्शी बनाता है साथ ही उनके साथ अपने विचार भी बाँटता है। शुल्ट्ज तथा शुल्ट्ज के अनुसार रूपान्तरण शैली को अपनाने वाले नेता में तीन प्रमुख विशेषताएँ होती हैं-

- स्व-विकास करने वाला व्यक्तित्व, उच्च शक्ति स्तर, जोखिम उठाने की इच्छा एवं कर्मचारियों को स्वतंत्र चिंतन हेतु प्रेरित करने के लिए अनियमित युक्तियों के प्रयोग का गुण नेता में होता है।
- व्यक्तिगत मदद प्रदान करना।
- बौद्धिक उद्दीपनों को प्रस्तुत करना।

यह शैली प्रबन्धन की ओर से उच्च स्तरीय सम्प्रेषण आधारित होती है। स्पष्ट दृष्टिकोण तथा कुशल सम्प्रेषण के माध्यम से नेता, कर्मचारियों को प्रेरित करता है तथा उनकी उत्पादकता व दक्षता को बढ़ाता है। इस शैली को अपनाने वाले संगठन में नेता का ध्यान संगठन के वृहद लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर होता है तथा कर्मचारीगण वृहद लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में संगठन के छोटे लक्ष्यों एवं समूह क्रियाओं के सम्पादन की ओर होता है। इस शैली को अपनाने वाले नेता अपने कर्मचारियों को ऐसा वातावरण प्रदान करते हैं जहाँ हर व्यक्ति अपनी उच्च आवश्यकताओं की प्राप्ति में सक्षम होता है तथा एक उत्पादक अधिगम समुदाय का सदस्य होता है। यह शैली नैतिक नेतृत्व, प्रेम से निर्देशित करना एवं आध्यात्मिक नेतृत्व का समन्वित रूप होता है। प्रेम आध ारित, मानवीय दयालुता, सामाजिक न्यायय एवं आदि तत्व क्रोध, अविश्वास एवं घृणा व ईर्ष्या को समाज कर नेतृत्व की शक्तियों को पुनः खोजते हैं और उसे समृद्ध बनानते हैं। दूसरे शब्दों में यह शैली मूल्य आधारित एवं मानवीय गुणों से युक्त होती है।

NOTES

सहभागी शैली– इस शैली में अधीनस्थों तथा कर्मचारियों से प्राप्त आगतों को भी महत्व दिया जाता है, परन्तु अन्तिम निर्णय सहभागी नेतृत्व के आधार पर ही लिया जाता है। यह शैली कर्मचारियों को उत्साहित तथा प्रेरणा शक्ति को जागृत करती है क्योंकि निर्णयन प्रक्रिया में उनका भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। कर्मचारियों को यह अनुभव होता है कि उनके अभिमतों को भी महत्व दिया जाता है। जब संगठन के भीतर को कोई परेशानी नहीं होती क्योंकि वे भी इस बदलाव को लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जब कर्मचारियों द्वारा संगठन लक्ष्यों की प्राप्ति में असफलता प्राप्त होती है तब प्रबन्धक द्वारा कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने अथवा उनके त्रुटियों को सुध ारने के लिए अपनाये जाने वाले उपायों के सन्दर्भ में कर्मचारियों द्वारा कोई रूकावट नहीं खड़ी हो जाती। लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में यह शैली समूह के सदस्यों की वैचारिक भिन्नत को भी पूर्ण महत्व प्रदान करती है ताकि प्रत्येक क्रिया तथा अन्तिम उत्पाद की गुणवत्ता बनी रहे। प्रर अधिकारियों के साथ-साथ अवसरों के विचारों को भी निर्णयन प्रक्रिया में समाहित करना, आधीनस्थ से सलाह लेना, अधीनस्थों की त्रुटियों में सहनशीलता के साथ सुधार करना एवं आधीनस्थों द्वारा परिवर्तनों को स्वीकार करना आदि इस शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं-

सहयोगी शैली

यह शैली सहभागी शैली के समान ही संगठन के प्रत्येक कर्मचारी की संगठन सम्बन्धी निर्णयों में सम्मिलित करने का प्रयत्न करती है। सभी निर्णय सदस्यों के सहयोग, सुझाव के आधार पर तो बहुमत आधारित या मतैक्य समझौतों के रूप में लिये जाते हैं। एक सहयोगी नेता सदैव प्रयास करता है कि कर्मचारियों में समूह कार्यों तथा विश्वास को बढ़ावा दे सके। सहयोगी शैली अपनाने वाला नेता नियंत्रण अथवा शक्तियों उसी सीमा तक अपनाता है जिस सीमा तक आवश्यकताओं की पूर्ति में वे बाधक नहीं बनती। यदि आवश्यकताएँ अधिक प्रभावकारी बनाती हैं तो वह शक्तियों द्वारा कर्मचारियों पर अपनी पकड़ ढीली भी कर देता है। ऐसा संगठन में लक्ष्यों की प्राप्ति एक सहयोगी प्रक्रिया मानी जाती है तथा यह समूह को भी सशक्त बनाती है। नेता इस विश्वास के साथ कर्मचारियों को स्वतंत्र वातावरण प्रदान करता है कि यदि उनके पास सभी संभाव्य सूचनाएँ हैं तो वे किसी विशेष परिस्थिति में एक

सही निर्णय ले सकते हैं। साथ ही नेता इस बात का ध्यान रखता है कि कर्मचारियों को निर्णय लेने में कोई अवरोध प्रवर अधिकारियों द्वारा न पहुँचायी जाये, बल्कि उन्हें आवश्यक सुविधाएँ भी प्रदान की जाये। यह शैली लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में कर्मचारी एवं नेता को एक-दूसरे के बेहद निकट ला देती है और समानता व सशक्तिकरण के दर्शन को संगठन के भीतर मूर्त रूप प्रदान करता है। जिसके माध्यम से यह प्रवर प्रशासकों तथा आधीनस्थों के मध्य सामान्यतया पाये जाने वाले अविश्वासों को कम कर देती है। इस शैली को अपनाने वाले नेता में जो प्रमुख गुण पाये जाते हैं, वे हैं-

- प्रेरणात्मक वचनबद्धता तथा क्रियाएँ
- सहयोगियों की समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने वाला,
- वृहद स्तर पर समर्पण को बढ़ावा देना,
- आशाओं एवं सहभागिताओं को स्थिरता के साथ बनाये रखना।

इस प्रकार सहयोगी निर्णयन प्रजातांत्रिक होता है तथा वृहद विचार-विमर्श के पश्चात् मतैक्य के साथ बहुमत आधारित होता है। सामान्यतया निर्णयन प्रक्रिया में मतैक्य स्थापित करना अत्यन्त कठिन कार्य होता है, परन्तु इस शैली पर आधारित होने से निर्णयन प्रक्रिया सरल, मतैक्य आधारित तथा जनतांत्रिक हो जाती है।

क्रियाकलाप

1. नेतृत्व की शैली से आप क्या समझते हैं?
2. नेतृत्व की विभिन्न शैलियों के गु एवं दोषों पर एक टिप्पणी लिखिये।
3. नेतृत्व की किस शैली को आप अपनी शैक्षिक संस्था के विकास के लिए उपयुक्त मानते हैं और क्यों?

परीक्षापयोगी प्रश्न

- **दीर्घ उत्तरीय प्रश्न**

1. राज्य एवं केन्द्रीय स्तर पर निर्देशन सेवायें प्रदान करने वाले संगठनों की आवश्यकता एवं उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

NOTES

2. गैर सरकारी संगठनों की निर्देशन सेवायें प्रदान करने में क्या भूमिका है? लिखिए।
3. व्यावसायिक निर्देशन का अर्थ एवं प्रकृति पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
4. व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता का सविस्तार वर्णन कीजिए।
5. रोजगार सूचना के महत्व एवं प्र ति पर एक निबन्धात्मक लेख लिखिए।
6. रोजगार सूचना के स्रोत क्या हैं? सविस्तार वर्णन कीजिए।
7. समूह निर्देशन का अर्थ एवं परिभाषा का सविस्तार वर्णन कीजिए।
8. समूह निर्देशन के उद्देश्य एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।
9. समूह निर्देशन से होने वाले क्या-क्या लाभ हैं? लिखिए।
10. समूह निर्देशन के आवश्यक तत्वों पर प्रकाश डालिए।

- **लघु उत्तरीय प्रश्न**

1. समन्वित परामर्श क्या है? लिखिए।
2. राज्य स्तर पर निर्देशन सेवाओं को परिभाषित कीजिए।
3. कैरियर निर्देशन का महत्व समझाइए।
4. व्यावसायिक परिपक्वता से आप क्या समझते हैं?
5. रोजगार सूचना का महत्व समझाइए।
6. समूह निर्देशन के सिद्धान्त क्या हैं? लिखिए।
7. नेतृत्व के सिद्धान्त पर चर्चा कीजिए।
8. नेतृत्व का क्या अर्थ है? समझाइए।
9. नेतृत्व की प्रकृति से आप क्या समझते हैं?
10. नेतृत्व की शैलियाँ कितने प्रकार की होती हैं? लिखिए।

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY

Raja Bhoj Marg (Kolar Road), Bhopal - 462016,

Phone : 91-755-2424660, Fax : 91-755-2424640

Website :www.bhojvirtualuniversity.com